[illegible]

[illegible]

विद्यार्थी सूत्रपाठ

[illegible]

[illegible]

वि

Dr. Raman

सुबोध काव्यमाला

सम्पादक

रामलोचनशरण बिहारी.

T 396300 S
ใน 8 ต 3 ใน

सुबोध काव्यमाला—१.

बिहारी-सतसई

सरल-टीका-सहित

सतसैया के दोहरे, अरु नावक के तीर
देखत तो छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर

डा. डिल्ली रमण रेम्बो
कल्याणी रेम्बो स्मारक
पुस्तकालय
3959

टीकाकार
श्रीरामवृक्षशर्मा बेनीपुरी
भूतपूर्व 'बालक'-सम्पादक

प्रकाशक—
पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय
१॥)

[परिवर्द्धित और परिष्कृत तृतीय संस्करण]

डा. डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय

मुद्रक

हनुमानप्रसाद, विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय

पूज्य पिता

स्वर्गीय पं० फूलवन्तसिंहजी शर्म्मा

के

परम पावन पद-पद्मों में—

पितृदेव,

बिहारी ने अपनी इस 'सतसई' में अपने पिता को कृष्ण की साक्षात् मूर्ति समझकर प्रणाम किया है।

मेरे तो कृष्ण आप ही हैं। आप ही के स्नेह-सलिल से सिक्त होकर यह 'वृक्ष' आज लहलहा रहा है।

अतएव, पितृ-पद-पूजक बिहारी की 'सतसई' की यह टीका आपके ही चरणों में समर्पित करता हूँ।

—रामकृष्ण

विषय-सूची

सम्पादकीय निवेदन, सतसई का सौन्दर्य

[प्रथम शतक १—४७]

वर्णन	दोहा-संख्या
मंगलाचरण	१-२३
वयःसंधि	२४-२७
यौवन	२८-३२
केश	३३-३६
अलक	३७
चोटी	३८
माँग-टीका	३९
बेंदी	४०-४६
भौंह	४७-४९
नयन	५०-५७
नैन सैन	५८-७१
नेत्र पर उक्तियाँ	७३-८४
नासिका	८५-९०
कपोल	९१
श्रवण	९२
अधर	९३
चिबुक (ठुड्डी)	९४-९६
काजर-बेंदी (डिठौना)	९८-९९
मेहँदी	१००

[द्वितीय शतक ४८-९३]

मुख	१०१-१०२
हास्य	१०३
स्तन	१०४
कटि	१०५-१०६
जंघा	१०७
मोरवा (एँड़ी से ऊपर)	१०८
एँड़ी	१०९-११०
पायल (नूपुर)	१११
अनवट (पादांगुष्ठ-भूषण)	११२
पद-तल	११३
कंचुकी	११४-११५
भूषण	११६-११७
चूनरी-साड़ी	११८-११९
कर्णफूल	१२०
झीनी रेशमी साड़ी	१२१
खुभी (कान की लौंग)	१२२
तरौना, बेसर	१२३
मुख-छवि	१२४
अँगूठी युत अँगुली	१२५
तरिवन (कान की तरकी)	१२६
नैन-शिकारी सौन्दर्य	११७
सौन्दर्य	१२८
गुंजा-हार	१२९
मणिमाला	१३०
साड़ी की जरी-किनारी	१३१
गोराई	१३२

रति मर्दित वस्त्र १३३
पँचरंग बेंदी और चुनरी १३४
स्वाभाविक शृंगार १३५
अंग-द्युति १३६-१४०
शरीर की सुगंध १४१
नायक का लावण्य १४२
अंग-सौष्ठव १४३
मौलिश्री-माला १४४
अंग-कान्ति १४५-१५५
सुकुमारता १५६-१६०
तलहथी १६१
रूप-गरिमा १६२-१६६
हाव १६७-१६९
स्वेद १७०
स्वकीया १७१-१७२
नवोढ़ा १७३
विश्रब्ध नवोढ़ा १७४
परकीया १७५-१७६
अनुराग १७७-१८०
दर्शन १८१-१८२
प्रेम-रंग, प्रेमाग्नि १८३-१८४
नेत्रमिलन १८५
मिलन-महिमा १८६
दर्शनोत्कण्ठा १८७-२००
[तृतीय शतक ९४-१४१]
प्रेम-विह्वला २०१-२१०
स्वप्न-दर्शन २११-२१२
गुड्डी २१३
प्रेम की दृढ़ता २१४-२१७
प्रेमानुभव २१८-२२७
प्रेम की पीड़ा २२८-२३५
प्रेमानन्द, प्रेमालाप २३६,२३७
प्रेम की विवशता २३८-२४८
प्रेमपूर्ण छल २४९
चितचोरी २५०
नायिका-नागिन २५१
चतुराई २५२
प्रेम-सूचक चेष्टा २५३-२५६
नायिका रूपी रात्रि २५७
प्रेमोत्पादक प्रशंसा २५८-२६५
सखी की शिक्षाएँ २६६-२७५
विरह-निवेदन २७६-२७९
उलाहना २८०
प्रेमोत्तेजन २८१-२८६
संघट्टन-युक्ति २८७-२८८
मुखचंद्र प्रशंसा २८९-२९०
संघट्टन-युक्ति २९१-२९२
प्रेम-पुलक २९३
फुटकर २९४
नायक का एकान्त प्रेम २९५
तन्मयता २९६
प्रेम-स्तम्भिता २९७-२९९
सीत्कार ३००
[चतुर्थ शतक १४१-१९०]

प्रेम-लक्षण ३०१-३०४
प्रेमाश्वासन ३०५-३०६
दूती ३०७
अभिसारिका ३०८-३१५
प्रिय-मिलनोत्कंठा ३१६-३२०
दूती-वचन ३२१-३२४
प्रथम मिलन ३२५-३३०
सुरतारम्भ ३३१-३३७
रति-क्रीड़ा ३३८-३३९
विपरीत रति ३४०-३४४
सुरतान्त ३४५-३४६
त्रिवली ३४७
प्रेमक्रीड़ा ३४८-३५७
मद-पान ३५८-३६१
वन-विहार ३६२-३६५
जल-विहार ३६६-३६७
हिंडोला ३६८-३६९
चोर-मिहीचनी का खेल ३७०
सुरत-जन्य शैथिल्य ३७१-३७३
सखी-वचन ३७४
रति-लक्षिता ३७५-३७८
गर्विता ३७९-३८१
खंडिता ३८२-४००
[पंचम शतक १९०-२३७]
खंडिता ४००-४२२
मानिनी ४२३-४५०
क्रिया-विदग्धा ४५१
मान और परिहास ४५२-४५४
प्रेम-गर्विता ४५५
पति-अनुरागिनी ४५६-४६१
उत्कंठिता ४६२
दक्षिण नायक ४६४-४६६
धृष्ट नायक ४६४-४६६
ज्येष्ठा-कनिष्ठा ४६७-४७२
पड़ोसिन का प्रेम ४७३-४७५
विरह ४७६-५००
[षष्ठ शतक २३७-२८५]
विरह ५००-५३७
प्रेम संदेश ५३८
प्रेम पत्रिका ५३९-५४२
आगतपतिका ५४३-५५२
फाग रंग ५५३-५५९
वसंत ५६०-५६३
ग्रीष्म ५६४-५६६
पावस ५६७-५७८
शरद ५७९
हेमंत ५८०-५८३
शिशिर ५८४-५८६
द्वितीया चंद्र-दर्शन ५८७-५८८
चाँदनी ५८९
पवन ५९०-५९४
कुलवधू ५९५
ग्रामीण नायिका ५९६-५९८
नायिका-स्नान ५९९-६००

[सप्तम शतक २८६–३३०]

नायिका-स्नान ६०१–६०५
गर्भवती ६०६
कातनहारी ६०७
दहेंड़ी रखने की भावभंगी ६०८
स्त्री-चरित्र ६०९
प्रीतम-स्मृति ६१०
सौभाग्य की ख्याति ६११
नपुंसक वैद्य ६१२
स्फुट ६१३–६१६
रसिक ६१७–६१८
सज्जन ६१९
सम्पत्ति ६२०
दुर्जन ६२१
कृपण ६२२
नीच ६२३–६२५
जयसिंह-प्रशस्ति ६२६–६३१
दुराज ६३२
लोक रीति ६३३–६३६
श्रीकृष्ण रुक्मिणी ६३७
संगति ६३८
दुश्चरित्र-पौराणिक ६३९
फुटकल ६४०–६४४
नीति ६४२–६४६
सुन्दरी रसोईयादारिन ६४७
समानता की प्रीति ६४८
मूर्ख ज्योतिषी ६४९
नीति ६५०–६५१
नायक का मनोहर धूम्रपान ६५२
नीति ६५३
प्रेमवंचित से दूती-वचन ६५४
अन्योक्तियाँ ६५५–६७७
शान्त रस ६७८–६९०
भक्तवत्सल से उपालम्भ ६९१
दुखियों को उपदेश ६९२
पतित पावन को चुनौती ६९३
ईश्वर-प्रति व्यंग ६९४–६९६
भगवद्विनय ६९७
लोभ निन्दा ६९८
भगवत्प्रार्थना ६९९–७००

[परिशिष्ट]

भगवद्भक्ति ७०१–७१०
शरद-सुन्दरी ७११
नीति ७१२
स्फुट-शृंगार ७१३–७१५
जयशाह-प्रताप ७१६
मुक्ता-हार के प्रति ७१७
वर्षा-जनित विरह-वेदना ७१८
नीति ७१९–७२१
नीलकंठ के प्रति ७२२
सतसई-रचना का कारण ७२३
ग्रंथ-रचना-संवत् ७२४
सतसई के चोखे दोहे ७२५

बिहारी के दुर्लभ दोहे

निवेदन

जब हम १९०३ में शिवहर में पढ़ते थे, हमें पारितोषिक-रूप में अन्य पुस्तकों के साथ बिहारी-सतसई की भी एक प्रति मिली थी। उस समय हम उसका रस नहीं चख सकते थे, इसलिये हमने उसे आलमारी में डाल दिया। जब पटने पढ़ने गये, तब सतसई पर कभी-कभी दृष्टि पड़ने लगी। धीरे-धीरे सुधा का स्वाद मिलता गया और अधिक-अधिक चखने का चस्का लगता गया। यों दिन-रात, सप्ताह, महीने और बरस बीत चले। दस-से-बीस और फिर बीस-से-तीस पर आये। सदा इसी चिन्ता में रहे कि आज इसकी टीका लिखते हैं, और कल छपती है। इसी बीच, एक नहीं दो नहीं, बल्कि कई टीकायें निकल गईं। इनमें से कोई भी सुलभ और सब तक पहुँचनेवाली नहीं ठहरी। हम चुप्पी साधे रहे। पाठ्य-पुस्तकों के लिखने से छुट्टी भी नहीं थी कि कलम चलाते। इसी बीच एक विद्वान् सतसई-सेवी से भेंट हुई। टीका तैयार करने में उन्होंने भी कई बरस लिये। टीका तैयार भी हुई- तो एक पोथा! सुलभ मूल्य में उस टीका को कोई प्रकाशक नहीं निकाल सकता। धीरे से वह भविष्य के लिये रख छोड़ी गई।

फिर प्रिय मित्र 'रामवृक्ष' से भेंट हुई। उसने सतसई के दोहरों पर अपनी सूझ की परीक्षा दी। हम लट्टू हो गये! बोले—फुर्सत नहीं कि सतसई की हृत्तंत्री पर हाथ फेरें, तुम रसिक युवक हो, तुम्हीं फेर देखो, शायद तुम्हारे कुछ हाथ आये।' उसने सहर्ष स्वीकार किया और अपनी रसज्ञता, मर्मज्ञता और सहृदयता से मुग्ध कर दिया।

कापी तैयार होने पर पढ़ने लगे। अपनी योग्यता के अनुसार हमने कापी ध्यान से देख कर, जहाँ आवश्यक समझा, उचित संशोधन कर दिया। आद्योपान्त सम्पादन कर कापी प्रेस में भेज दी।

लिखते हर्ष होता है कि श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस के सुयोग्य संचालक गणपति कृष्णजी गुर्जर ने इसे केवल १० दिनों में छाप कर समाप्त कर दिया। इसके लिये हम उन्हें हृदय से धन्यवाद देते हैं।

व्रज-विहारी का यह सर्वस्व बिहारी द्वारा संचित है। बिहारी ही इसका टीकाकार है, और बिहारी ही इसका सम्पादक—इतना ही नहीं, प्रकाशक भी इसका बिहारी ही है। इसपर पाँच बिहारियों की मुहरें लगी हैं। यदि इस टीका के सहारे हमारे पाठक भी 'सतसई-विहारी' हुए, तो यह प्रयत्न सचमुच सार्थक होगा।

टीका लिखने, उसे सम्पादित करने और छापने में बड़ी ही शीघ्रता की गई है। इन सब कामों के लिये केवल एक महीने का समय लगा है।

नवीन संस्करण

हमारे हर्ष की मात्रा उस समय और भी बढ़ जाती है, जब हम देखते हैं; कि इस टीका के दो संस्करण; जिस प्रकार शीघ्रता में छपे थे, उसी प्रकार शीघ्रता से खप चुके और इसके नवीन संस्करण की आवश्यकता हुई। 'परिवर्द्धित और परिष्कृत' करने में 'मतवाला-मंडल' के सुप्रसिद्ध माण्डलीक सरस-साहित्य-शिल्पी हिन्दी-भूषण बाबू शिवपूजन सहायजी ने जैसा परिश्रम उठाया है, उसके लिये इसके लेखक, सम्पादक और प्रकाशक सभी उनके चिर-ऋणी रहेंगे। केवल धन्यवाद प्रदान से ही इस प्रकार के प्रेममय बर्त्ताव का परिशोध नहीं हो सकता।

रामलोचनशरण बिहारी

'सतसई' का सौन्दर्य्य

हिन्दी का पद्य-साहित्य अत्यन्त सरस एवं अतीव गंभीर है। जबतक हिन्दी के पद्य-साहित्य-सुधा-सागर का विधिवत् मन्थन न किया जाय, तब तक कविवर बिहारी की सतसई का वास्तविक मूल्य मालूम नहीं हो सकता। हिन्दी-काव्य-संसार के नौ महारथियों में जिस कविरत्न को सादर स्थानापन्न किया गया है, उसकी रचना का वास्तविक मूल्य निर्द्धारित करना मुझ-जैसे अनाड़ी के लिये उपहासास्पद है। मुझ जैसे अनाधिकारियों के लिये ही लोलिम्बराज ने कहा है—

येषां न चेतो ललना सुलग्नं मग्नं न साहित्यसुधासमुद्रे।
ज्ञास्यन्ति ते किं मम हा प्रयासानन्धा यथा वारवधूविलासान्॥

किंतु जिस वस्तु में गुणों का आधिक्य है, उसके विषय में मौन हो जाना, ईश्वर की दी हुई वाणी को व्यर्थ करना है। जिस वाणी ने गुणवान् के गुणों का वर्णन नहीं किया, उसका होना ही निष्फल है। निष्फल ही क्यों, हृदय में चुभनेवाले काँटे के समान कष्टकर है।

यही सोचकर, अपनी असमर्थता का ध्यान छोड़कर, हृदय को सन्तोष देने और काव्यानुरागी पाठकों के मनोरंजन के लिये, मैं महाकवि बिहारी की रसमयी कविता की माधुरी चखाना चाहता हूँ। साथ ही, बिहारी की कविता-रूपिणी कान्तिमयी मणि की दीप्ति भी दिखाने की इच्छा है। कृपा कर सहृदयता की आँखों में अनुराग का अंजन लगाकर देखिये।

पहले एक विचित्र कल्पना देखिए। 'बिहारी' होने के कारण मुझे 'बिहारीलाल' के विषय में कुछ कल्पना करने की इच्छा होती है। यद्यपि 'बिहारी' के चरित-रचयिताओं ने बिहार-प्रान्त से उनके किसी तरह के सम्बन्ध की कल्पना तक नहीं की है, तथापि हम 'बिहारी' इस महाकवि पर केवल नाम-सादृश्य का दावा कर सकते हैं। बंगालियों ने हमसे विद्यापति को छीन लिया था, शायद 'बिहारी' भी छीन लिये गये हों!

किंतु केवल नाम का ही साम्य नहीं है। एक पाश्चात्य विद्वान् का अनुमान है कि बिहार-प्रान्त को प्रकृति-नटी की रंगस्थली समझ कर विलासप्रिय यवन-सम्राटों ने इसका नाम 'बिहार' रक्खा था। हो सकता है कि 'सतसई' की कविता को कान्त-कलेवरा कविता-कामिनी की कमनीय क्रीड़ा-स्थली और प्रेम तथा शृंगार की विहार-भूमि समझकर ही महाकवि को 'बिहारी' की पदवी दे दी गई हो, और महाकवि भूषण की तरह इनका भी असली नाम गुम हो गया हो!

ब्राह्मण होने, बसुवा-गोविन्दपुर में जन्म लेने, बुँदेलखंड में बाल्यावस्था व्यतीत करने और ब्रजवासी होने की बदौलत अगर थोड़ी देर के लिये अनुप्रासानुरागी इन्हें 'बिहारी' समझ लें, तो क्या कोई हानि होगी?

जो हो, मेरे इन अभिनव अनुमानों में आपत्ति की आशंका अवश्य है। किंतु इसे मनोरंजक साहित्यिक कल्पना के सिवा और कुछ न समझियेगा।

फिर देखिये, 'बिहार' शब्द का अर्थ 'मठ' भी होता है। बिहार-प्रान्त में बौद्ध मठों की संख्या अधिक थी। इसलिये इसका नाम बिहार पड़ा। उन मठों में ऐसे स्नातक रहा करते थे, जो देश-विदेश में भ्रमण कर धर्म-प्रचार किया करते थे। मालूम होता है, प्रेम, शृंगार, अनुराग नायिका-भेद एवं हाव-भाव-रूपी मठों में रहनेवाले 'सतसई' के सात सौ

स्नातकों—'दोहों'—ने भी हिन्दी-साहित्य-संसार में सरसता और रसिकता का इस जोर-शोर से प्रचार किया कि महाकवि को बरबस 'बिहारी' की पदवी प्राप्त हो गई !

अच्छा, तो अब मेरी कल्पना के हवाई-महल से बाहर निकलकर महाकवि बिहारीलाल के रमणीय कल्पना कुञ्ज में प्रवेश कीजिये। बिहारीलाल की कविता की समालोचना करने की योग्यता मुझमें नहीं है। उनकी कविता किस दर्जे की थी, इसपर विचार करना भी अरुचिकर और अनधिकार चेष्टा होगी। हाँ, उनकी कविता के सम्बन्ध में यहाँ सिर्फ़ ऐसी ही बातें कहने की आवश्यकता है, जिनसे सहृदय साहित्य-प्रेमियों का मनोविनोद हो। उनकी कविता में कितना रस-परिपाक है, कैसे-कैसे मनोहर शब्द कहाँ और किस खूबी के साथ प्रयुक्त हुए हैं, भाव और अलंकार कितने अनूठे हैं, इन्हीं बातों पर यथाशक्ति कुछ लिखना चाहता हूँ। पहले पद मैत्री, यमक या अनुप्रास देखिये। फिर अनुपम अलंकारों और ललित भावों की छवि-छटा—

तो पर वारौं उरबसी, सुनु राधिके सुजान।
तू मोहन के उर बसी, ह्वै उरबसी समान॥
केसरि कै सरि क्यों सकै, चम्पक कितक अनूप।
गात रूप लखि जात दुरि जातरूप को रूप॥
सायक सम मायक नयन, रँगे त्रिविध रँग गात।
झखौ बिलखि दुरि जात जल, लखि जलजात लजात॥
बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनान ते, हरि नीके ये नैन॥
उड़ी गुड़ी लखि लाल की, अँगना अँगना माँह।
बौरी-सी दौरी फिरे, छुवत छबीली छाँह॥

गड़े बड़े छबिछाकु छकि छिगनी छोर छुटै न।
रहे सुरँग रंग रंगि वही नहँ दी मँहदी नैन॥
रस सिंगार मँजन किये, कंजन भंजन दैन।
अंजन रंजन हूँ बिना, खंजन गंजन नैन॥

कोई सहृदय यह कहने में संकोच नहीं कर सकता कि 'विहारी' ने हिन्दी-साहित्य की श्री-वृद्धि करने में महत्वपूर्ण भाग लिया है। इनकी कविता में चमत्कार, लालित्य, मनोज्ञता, सूक्ष्मदर्शिता, सरसता, स्वाभाविकता और मार्मिकता की मात्रा कम नहीं है। इनकी कविता के अनूठे भावों ने हिन्दी साहित्य में काफी माधुर्य, खोज और प्रसाद भर दिया है। देखिये, प्राकृतिक वर्णन में कैसा रस है--

छकि रसाल सौरभ सने, मधुर माधवी गंध।
ठौर-ठौर झौंरत झिपत, भौंर झौंर मधु-अन्ध॥
रनित भृंग घण्टावली, झरत दान-मधु नीर।
मन्द-मन्द आवत चल्यौ, कुञ्जर कुञ्ज-समीर॥
लपटी पुहुप पराग पट, सनी सेद मकरन्द।
आवति नारि नवोढ़ लौं, सुखद वायु गति मन्द॥
रुक्यौ साँकरे कुंज-मग, करत झाँझ झकरात।
मंद-मंद मारुत तुरँग, खूँदत आवत जात॥
चुवत सेद मकरंद कन तरु-तरु तर बिरमाय।
आवत दच्छिन देस तें, थक्यो बटोही बाय॥
ज्यों ज्यों बढ़ति बिभावरी, त्यों त्यों बढ़त अनंत।
ओक ओक सब लोक सुख, कोक सोक हेमन्त॥
अरुन सरोरुह कर चरन, दृग खंजन मुखचन्द।
समय पाय सुन्दरि सरद, काहि न करै अनन्द॥

ऐसे ही और भी बहुत से दोहे हैं, जिनसे यह प्रकट होता है कि महाकवि बिहारीलाल ने बड़ी सहृदयता के साथ हिन्दी-साहित्य का शृंगार किया है। यदि उनकी यही प्रतिभा, साहित्य के आदि-रस के साथ-ही-साथ, अन्य रसों की ओर भी प्रवृत्त हुई होती, तो आज हिन्दी का काव्य-साहित्य और भी सुसज्जित होता। बिहारी के अलौकिक शृङ्गार-वर्णन का रसास्वादन करने से आपको मालूम होगा कि उनकी कविता ने हिन्दी को किस दर्जे तक वैभवशालिनी बनाया है। शोभा, शृङ्गार, सौकुमार्य, हाव-भाव एवं लावण्यलीला का वर्णन करने में उन्होंने वस्तुतः अपनी विलक्षण कवित्वशक्ति दिखाई है। यदि उनका शृङ्गार-रसात्मक तथा प्रसाद गुण-विशिष्ट ललित वर्णन हिन्दी-साहित्य भंडार से निकाल दिया जाय, तो हिन्दी के शुभ ललाट की बिन्दी कुछ मन्द पड़ जायगी। हिन्दी की विशेषता बिहारी के इस दोहे से मालूम हो सकती है—

कहत सबै बेंदी दिये, आँक दसगुनो होत।
तिय लिलार बेंदी दिये, अगनित बढ़त उदोत॥

बेंदी की तरह अलक-वर्णन में भी कवि ने अपनी गणितज्ञता दिखाई है। देखिये, कैसी बारीक़ सूझ है—

कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगौ इतौ उदोत।
बंक बिकारी देत ज्यौं, दाम रुपैया होत॥

वास्तव में बिहारीलाल ने साहित्य के आदि-रस को परिपुष्ट और काव्य-रसिकों को परितुष्ट करने में कमाल किया है। आदि-रस के उर्वर क्षेत्र में मृदु-भावों की भागीरथी प्रवाहित करके उन्होंने उसे कैसा सस्य-श्यामला-संपन्न बनाया है, यह देखकर किस सहृदय के नेत्र तृप्त नहीं होते? अपनी कविता में आदि-रस को उन्होंने अमृत का घूँट पिलाकर ही छोड़ा है। उनके रसीले भावों, तुले हुए चुनिन्दे शब्दों और ध्यानातीत कल्पनाओं की

बारीकी तो देखिये, कैसी अनोखी सूझ है, कितनी गहरी पैठ है, कैसी सहृदय-हृदयाह्लादक स्वाभाविकता है:—

खेलन सिखये अलि भले, चतुर अहेरी मार।
काननचारी नैन-मृग, नागर नरन सिकार॥
पत्रा ही तिथि पाइये, वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पूनो ही रहत, आनन-ओप-उजास॥
मानहुँ बिधि तन अच्छ छवि, स्वच्छ राखिबे काज।
दृग-पग पोंछन को कियो भूषन पायन्दाज॥
भूषन-भार सँभारिहैं, क्यों यह तन सुकुमार।
सूधो पायँ न परत महि, सोभा ही के भार॥
पति रितु औगुन गुन बढ़त, मान माह को सीत।
जात कठिन ह्वै अति मृदौ, रमनी मन-नवनीत॥
तंत्री नाद कबित्त रस, सरस राग रतिरंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग॥
मकराकृत गोपाल के, कुण्डल सोहत कान।
धस्यौ मनो हिय गढ़ समर, ड्योढ़ी लसत निसान॥
नहिं हरि लौं हियरा धरौं, नहिं हर लौं अरधंग।
एकत ही करि राखिये, अंग अंग प्रतिअंग॥
अधर धरत हरि के परत, ओठ डीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष-रंग होति॥
सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलोने गात।
मनो नीलमनि-सैल पर आतप पर्‌यौ प्रभात॥
कंज-नयनि मंजन किये, बैठी ब्योरति बार।
कच अँगुरिन बिच डीठि दै, निरखति नंदकुमार

बेसर-मोती धन्य तू, को पूछै कुल जाति।
पीवो करि तिय अधर को, रस निधरक दिन राति॥

अफ़सोस! केवल सात-आठ दोहों द्वारा सात सौ दोहों का सौष्ठव किसी तरह नहीं दिखाया जा सकता। हाँ, 'स्थालीपुलाक न्याय' से उक्त दोहों द्वारा कवि की विचित्र वर्णन-चातुरी और रुचिर रचना-कौसल का किसी हद तक अनुमान किया जा सकता है।

अब जरा ध्यान देकर देखिये, अन्यान्य प्रकार के वर्णनों में भी विहारीलाल ने श्रृंगार-रस को किस प्रवीणता और सफलता प्रधानता से दी है।

शिशिर-वर्णन—

तपन-तेज, तापन-तपन तूल तुलाई माँह।
सिसिर-सीत क्योंहुँ न घटै, बिन लपटे तिय नाँह॥

इसी भाव का एक श्लको भी है—

कार्पासकृतकूर्पासशतैरपि न शाम्यति।
शीतं शातोदरीपीनवक्षोजालिंगनं विना॥

पुनश्च—रहि न सकै सब जगत में, सिसिर सीत के त्रास।
गरमी भजि गढ़वै भई, तिय-कुच-अचल मवास॥

वर्षा वर्णन—

छिनक चलति ठिठकति छिनक, भुज प्रीतम गर डारि।
चढ़ी अटा देखति घटा, बिज्जु छटा-सी नारि॥

होली-वर्णन—

रस भिजये दोऊ दुहुनि, तउ टिक रहे टरै न।
छबि सों छिरकत प्रेम रँग, भरि पिचकारी नैन॥

राष्ट्रीयता के इस नवीन युग में, जब कि जागृति-जाह्नवी में जन-समुदाय स्नान कर रहा है, यह श्रृंगार-रस का पचड़ा पाठकों को पसन्द न

पड़ेगा; किंतु कविता की महत्ता तो किसी दशा में अस्वीकार नहीं की जा सकती। शृंगार-रस के कारण कविता की महिमा नहीं घटती। कवि की पहुँच परखिये—रस या भाव तो रुचि पर निर्भर है। बिहारी के एक दोहे पर मनोरंजक प्रश्नोत्तर देखिये—

कियो सबै जग कामबस, जीते जिते अजेय।
कुसुम-सरहिं सर धनुष कर, अगहन गहन न देय॥

प्रश्न—

कही सीत की प्रबलता, गहि न सकै धनु काम।
तो हेमन्त में चाहिये, कामहीन जगधाम॥

उत्तर—

जग करि दीन्हों स्वामिबस, जीति अजित निज बास।
धनुष गहन स्रम देत नहिं, कामहिं अगहन दास॥

बिहारी के नीति-कथन में भी एक विचित्र सरसता झलकती है—

संगति दोष लगे सबहिं, कहे जु साँचे बैन।
कुटिल बंक भ्रू संग तें, भये कुटिल गति नैन॥
सोहत संग समान को, इहै कहत सब लोग।
पान पीक ओठन बनै, काजर नैनन जोग॥
जेती सम्पति कृपन को, तेती सूमति जोर।
बढ़त जात ज्यों ज्यों उरज, त्यों त्यों होत कठोर॥
इक भीजे चहले परे, बूढ़े बहे हजार।
कितै न अवगुन जग करत, नै बै चढ़ती बार॥

बिहारी की अन्योक्तियों में भी शृंगार का समावेश है। शृंगार-वर्णन में कहीं-कहीं हिन्दी के मुहावरों का प्रयोग बड़े अच्छे ढंग से किया गया है—

अंग अंग नग जगमगत दीपसिखा-सी देह।
'दिया बढ़ायेहू' रहे, बढ़ो उजेरो गेह॥
कच समेटि कर भुज उलटि, खएँ सीस-पट डारि।
काको 'मन बाँधे' न यह, जूरा बाँधनिहारि॥
जाल-रंध्र-मग अगनि को, कछु उजास सो पाय।
'पीठि दिये' जग त्यों रहे, 'डीठि झरोखे लाय'॥
'नैन लगे' तिहि लगन सो, छुटै न छूटै प्रान।
काम न आवत एकहू, तेरे सौक सयान॥

बिहारी ने अपनी कविता में पौराणिक कथाओं का उल्लेख भी कहीं-कहीं बड़े अच्छे ढंग से किया है—

रह्यौ ऐंचि अन्त न लह्यौ, अवधि-दुसासन वीर।
आली बाढ़त बिरह ज्यों, पंचाली को चीर॥
या भव-पारावार को, उलँघि पार को जाय।
तिय-छबि-छायाग्राहिनी, गहै बीच ही आय॥
बिरह-बिथा-जल परस बिन, बसियत मो हिय ताल।
कछु जानत जलथम्भ-बिधि, दुरजोधन लौं लाल॥
यों दल काढ़े बलख ते, तैं जयसाह भुवाल।
उदर अघासुर के परे, ज्यों हरि गाय गुवाल॥
सखि सोहति गोपाल के, उर गुंजन की माल।
बाहर लसति मनो पिये, दावानल की ज्वाल॥

बिहारीलाल की कुछ रचनाएँ बतलाती हैं कि वे शान्त-रस की कविता भी अच्छी कर सकते थे। भक्ति, विनय, दीनता और वैराग्य के भाव कैसे अनूठे हैं। देखिये, शान्तरस में भी वही स्वाभाविक सरसता—

या अनुरागी चित्त की, गति समझै नहिं कोय।
ज्यों-ज्यों बूड़े स्याम-रंग, त्यों-त्यों उज्ज्वल होय ॥
नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
तज्यो मनो तारन विरद, बारक बारन तारि ॥
जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम ॥
मन काँचै नाचै वृथा, साँचै राचै राम ॥
जगत जनायो जेहि सकल, सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यों आँखिन सब देखिये, आँखि न देखी जाहिं ॥
करौ कुबत जग कुटिलता, तजौं न दीनदयाल।
दुखी होहुँगे सरलचित, बसत त्रिभंगी लाल ॥
ज्यों अनेक अधमनि दियो, मोहू दीजै मोष।
तौ बाँधो अपने गुननि, जो बाँधे ही तोष ॥

मैं यहाँ तक जितना कुछ कह आया हूँ, उससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि बिहारी की कविता यद्यपि थोड़ी है, तथापि, वह उतनी ही, हिन्दी-साहित्य की अमूल्य सम्पत्ति है। उसमें शृंगार का प्राधान्य, सन्दर्भ-सौन्दर्य, भाव-सौकुमार्य, रस-माधुर्य, अर्थ-गाम्भीर्य आदि सब कुछ यथेष्ट हैं। जो कोई 'सतसई' पढ़ेगा, वह यही अनुभव करेगा।*

शिवपूजन सहाय

---

* सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमणप्रसादसिंहजी एम० ए० के सभापतित्व में होनेवाले गत द्वितीय बिहार-प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन बेतिया (चम्पारन) में पठित लेख का परिवर्द्धित और परिष्कृत रूप।

बिहारी-सतसई

सरल-टीका-सहित

प्रथम शतक

मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परे स्यामु हरित दुति-होइ ॥१॥

अन्वय—सोइ राधा-नागरि मेरी भव-बाधा हरौ, जा तन की झाँई परे, स्यामु दुति हरित होइ।

भव-बाधा = संसार के कष्ट, जन्ममरण का दुःख। नागरि = सुचतुरा। झाँई=छाया। हरित = हरी। दुति = द्युति, चमक।

वह चतुरा राधिका मेरी सांसारिक बाधायें हरे—नष्ट करे; जिसके (गोरे) शरीर की छाया पड़ने से (साँवले) कृष्ण की द्युति हरी हो जाती है।

नोट—नीले और पीले रंग के संयोग से हरा रंग बनता है। कृष्ण के अंग का रंग नीला और राधिका का काञ्चन-वर्ण (पीला)—दोनों के मिलने से 'हरे रंग (प्रफुल्लता) की सृष्टि हुई। राधिका से मिलते ही श्रीकृष्ण खिल उठते थे। कविवर रसलीन भी अपने अंग-दर्पण में राधा की यों वन्दना करते हैं—

राधा पद बाधा-हरन साधा कर रसलीन।
अंग अगाधा लखन को कीन्हों मुकुर नवीन ॥

सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल।
इहि बानिक मो मन बसौ सदा बिहारीलाल ॥२॥

अन्वय—सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल—बिहारीलाल इहि बानिक मो मन सदा बसौ।

कटि = कमर। बानिक = बाना, सजधज। बिहारीलाल=भगवान् कृष्ण।

सिर पर (मोर) मुकुट, कमर में (पीताम्बर की) काछनी, हाथ में मुरली और हृदय पर (मोती की) माला। हे बिहारीलाल, इस बाने से—इस सजधज से—मेरे मन में सदा वास करो।

मोहनि मूरति स्याम की अति अदभुत गति जोइ।
बसति सुचित अंतर तऊ प्रतिबिम्बित जग होइ ॥३॥

अन्वय—स्यामु की मोहनि मूरति गति अति अदभुत जोइ। बसति सुचित अंतर, तऊ प्रतिबिम्बित जग होइ।

जोइ = देखना। सुचित = निर्मल चित्त, स्वच्छ हृदय। अन्तर=भीतर। प्रतिबिम्बित = झलकती है।

श्रीकृष्ण की मोहिनी मूर्त्ति की गति बड़ी अद्भुत देखी जाती है। वह (मूर्त्ति) रहती (तो) है स्वच्छ हृदय के भीतर, पर उसकी झलक दीख पड़ती है सारे संसार में!

तजि तीरथ हरि-राधिका तन-दुति करि अनुराग।
जिहिं ब्रज-केलि निकुंज-मग पग-पग होत प्रयाग ॥४॥

अन्वय—तीरथ तजि हरि-राधिका-तन-दुति अनुराग करि। जेहि ब्रज-केलि निकुंज मग पग-पग प्रयाग होत।

ब्रज-केलि=ब्रजमण्डल की लीलाएँ। निकुंज-मग=कुंजों के बीच का

रास्ता। प्रयाग=तीर्थराज। निकुंज=लताओं के आपस में मिलकर तन जाने से उनके नीचे जो रिक्त स्थान बन जाते हैं, उन्हें निकुंज वा कुंज कहते हैं, लता-वितान।

तीर्थों में भटकना छोड़कर उन श्रीकृष्ण और राधिका के शरीर की छटा से प्रेम करो, जिनकी व्रज में की गई क्रीड़ाओं से कुंजों के रास्ते पग-पग में प्रयाग बन जाते हैं—प्रयाग के समान पवित्र और पुण्यदायक हो जाते हैं।

सघन कुंज छाया सुखद सीतल सुरभि समीर।
मनु ह्वै जात अजौं वहै उहि जमुना के तीर ॥५॥

अन्वय—कुंज सघन, छाया सुखद, समीर सीतल सुरभि उहि यमुना के तीर अजौं मनु वहै ह्वै जात।

सुरभि समीर=वासंतिक फूलों की गंध से सुगंधित हवा। ह्वै जात=हो जाता है। अजौं=आज भी।

जहाँ की कुंजें घनी हैं, छाया सुख देनेवाली है, पवन शीतल और सुगंधित है, उस यमुना के तीर पर जाते ही आज भी मन वैसा ही हो जाता है—कृष्ण-प्रेम में उसी प्रकार मग्न हो जाता है।

सखि सोहति गोपाल कैं उर गुंजन की माल।
बाहिर लसति मनौ पिए दावानल की ज्वाल ॥६॥

अन्वय—सखि, गोपाल कैं उर गुंजन की माल सोहति, मनौ पिए दावानल की ज्वाल बाहिर लसति।

गुंजन=गुंजा, घुंघची;—एक जंगली लता का फल, जो लाल मूँगे की तरह छोटा होता है; उसकी माला सुन्दर होती है। गोपाल=कृष्ण। दावानल=जंगल में लगी हुई आग। ज्वाल=आग की लाल लपट। लसति=शोभती है।

हे सखि! श्रीकृष्ण की छाती पर (लाल-लाल) गुंजाओं की माला शोभती है। (वह ऐसी जान पड़ती हैं) मानों पिये हुए दावानल की ज्वाला बाहर शोभा दे रही हो—श्रीकृष्ण जिस दावाग्नि को पी गये थे, उसीकी लाल लपटें बाहर फूट निकली हों।

नोट—एक समय वृन्दावन में भयानक आग लगी थी। कहा जाता है, श्रीकृष्ण उस अग्नि को पी गये थे। वृन्दावन जलने से बच गया था।

जहाँ जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ स्यामु सुभग सिरमौरु।
बिनहूँ उनु छिन गहि रहतु दृगनु अजौं वह ठौरु ॥७॥

अन्वय—सुभग-सिरमौरु स्यामु जहाँ जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ, अजौं वह ठौरु, उन बिन हूँ, दृगनु छिनु गहि रहतु।

सुभग-सिरमौरु = सुन्दर पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ। ठौरु = स्थान। छिन= क्षण। गहि रहतु = पकड़ लेता है।

सुन्दरों के सिरताज श्यामसुन्दर को जहाँ-जहाँ मैंने खड़े हुए देखा था, उनके न रहने पर भी, आज भी वे स्थान आँखों को एक क्षण के लिये (बरबस) पकड़ लेते हैं—आँखें वहाँ से नहीं हटतीं।

चिरजीवौ जोरी जुरै क्यौं न सनेह गँभीर।
को घटि ए बृषभानुजा वे हलधर के बीर ॥८॥

अन्वय—जोरी चिरजीवौ; गँभीर सनेह क्यों न जुरै, को घटि—ए वृषभानुजा, वे हलधर के बीर ॥८॥

चिरजीवौ=(१) सदा जीते रहो; (२) चिर+जीवौ = घासपात खाते रहो। जुरै = जुटे, एक साथ मिले। स्नेह = (१) प्रेम (२) घी। गँभीर = गम्भीर, अगाध। घटि = न्यून, कम, छोटा। बृषभानुजा = (१) वृषभानु + जा = वृषभानु की बेटी, (२) बृषभ+अनुजा = साँड़ की छोटी बहिन। हलधर = (१) बलदेव; (२) हल + धर = बरद, बैल। बीर = भाई।

(राधा-कृष्ण की यह) जोड़ी चिरजीवी हों। (इनमें) गहरा प्रेम क्यों न बना रहे ? (इन दोनों में) कौन किससे घट कर है ? ये हैं (बड़े बाप !) वृषभानु की (लाड़ली) बेटी, (और) वे हैं (विख्यात वीर) बलदेवजी के छोटे भाई !

श्लेषार्थ—यह जोड़ी घासपात खाती रहे ! इनसे अगाध घी क्यों न प्राप्त हो ? घटकर कौन है ? ये हैं साँड़ की छोटी बहिन, तो वे हैं बरद के छोटे भाई !

नोट—इस छोटे से दोहे में उत्कृष्ट श्लेष लाकर कवि ने सचमुच कमाल किया है।

नित प्रति एकत ही रहत बैस बरन मन एक।
चहियत जुगल किसोर लखि लोचन जुगल अनेक ॥६॥

अन्वय—नित प्रति एकत ही रहत, बैस बरन मन एक जुगल किसोर लखि लोचन-जुगल अनेक चहियत।

एकत=एकत्र, एक साथ। बैस = वयस, अवस्था। बरन = वर्ण, रूप-रंग। जुगल-किसोर = दोनों युवक-युवती, किशोर-किशोरी की जोड़ी। लखि चहियत = देखने के लिये चाहिये। लोचन-जुगल = आँखों के जोड़े।

दोनों सदा एक साथ ही रहते हैं। (क्यों न हो ? दोनों की) अवस्था, रूप-रंग और मन (भी तो) एक से हैं। इस युगलमूर्त्ति (राधाकृष्ण) को देखने के लिये तो आँखों के अनेक जोड़े चाहिये—दो आँखों से देखने पर तृप्ति हो ही नहीं सकती।

नोट—पद्माकर ने इस युगल जोड़ी के परस्पर-दर्शन-प्रेम पर कहा है—

मनमोहन-तन-घन सघन रमनि-राधिका-मोर।
श्रीराधा मुखचंद को गोकुलचंद चकोर।

मोर-मुकुट की चन्द्रिकनु यौं राजत नँदनंद।
मनु ससि-सेखर की अकस किय सेखर सतचंद ॥१०॥

अन्वय—मोर-मुकुट की चन्द्रिकनु नँदनंद यों राजत, मनु ससि-सेखर की अकस सेखर सत चंद किय ॥१०॥

मोर-मुकुट = मोर के पंख का बना मुकुट। चंद्रिकनु = मोर की पूँछ के पर में दूज के चाँद-सा चमकीला चिह्न; मोर के पंख की आँख। नँद-नंद = नंद के पुत्र, कृष्ण। मनु = मानो। ससिसेखर = जिसके सिर पर चन्द्रमा हो, चन्द्रशेखर, शिव। अकस-ईर्ष्या, डाह। सेखर-सिर। सत—शत, सौ, (यहाँ अनेकवाची)।

मोर मुकुट की चन्द्रिकाओं से (श्रीकृष्ण) ऐसे शोभते हैं, मानो शिवजी की ईर्ष्या से उन्होंने अपने सिर पर अनेक चन्द्रमा धारण किये हों।

नाचि अचानक हीं उठे बिनु पावस बन मोर।
जानति हौं, नन्दित करी यहि दिसि नंद-किसोर ॥११॥

अन्वय—बिनु पावस अचानक हीं बन मोर नाचि उठे; जानति हौं यहि दिसि नंद-किसोर नन्दित करी ॥११॥

पावस = वर्षा ऋतु। नंदित=आनन्दित।

विना वर्षा-ऋतु के अचानक वन में मोर नाच उठे! जान पड़ता है, इस दिशा को नंद के लाड़ले (घनश्याम) ने आनन्दित किया है।

नोट—श्रीकृष्ण का सघन-मेघ-सदृश श्यामल शरीर देखकर भ्रमवश एकाएक मोर नाच उठे थे।

प्रलय करन बरषन लगे जुरि जलधर इक साथ।
सुरपति गरबु हर्‌यो हरषि गिरिधर गिरि धर हाथ ॥१२॥

अन्वय—जलधर इक साथ जुरि प्रलय करन बरषन लगे। गिरिधर हरषि गिरि हाथ धर सुरपति गरबु हर्‌यो।

प्रलय करन=संसार को जलमग्न करने के लिये। जुरि = मिलकर। जलधर=मेघ। सुरपति=इन्द्र। गरबु (गर्व)=घमंड। गिरिधर=कृष्ण। गिरि=पहाड़। धर = धारण कर।

सब मेघ एक साथ मिलकर प्रलय करने के लिये बरसने लगे। गोवर्द्धनधारी श्रीकृष्ण ने प्रसन्न होकर—इसके लिये मन में कुछ भी दुःख न मानकर—(गोवर्द्धन) पर्वत हाथ में धारण कर—उठाकर—इन्द्र का घमंड चूर किया।

डिगत पानि डिगुलात गिरि लखि सब ब्रज बेहाल।
कंप किसोरी दरसिकै खरैं लजाने लाल ॥१३॥

अन्वय—पानि डिगत, गिरि डिगुलात, लखि सब ब्रज बेहाल; किसोरी दरसिकै कंप (यह जानि) लाल खरैं लजाने।

पानि = हाथ। डिगुलात = डगमगाना। बेहाल = विह्वल, बेचैन। कंप = थरथराहट। किसोरी=नवेली, राधिका। खरैं = विशेष रूप से। लाल = कृष्ण।

हाथ हिलता और पर्वत डगमगाता है—यह देखकर ब्रजवासी व्याकुल हो गये। राधिका के दर्शन करके (मेरे शरीर के) कम्प के कारण ऐसा हुआ है—पर्वत हिला है। (यह समझ कर) कृष्णजी खूब ही लज्जित हुए।

नोट—इसी प्रसंग पर किसी कवि ने गजब का मजमून बाँधा है। देखिये, कवित्त—

भौंहनि कमान तान फिरति अकेली बधू ता पै ए बिसिख कोर कज्जल भरै है री। तोहि देखि मेरे हू गोविंद मन डोलि उठै मघवा निगोड़ो

उतै रोष पकरै है री ॥ बलि-बलि जाहु वृषभानु की कुमारी मेरो नैकु कह्यौ मान तेरो कहा बिगरै है री। चंचल चपल ललचौहैं दृग मूँदि राखु जो लौं गिरिधारी गिरि नख पै धरै है री ॥

लोपे कोपे इन्द्र लौं रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै गो गोपी गोपाल ॥१४॥

अन्वय—लोपे कोपे इन्द्र लौं अकाल प्रलय रोपे; गिरधारी गो गोपी गोपाल सबै राखे।

लौं = तक। अकाल = असमय।

अपनी पूजा के लुप्त होने से क्रुद्ध हुए इन्द्र तक ने असमय में ही प्रलय करना चाहा। (किन्तु) गिरधारी श्रीकृष्ण ने (गोवर्धन धारण कर) गो, गोपी और गोपाल—सब की रक्षा की।

नोट—'इन्द्र लौं' का अभिप्राय यह कि इसके पहले अघासुर, बकासुर आदि के उपद्रव भी हो चुके थे।

लाज गहौ बेकाज कत, घेरि रहे घर जाँहि।
गोरसु चाहत फिरत हौ, गोरसु चाहत नाँहि ॥१५॥

अन्वय—लाज गहौ, घर जाँहि, बेकाज कत घेरि रहे; गोरसु चाहत फिरत हो, गोरसु नाँहि चाहत।

बेकाज = व्यर्थ, बेकार, अकारण। कत = क्यों। गोरस = गो + रस = इन्द्रियों का रस, चुम्बनालिंगन आदि। गोरस = दही-दूध आदि।

कुछ लाज भी रक्खो—यों बेशर्म मत बनो। मैं घर जा रही हूँ; व्यर्थ मुझे क्यों घेर रहे हो? (अब मैंने समझा कि) तुम इन्द्रियों का रस चाहते हो, दही-दूध नहीं।

मकराकृति गोपाल कैं, सोहत कुंडल कान।
धर्यौ मनौ हिय-घर समरु, ड्यौढ़ी लसत निसान ॥१६॥

अन्वय—गोपाल के कान मकराकृति कुंडल सोहत; मनो समरु हिय-गढ़ धर्यो, ड्यौढ़ी निसान लसत।

मकराकृति = मकर + आकृति = मछली के आकार का। धर्यौ = अधिकार कर लिया। समरु = स्मर = कामदेव। ड्यौढ़ी = फाटक, द्वार। निसान = झंडा।

श्रीकृष्ण के कानों में मछली के आकार के कुंडल सोह रहे हैं। मानो कामदेव ने हृदय-रूपी गढ़ पर अधिकार कर लिया है और गढ़ के द्वार पर उनकी ध्वजा फहरा रही है।

नोट—कामदेव के झंडे पर मछली या गोह का चिह्न माना गया है। इसीसे उन्हें मीनकेतु, झखकेतु, मकरध्वज आदि कहते हैं।

गोधन तूँ हरष्यो हियैं घरियक लेहि पुजाइ।
समुझि परैगी सीस पर परत पसुनु के पाइ ॥१७॥

अन्वय—गोधन, तूँ हिये हरष्यो घरियक पुजाइ लेहि, सीस पर पसुनु के पाइ परत समुझि परैगी।

गोधन = गोबर की बनी हुई गोवर्द्धन की प्रतिमा, जिसे कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा को गृहस्थ अपने द्वार पर पूजते हैं और पूजा के बाद पशुओं से रौंदवाते हैं। घरियक = घरी + एक = एक घड़ी।

अरे गोधन! तू हृदय में हर्षित होकर एक घड़ी तक अपनी पूजा करा ले। सिर पर पशुओं के पाँव पड़ने पर ही (इस पूजा की यथार्थता) समझ पड़ेगी!

मिलि परछाँहीं जोन्ह सौं रहे दुहुनु के गात।
हरि-राधा इक संग हीं चले गली महिं जात ॥१८॥

अन्वय—दुहुन के गात परछाँहीं (अरु) जोन्ह हरि राधा इक संग हीं गली महिं चले जात।

परछांही = छाया। जोन्ह = चाँदनी। दुहुन = दोनों। गात = शरीर।

दोनों के शरीर (एक का गोरा और दूसरे का साँवला) परछाईं और चाँदनी में मिल रहे हैं। यों, श्रीकृष्ण और राधा एक ही साथ (निश्शंक भाव से) गली में चले जाते हैं।

नोट—राधा का गौर शरीर उज्ज्वल चाँदनी में और श्रीकृष्ण का श्यामल शरीर राधा की छाया में मिल जाता था। यों उन दोनों को गली में जाते कोई देख ही नहीं सकता था। फलतः चाँदनी रात में भी वे निश्शंक चले जाते थे।

गोपिनु सँग निसि सरद की रमत रसिकु रसरास।
लहाछेह अति गतिनु की सबनि लखे सब पास ॥१९॥

अन्वय—सरद की निसि गोपिन संग रसिक रसरास रमतु, लहाछेह अति गतिन की, सबनि सब पास लखे।

रमत = रम रहे हैं, आनन्द कर रहे हैं। रसरास = सरस रासलीला। लहाछेह = एक प्रकार का नाच, जिसमें बड़ी तेजी से चक्रवत् घूमना पड़ता है; घूमते-घूमते मालूम होता है कि चारों ओर की चीजें पास हो नाचने लगीं।

शरद ऋतु की रात में, गोपियों के साथ, रसिक श्रीकृष्ण रसीले रास में रम रहे हैं। अत्यन्त चंचल गति के 'लहाछेह' नामक नृत्य के कारण सबने श्रीकृष्ण को सबके पास देखा।

मोर-चन्द्रिका स्याम सिर चढ़ि कत करति गुमानु।
लखिबी पायन पै लुठति सुनियतु राधा मानु ॥२०॥

अन्वय—मोर चन्द्रिका ! स्याम सिर चढ़ि कत गुमानु करति, सुनियतु राधा-मानु, पायन पै लुठति लखिबी।

मोर-चन्द्रिका = मुकुट में लगे मोर के पंखों की आँखें—कलँगी।

गुमान = घमंड। कत = क्यों, कितना। लखिबी = देखूँगी। लुठत = लोटते हुए। मान = रोष, रूठना।

अरी मोर-चन्द्रिका! कृष्ण के सिर पर चढ़कर क्यों इतरा रही है? सुना है, राधा मान करके बैठी हैं। (अतएव शीघ्र ही) तुझे उनके पावों पर लोटते हुए देखूँगी।

नोट—मानिनी राधा को श्रीकृष्ण जब मनाने जायँगे, तब उनके पैरों पर माथा टेककर मनायँगे। उस समय मोर-चंद्रिका को राधा के पावों पर लोटना ही होगा। मान भंजन का भव्य वर्णन है!

सोहत ओढ़ें पीत पटु स्याम सलौनें गात।
मनौ नीलमनि-सैल पर आतप पर्‌यौ प्रभात॥२१॥

अन्वय—सलौनें स्याम गात पीत पटु ओढ़ें सोहत, मनौ नीलमनि-सैल पर प्रभात-आतप पर्‌यो।

पीतपटु=पीला वस्त्र, पीताम्बर। सलौनें (स=सहित, लौनें=लावण्य) =नमकीन, सुन्दर। नीलमनि = नीलम। आतप=धूप।

सुन्दर साँवले शरीर पर पीताम्बर ओढ़े श्रीकृष्ण यों शोभते हैं। मानों नीलम के पहाड़ पर प्रातःकाल की (सुनहली) धूप पड़ी हो।

नोट—यहाँ कृष्णजी की समता नीलम के पहाड़ से और पीताम्बर की तुलना धूप से की गई है। प्रात-रवि की दिव्य और शीतल-मधुर किरणों से पीताम्बर की उपमा बड़ी अनूठी है।

किती न गोकुल कुल-बधू काहि न किहिं सिख दीन।
कौनैं तजी न कुल-गली ह्वै मुरली-सुर लीन॥२२॥

अन्वय—गोकुल कुल-बधू किहि न, काहि किहिं सिख न दीन, मुरली-सुर लीन ह्वै कौने कुल-गली न तजी।

किती=कितनी। काहि=किसको। किन = कितने। सिख = शिक्षा। कुल-गली = वंश परम्परा की प्रथा।

गोकुल में न जाने कितनी कुलवधुएँ हैं और किसको किसने शिक्षा न दी? (परन्तु कुलवधू होकर और उपदेश सुनकर भी) वंशी की तान में डूबकर किसने कुल की मर्यादा न छोड़ी?

अधर धरत हरि कैं परत ओठ डीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्र धनुष रँग होति ॥२३॥

अन्वय—अधर धरत हरि कैं ओठ-डीठि पट जोति परत, हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्रधनुष रँग होति।

अधर = होंठ, ओष्ठ। डीठि = दृष्टि। हरित = हरा।

होठों पर (बंशी) धरते ही श्रीकृष्ण के (लाल) होंठ, (श्वेत, श्याम और रक्त वर्ण) दृष्टि तथा (पीले) वस्त्र की ज्योति (उस वंशी पर) जब पड़ती है, तब वह हरे बाँस की वंशी इन्द्रधनुष की सी बहुरंगी हो जाती है।

नोट—इन्द्रधनुष वर्षाकाल में आकाश मंडल पर उगता है। वह मण्डलाकार, चमकीला, रँगीला और सुहावना होता है। उसमें सात रंग देखे जाते हैं। यहाँ कवि ने बंशी में भी रँगों की कल्पना बड़ी खूबी से की है। होंठ के लाल रँग और वस्त्र के पीले रंग के मिलने से नारंगी रंग, फिर होंठ के लाल रंग और दृष्टि के श्याम रंग से बैजनी रंग—इसी प्रकार, बाँसुरी के हरे रंग और अधरों के लाल रंग से पीला रंग इत्यादि। भगवान् श्यामसुन्दर का शरीर सघन मेघ, उसमें पीताम्बर की छटा दामिनी की दमक और बाँसुरी इन्द्रधनुष—जिसमें अधर, कर-कमल, दन्त-पंक्ति, नख-द्युति और 'श्वेत-श्याम-रतनार' दृष्टि की छाया प्रतिबिम्बित है! धन्य वर्णन!

कविवर मैथिलीशरणजी गुप्त ने भी 'जयद्रथ-वध' में खूब कहा है—

प्रिय पांचजन्य करस्थ हो मुख-लग्न यों शोभित हुआ।
कलहंस मानो कंज-वन में आ गया लोभित हुआ॥

छुटी न सिसुता की झलक झलक्यौ जोबनु अंग।
दीपति देह दुहूनु मिलि दिपति ताफता रंग ॥२४॥

अन्वय—सिसुता की झलक छुटी न, अंग जोबनु झलक्यौ, दुहूनु मिलि देह दीपति ताफता रंग दिपति।

सिसुता=शिशुता=बचपन। जोबनु=जवानी। देह दीपति=देह की दीप्ति, शरीर की चमक। ताफता=धूपछाँह नामक कपड़ा जो सीप की तरह रंग-विरंग झलकता या मोर की गर्दन के रंग की तरह कभी हलका और कभी गाढ़ा चमकीला रंग झलकता है। 'धूप+छाँह' नाम से ही अर्थ का आभास मिलता है। दिपति=चमकती है।

अभी बचपन की झलक छूटी ही नहीं, और शरीर में जवानी झलकने लगी। यों दोनों (अवस्थाओं) के मिलने से (नायिका के) अंगों की छटा धूपछाँह के समान (दुरंगी) चमकती है।

तिय-तिथि तरनि-किसोर बय पुन्य काल सम दोनु।
काहूँ पुन्यनु पाइयतु बैस-सन्धि संक्रोनु ॥२५॥

अन्वय—तिय तिथि, किसोर-बय तरनि, दोनु पुन्य काल सम, बैस-सन्धि संक्रोनु काहूँ पुन्यनि पाइयतु।

तरनि=सूर्य। सम=समान राशि में आना, इकट्ठा होना। दोनु=दोनो। संक्रोनु=संक्रान्ति। बैस=वयस, वय, उम्र।

स्त्री (नायिका) तिथि है और किशोरावस्था (लड़कपन और जवानी का संधिकाल) सूर्य है। ये दोनों पुण्य-काल में इकट्ठे हुए हैं। वय-सन्धि (लड़कपन की अन्तिम और जवानी की

आरंभिक अवस्था) रूपी संक्रान्ति (पवित्र पर्व) किसी (संचित) पुण्य ही से प्राप्त होती है।

नोट—कृष्ण कवि ने इसकी टीका यों की है—

उत सूरज रास तजै जब लौ नहिं दूसरि रासि दबावतु है।
तब लौ वह अन्तर को समयो अति उत्तम वेद बतावतु है॥
इतहू जब बैस-किसोर-दिनेस दुहू वय अन्तर आवतु है।
सुकृती कोउ पूरब पुन्यन ते बिवि संक्रम को छनु पावतु है॥

लाल अलौकिक लरिकई लखि लखि सखी सिहाति।
आज काल्हि में देखियत उर उकसौंहीं भाँति॥२६॥

अन्वय—लाल, अलौकिक लरिकई लखि लखि सखी सिहाति; आज काल्हि मैं उर उकसौंही भाँति देखियत।

सिहाति = ललचाती हैं। उकसौही-भाँति = उभरी हुई सी, उठी-सी, अंकुरित सी।

ए लाल! इसका विचित्र लड़कपन देख-देखकर सखियाँ ललचाती हैं। आज कल में ही (इसकी) छाती (कुछ) उभरी-सी देख पड़ने लगी है।

भावकु उभरौंहौं भयो कछुक परयौ भरुआइ।
सीपहरा के मिस हियौ निसि-दिन देखत जाय॥२७॥

अन्वय—भावकु उभरौंहौं, भयौ, कछुक भरुआय पर्‌यौ; सीपहरा कैं मिस हियौ हेरत निसि-दिन जाय।

भावकु (भाव = एकु) = कुछ-कुछ। उभरौंहौं = विकसित, उभरे हुए। भरु = भार, बोझ। सीप-हरा = सीप से निकले मोतियों की माला। मिस = बहाना। हियो = हृदय, छाती।

(उसकी छाती) कुछ-कुछ उभरी-सी हो गई है (क्योंकि

उसपर अब) कुछ बोझ भी आ पड़ा है । (इसलिये) मोती की माला के बहाने अपनी छाती देखते रहने में ही (उसके) दिन-रात बीतते हैं ।

इक भीजैं चहलैं परैं बूड़ैं बहैं हजार।
किते न औगुन जग करै वै नै चढ़तो बार ॥२८॥

अन्वय—इक भीजैं, चहले परैं, बूड़ैं हजार बहैं, नै वै चढ़ती बार जग किते औगुन न करै ।

भीजैं = शराबोर हुए। चहले परैं = दलदल में फँसे। बूड़ैं = डूब गये। नै=नदी । वै= लय, अवस्था । औगुन=उत्पात, अनर्थ ।

कोई भींगता है, कोई दलदल में फँसता है, और हजारों डूबते बहे जाते हैं । नदी और अवस्था (जवानी) चढ़ते (उमड़ते) समय संसार के कितने अवगुण नहीं करती हैं ।

नोट—उठती जवानी में कोई प्रेम-रंग में शराबोर होता है, कोई वासना के दलदल में फँसता है, कोई विलासिता में डूब जाता है, कितने उमंग-तरंग में बह जाते हैं । क्या-क्या उपद्रव नहीं होते । नदी में बाढ़ आने पर तरह-तरह के अनर्थ होते हैं ।

अपने अँग के जानि कै जोबन-नृपति प्रबीन ।
स्तन मन नैन नितंब कौ बड़ौ इजाफा कीन ॥२९॥

अन्वय—अपने अँग के जानि कै, जोबन प्रवीन नृपति, स्तन मन नैन नितंब कौ बढ़ौ इजाफा कीन ॥२९॥

अपने अँग के = अपना शरीर, सहायक । स्तन = छाती । नितम्ब = चूतड़ । इजाफा = तरक्की, बढ़ती ।

अपना शरीरी (सहायक) समझकर यौवनरूपी चतुर

राजा ने (नायिका के) स्तन, मन, नयन और नितम्ब को बड़ी तरक्की दी है।

नोट—जवानी आने पर उपर्युक्त अंगों का स्वाभाविक विकाश हो जाता है।

देह दुलहिया की बढ़ै ज्यौं ज्यौं जोबन-जोति।
त्यौं त्यौं लखि सौत्यैं सबै बदन मलिन दुति होति ॥३०॥

अन्वय—दुलहिया की देह ज्यौं ज्यौं जोबन-जोति बढ़ै, त्यौं त्यौं लखि सबै सौत्यैं-बदन-दुति मलिन होति।

दुलहिया = दुलहिन। जोबन = जवानी। बदन = मुख।

दुलहिन की देह में ज्यों-ज्यों जवानी की ज्योति बढ़ती है त्यों-त्यों (उसे) देखकर सभी सौतिनों के मुख की द्युति मलिन होती जाती है।

नोट—सौतिनों का मुख मलिन इसलिये होता जाता है कि अब नायक उसीपर मुग्ध रहेगा, हमें पूछेगा भी नहीं।

नव नागरि तन मुलुक लहि जोबन आमिर जोर।
घटि बढ़ि तैंबढ़ि घटि रकम करीं और की और ॥३१॥

अन्वय—नागरि-तन नव-मुलुक लहि जोबन जोर आमिर, बढ़ि तैं घटि घटि बढ़ि रकम और की और करीं।

आमिर = हाकिम, शासक। जोर = जबर्दस्त। रकम = जमाबन्दी।

नागरी (नायिका) के शरीररूपी नवीन देश को पाकर यौवन रूपी जबर्दस्त हाकिम ने (कहीं) बढ़ती को घटाकर और (कहीं) घटी को बढ़ाकर जमाबन्दी और की और ही कर दी—कुछ-का-कुछ बना दिया।

नोट—भावार्थ यह है कि किसी अंग को घटा दिया—जैसे, कटि

आदि—और किसी अंग को बढ़ा दिया—जैसे, कुच आदि। जब कोई राजा नया देश प्राप्त करता है, तो वह उलट-फेर करता ही है।

लहलहाति तन-तरुनई लचि लगि-लौं लफि जाइ।
लगे लाँक लोइन भरी लोइनु लेति लगाइ ॥३२॥

अन्वय—तन तरुनई लहलहाति, लगि लौं लचि लफि जाइ, लाँक लोइन भरी लगे लोइनु लगाइ लेति ॥३२॥

लचि = लचक कर। लगि = लग्गी, बांस की पतली शाखा। लौं = समान। लफि जाय = झुक जाती है। लाँक (लंक) = कमर। लोइन = लावण्य, सुन्दरता। लोइनु = लोचन, आँख।

शरीर में जवानी उमड़ रही है (जिसके बोझ से वह) नायिका बाँस की पतली छड़ी-सी लचककर झुक जाती है। उसकी कमर लावण्य से भरी हुई दीखती है और (देखनेवालों की) आँखों को (बरबस) अपनी ओर खींच लेती है।

सहज सचिक्कन, स्यामरुचि सुचि, सुगंध, सुकुमार।
गनतु न मनु पथु अपथु लखि बिथुरे, सुथरे बार ॥३३॥

अन्वय—सहज सचिक्कन, स्याम रुचि, सुचि-सुगंध, सुकुमार-बिथुरे सुथरे बार लखि मनु पथु अपथु न गनतु ॥३३॥

सहज = स्वाभाविक। स्यामरुचि = काले। सुचि = पवित्र। बिथुरे = बिखरे हुए। गनतु = समझता या विचारता है। अपथु = कुपंथ। सुथरे = स्वच्छ, सुन्दर।

स्वभावतः चिकने, काले, पवित्र गंधवाले और कोमल—ऐसे बिखरे हुए सुन्दर बालों को देखकर मन सुमार्ग और कुमार्ग कुछ भी नहीं विचारता।

वेई कर ब्यौरनि वहै ब्यौरो कौन बिचार।
जिनहीं उरझ्यौ मो हियौ तिनहीं सुरझे बार ॥३४॥

अन्वय—वेई कर, ब्यौरनि वहै, बिचार कौन ब्यौरो ? जिन ही मो हियौ उरझ्यौ तिनहीं बार सुरझे।

वेई = वेही। ब्यौरनि = सुलझाने का ढंग। ब्यौरो = ब्यौरा, भेद। उरझ्यौ = उलझा। बार = बाल, केश। सुरझे = सुलझा रहे हैं।

वेही हाथ हैं, बाल सुलझाने का ढंग भी वही है। (हे मन !) विचार तो सही कि भेद (रहस्य) क्या है ? (मालूम होता है) जिन (नायक) से मेरा हृदय उलझा हुआ है, वे ही बाल भी सुलझा रहे हैं।

नोट—नायक प्रेमाधिक्य के कारण स्त्री का (नाइन का) वेष बनाकर नायिका के बाल सुलझा रहा है। इसी बात पर नायिका चिंता कर रही है कि हो न हो वेही इस स्त्री के रूप में हैं।

कर समेटि कच भुज उलटि खएँ सीस-पटु डारि।
काकौ मनु बाँधै न यह जूरा बाँधनिहारि ॥३५॥

अन्वय—कच कर समेटि, भुज उलटि, सीस-पट खएँ डारि, यह जूरा बाँधनिहारि काकौ मनु न बाँधै।

कच = केश। समेटि = गुच्छे की तरह सुलझाकर। खएँ = पखौरा। सीस-पट = सिर का आँचल। काको = किसका। जूरा = जूड़ा, केश-ग्रंथि, वेणी का कुण्डलाकार बन्धन। बाँधनिहारि = बाँधनेवाली।

बालों को हाथों से समेट भुजाओं को उलटे और सिर के आँचल को अपने पखौरों पर डाले हुई यह जूड़ा बाँधनेवाली भला किसका मन नहीं बाँध लेती ?

छुटे छुटावत जगत तैं सटकारे, सुकुमार।
मन बाँधत बेनी बँधे नील, छबीले बार ॥३६॥

अन्वय—सटकारे सुकुमार छुटे जगत में छुटावत, नील छबीले बार बेनी बँधे मन बाँधत।

सटकारे = छरहरे, लम्बे। छुटावत = छुड़ाते हैं।

लम्बे और कोमल (बाल) खुले रहने पर संसार से छुड़ाते हैं—सांसारिक कामों से विमुख बनाते हैं—और ये ही काले सुन्दर बाल वेणी के रूप में बँध जाने पर मन को बाँधते हैं।

नोट—लटों में कभी दिल को लटका दिया।

कभी साथ वालों के झटका दिया—मीरहसन

कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगौ इतौ उदोत।
बंक बकारी देत ज्यौं दामु रुपैया होत ॥३७॥

अन्वय—मुख कुटिल अलक छुटि परत उदोत इतौ बढ़िगौ, ज्यों बंक बकारी देत दामु रुपैया होत।

कुटिल = टेढ़ी। अलक = केश-गुच्छ, लट। उदोत = कान्ति, चमक। बंक = टेढ़ी। दाम = दमड़ी। छुटि परत = बिखरकर झूलने लगता है। बकारी = टेढ़ी लकीर जो किसी अंक की दाईं ओर उसके रुपया सूचित करने के लिये खींच दी जाती है।

मुख पर टेढ़ी लट के छुट पड़ने से (नायिका के मुख की) कान्ति वैसे ही बढ़ गई है, जैसे टेढ़ी लकीर (बिकारी) देने से दाम का मोल बढ़कर रुपया हो जाता है।

नोट—दाम)१ यों लिखते हैं और रुपया १) यों। अभिप्राय यह है कि वही बाल स्वाभाविक ढंग से पीछे रहने पर उतना आकर्षित नहीं होता, जितना उलटकर मुख पर पड़ने से होता है। जैसे, बिकारी अंक के पीछे रहने पर दाम का सूचक है और आगे रहने पर रुपये का।

ताहि देखि मनु तीरथनि बिकटनि जाइ बलाइ।
जा मृगनैनी के सदा बेनी परसतु पाइ ॥३८॥

अन्वय—जा मृगनैनी के पाइ सदा बेनी परसतु, ताहि देखि मनु बिकटनि तीरथनि बलाइ जाइ।

परसत = स्पर्श करती है। बेनी = चोटी, केश-पास। बलाइ = बलैया, नौजी। बिकटनि = विकट, दुर्गम।

जिस मृगनयनी के पाँवों को सदा वेणी स्पर्श करती है—जिसकी लम्बी चोटी सदा पाँवों तक झूलती रहती है—उसे देखकर मन विकट तीर्थों (का अटन करने) को बलैया जाय!

नीकौ लसतु लिलार पर टीकौ जरितु जराइ।
छबिहिं बढ़ावतु रबि मनों ससि-मंडल मैं आइ ॥३९॥

अन्वय—लिलार पर जराइ जरितु टीकौ नीकौ लसतु, मनो ससि-मंडल मैं आइ रबि छबिहि बढ़ावत।

जरितु = जड़ा हुआ। जराइ = जड़ाव। टीकौ = माँग टीका, शिरोभूषण।

ललाट पर जड़ाऊ टीका खूब शोभता है। मानो चन्द्रमंडल में आकर सूर्य (चन्द्रमा की) शोभा बढ़ा रहा हो।

नोट—नायिका का ललाट चंद्रमंडल है और जड़ाऊ टीका सूर्य। चंद्रमंडल में सूर्य के आते ही चंद्रमा की शोभा नष्ट हो जाती है। किन्तु यहाँ तो रत्न-खचित टीटे से मुखचंद्र की छटा हो कुछ और हो गई है! कैसी बारीकबीनी है!!

सबै सुहाएई लगैं बसैं सुहाएँ ठाम।
गोरैं मुँह बेंदी लसै अरुन, पीत, सित, स्याम ॥४०॥

अन्वय—सुहाएँ ठाम बसैं सबै सुहाएई लगैं, गोरैं मुँह अरुन, पीत, सित, स्याम बेंदी लसै।

बेंदी = ललाट पर स्त्रियाँ गोल बिन्दु रचती है। सित = उजला। ठाम= स्थान। सोहाये = सुन्दर, सुहावने।

सुन्दर स्थान पर विराजने से (अच्छे-बुरे) सभी सुहावने ही लगते हैं। (नायिका के) गोरे मुख पर लाल, पीली, उजली और नीली (सभी रंगों की) बेंदी अच्छी ही लगती है।

कहत सबै बेंदी दियैं आँकु दसगुनौ होतु।
तिय लिलार बेंदी दियैं अगिनितु बढ़तु उदोतु ॥४१॥

अन्वय—सबै कहत, बेंदी दियैं आँकु दस गुनौ होतु, तिय-लिलार बेंदी दियैं उदोतु अगिनितु बढ़तु।

आँकु = अंक। लिलार = ललाट। अगिनित = बेहद। उदोतु = कान्ति।

सभी कहते हैं कि बिन्दी देने से अंक का मूल्य दसगुना बढ़ जाता है। (किन्तु) स्त्रियों के ललाट पर बेंदी देने से तो (उसकी) कान्ति बेहद बढ़ जाती है।

भाल लाल बेंदी छए छुटे बार छबि देत।
गह्यौ राहु अति आहु करि मनु ससि सूर-समेत ॥४२॥

अन्वय—लाल बेंदी छए भाल, छुटे बार छबि देत, मनु ससि सूर समेत अति आहु करि राहु गह्यौ।

भाल = ललाट। छुटे = बिखरे। अति आहु करि = बहुत साहस या ललकार करके। ससि = चंद्रमा। सूर = सूर्य।

लाल बेंदी वाले ललाट पर बिखरे बाल भी शोभा देते हैं। (ऐसा मालूम होता है) मानो चन्द्रमा ने, सूर्य के साथ, अत्यन्त साहस सा ललकार करके, राहु को पकड़ा है।

नोट—यहाँ ललाट चन्द्रमा, लाल बेंदी प्रातःकाल का सूर्य और केश राहु है।

पाइल पाइ लगी रहै लगौ अमोलिक लाल।
भौंडर हूँ की भासि है बेंदी भामिनि-भाल ॥४३॥

अन्वय—अमोलिक लाल लगौ पाइल पाइ लगी रहै, भौंडर हूँ की बेंदी भामिनि-भाल भासि है।

पाइल = पाजेब, नूपर, पदमंजीर। पाइ = पैर। अमोलिक = अनमोल, अमूल्य। लाल = रत्न। भौंडर = अवरक। भासिहै = शोभा देगी। भामिनी = स्त्री, नायिका।

अनमोल जवाहरात से जड़े होने पर भी पाजेब पैरों में ही पड़ी रहती है। किन्तु (तुच्छ) अवरक की होने पर भी बेंदी नायिका ललाट पर ही शोभा देगी।

भाल लाल बेंदी, ललन आखत रहे बिराजि।
इंदुकला कुज मैं बसी मनौ राहु-भय भाजि ॥४४॥

अन्वय—ललन, भाल लाल बेंदी आखत बिराजि रहे, मनौ राहु भय भाजि इंदु-कला कुज में बसी।

आखत = अक्षत, चावल। इंदुकला = चन्द्रमा की कला। कुज = मंगल। भाजि = भागकर।

अहो ललन! उस नायिका के ललाट की लाल बेंदी में अक्षत विराज रहा है मानों राहु के भय से भागकर चन्द्रमा की कला मंगल में आ बसी हो।

नोट—यहाँ उजला अक्षत चन्द्रमा की कला है, लाल बेंदी मंगल है, (केश राहु हैं)। मंगल का रंग कवियों ने लाल माना है। बेंदी में अक्षत लगाने की प्रथा मारवाड़ में पाई जाती है। बिहारीलाल जयपुर में रहते भी तो थे।

मिलि चन्दन बेंदी रही गौरैं मुँह न लखाइ।
ज्यौं ज्यौं मद-लाली चढ़ै त्यौं त्यौं उघरति जाइ ॥४५॥

अन्वय—चन्दन बेंदी गोरैं मुँह मिलि रही, लखाइ न; ज्यौं-ज्यौं मद लाली चढ़ै त्यौं-त्यौं उघरति जाइ।

मद-लाली = मस्ती की लाली, जवानी की उमंग या ऐंठ की लाली।

चन्दन की उजली बेंदी मुख की गोराई में (एकदम) मिल गई है, वह गोरे मुख पर दीख नहीं पड़ती—चन्दन की उज्ज्वलता गोराई में लीन हो गई है। किन्तु ज्यों-ज्यों (उस नायिका के मुख पर) मस्ती की लाली चढ़ती जाती है, (वह बेंदी) साफ़ खुलती चली जाती है।

तिय-मुख लखि हीरा-जरी बेंदी बढ़ैं बिनोद।
सुत-सनेह मानौ लियौ बिधु पूरन बुधु गोद ॥४६॥

अन्वय—तिय मुख हीरा जरी बेंदी लखि बिनोद बढ़ैं, मानों सुत-सनेह पूरन बिधु बुधु गोद लियौ।

बिधु पूरन = पूर्ण चन्द्रमा। बिनोद=प्रसन्नता, आनन्द। बुधु = चंद्रमा के पुत्र।

स्त्री (नायिक) के मुख पर हीरा जड़ी हुई बेंदी देखकर आनन्द की वृद्धि होती है। मानों पुत्र के स्नेह से पूर्ण चन्द्रमा ने बुध को गोद लिया हो।

नोट—यहाँ नायिका का मुख पूर्ण चन्द्र है और हीरा-जड़ी बेंदी बुध।

गढ़-रचना, बरुनी, अलक, चितवनि, भौंह, कमान।
आधु बँकाई ही बढ़े तरुनि, तुरंगम, तान ॥४७॥

अन्वय—गढ़ रचना, बरुनी, अलक, चितवनि, भौंह, कमान, तरुनि, तुरंगम, तान—आधु बँकाई ही बढ़े।

बरुनी = पलक के बाल। अलक=मुखड़े पर लटके हुए लच्छेदार केश,

बंकिम लट। कमान=धनुष। आबु=(संस्कृत आहं)=मूल्य, आदर। बँकाई=टेढ़ापन। तुरंगम=घोड़ा।

गढ़ की रचना, पलक के बाल, लट, चितवन, भौंह, धनुष, नवयुवती, घोड़ा और तान—(इन सब) का मूल्य (आदर) टेढ़ाई से ही बढ़ता है।

नासा मोरि नचाइ जे करी कका की सौंह।
काँटे-सी कसकैं ति हिय गड़ी कँटीली भौंह ॥४८॥

अन्वय—नासा मोरि, जे नचाय, कका की सौंह करी। ति कँटीली भौंह, हिय गड़ी काँटे-सी कसकैं।

नासा=नाक। मोरि=मोड़कर, सिकोड़कर। जे=जो (भौंह)। सौंह=शपथ, क़सम। कसकैं=सालती है, टीसती है।

नाक सिकोड़ कर जिस (भौंह) को नचाकर (उस नायिका ने) काका की कसम खाई। (उस समय की) उसकी वह कटीली भौंह (अभी तक) हृदय में गड़ी हुई काँटे सी खटक रही है-चुभ रही है।

खौरि-पनिच भृकुटी धनुषु बधिकु-समरु तजि कानि।
हनतु तरुन-मृग तिलक-सर सुरक-भाल, भरि तानि ॥४९॥

अन्वय—खौरि-पनिच, भृकुटी-धनुषु, बधिकु-समरु कानि तजि, सुरक-भाल, तिलक-सर भरि तानि तरुन-मृग हनत।

खौरि=ललाट पर चंदन का आड़ा टीका, ललाट पर चंदन लेपकर उँगलियों से खरोंचने पर खौर-तिलक बनता है। पनिच=धनुष की डोरी, प्रत्यंचा। समर=स्मर=कामदेव। कानि=मर्यादा। तिलक=ललाट का खड़ा टीका। सुरक=तिलक का वह भाग, जो नाक पर लगा होता है। भाल=तीर की गाँसी। भरि तानि=खूब तान कर।

खौर-रूपी प्रत्यंचा को भौंह-रूपी धनुष पर चढ़ाकर, व्याधा-

रूपी कामदेव, (अपनी) मर्यादा छोड़, सुरक रूपी गाँसी वाले तिलक-रूपी शर को, खूब खींच कर, नवयुवक-रूपी मृगों को मारता है।

रस सिंगार मंजनु किए कंजनु भंजनु दैन।
अंजनु-रंजनु हूँ बिना खंजनु गंजनु, नैन ॥५०॥

अन्वय—सिंगार-रस मंजन किए नैन कंजनु भंजनु दैन, बिना अंजनु-रंजनु हूँ खंजनु गंजनु।

शृंगार-रस में गोते लगाये हुए नेत्र कमलों के अभिमान तोड़नेवाले हैं और बिना अंजन लगाये हुए भी वे खंजनों का घमंड चूर करते हैं—कमलों को परास्त और खंजरीटों को अपमानित करते हैं।

खेलन सिखए अलि भलैं चतुर अहेरी मार।
कानन-चारी नैन-मृग नागर नरनु सिकार ॥५१॥

अन्वय—अलि, चतुर अहेरी-मार कानन-चारी नैन-मृग नागर नरनु सिकार खेलन भलैं सिखए।

अलि = सखी। अहेरी = शिकारी। मार = कामदेव। कानन-चारी = कानों तक आने-जानेवाले, वन में विहरनेवाले। नागर = चतुर, शहरी। नरनु = पुरुषों का।

ऐ सखी! चतुर शिकारी कामदेव ने कानों तक अपने-जानेवाले (वन में बिहार करनेवाले) तुम्हारे नेत्र-रूपी हिरनों को चतुर नागरिक पुरुषों का शिकार करना भाँली भति सिखलाया है।

नोट—हिरनों से आदमियों का शिकार कराना—वह भी ठेठ देहाती गँवार आदमियों का नहीं, छैल-चिकनिये चतुर नागरिकों का!—कवि की अनूठी रसिकता प्रदर्शित करता है।

अर तैं टरत न बर परे दई मरक मनु मैन।
होड़ा-होड़ी बढ़ि चले चितु, चतुराई, नैन ॥५२॥

अन्वय—चितु, चतुराई, नैन होड़ा-होड़ी बढ़ि चले न अर तैं टरत, वर परे मनु मैन मरक दई।

अर तैं = हठ से। टरत = टरते हैं, डिगते है। बर परे = बल पकड़ता है। देई = दिया हो। मरक = बढ़ावा। मैन = कामदेव। होड़ा-होड़ी = बाजी लगाकर, शर्त्त बाँधकर, प्रतिद्वन्द्विता, प्रतिस्पर्धा।

(नायिका के) चित्त की चतुराई और उसकी आँखें बाजी लगाकर बढ़ चली हैं—जिस प्रकार आँखें बड़ी-बड़ी होती जा रही हैं उसी प्रकार उसकी चतुराई भी बढ़ी चली जाती है। वे (चतुराई और आँखें) अपने हठ से नहीं डिगतीं, वरन् (वह हठ) और भी बल पकड़ता जाता है। मानों कामदेव ने उन्हें (इस प्रतिद्वन्द्विता के लिये) बढ़ावा दे दिया हो, ललकार दिया हो।

सायक सम मायक नयन रँगे त्रिबिध रँग गात।
झखौ बिलखि दुरि जात जल लखि जलजात लजात ॥५३॥

अन्वय—सायक सम मायक-नयन, त्रिबिध रँग गात रँगे, लखि झखौ बिलखि जल दुरि जात, जलजात लजात।

सायक = सायंकाल। मायक = माया जाननेवाला, जादूगर। त्रिविध = तीन प्रकार। गात = शरीर। झखौ = मछली भी। बिलखि = संकुचित या दुखी होकर। जलजात = कमल।

संध्याकाल के समान मायावी आँखें अपनी देहों को तीन रंगों में रँगी हुई हैं। उन्हें देखकर मछली भी संकुचित हो

जल में छिप जाती है और कमल लज्जित हो जाते हैं।

नोट—नेत्रों में लाल, काले और उजले रंग होते हैं। देखिये—

अमिय हलाहल मद भरे, स्वेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि गिरत, जिहि चितवत इक बार॥

जोगु-जुगुति सिखए सबै मनो महामुनि मैनु।
चाहतु पिय-अद्वैतता काननु सेवतु नैनु॥५४॥

अन्वय—मनो महामुनि मनु सबै जोग-जुगुति सिखए नैनु पिय-अद्वैतता चाहत, काननु सेवतु।

योग = मिलन, योग। मनो = मानों। जुगुतु = युक्ति, उपाय। मैन = कामदेव। पिय = प्रीतम, ईश्वर। अद्वैतता = मिलन, अभेद-भाव, अभिन्नता। कानन = कानों, जंगल। सिखये = सिखा दिया।

मानों महातपस्वी कामदेव ने योग (मिलन) की सारी युक्तियाँ बता दी हैं। इसीसे (उस नायिका के नेत्र) प्रीतम (ईश्वर) से सदा मिले रहने के लिये कानों तक बढ़ आये हैं, (वियोग-रहित अनन्त मिलन के लिये) वन-सेवन कर रहे हैं—तप कर रहे हैं।

बर जीते सर मैन के ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनानु तैं हरि नीके ए नैन॥५५॥

अन्वय—मैन के सर-बर जीते ऐसे मैं न देखे, हरिनी के नैनानु तैं, हरि, ए नैन नीके।

बर = बलपूर्वक। मैन = कामदेव। मैं न = मै नहीं।

इन नेत्रों ने कामदेव के (अचूक) वाणों को भी बलपूर्वक जीत लिया है। मैंने तो ऐसे नेत्र (कभी) देखे ही नहीं। हे कृष्ण! हरिनी के नैन से भी ये नेत्र सुन्दर हैं।

नोट—खंजन कंज न सरि लहै बलि अलि को न बखान।
एनो की अँखियान ते ए नोकी अँखियान।—शृंगार सतसई

संगति दोषु लगै सबनु कहे ति साँचे बैन।
कुटिल बंक भ्रुव संग भए कुटिल बंक गति नैन ॥५६॥

अन्वय—संगति-दोषु सबनु लगै ति बैन साँचे कहे, कुटिल बंक भ्रुव-संग ते नैन कुटिल बंक गति भये।

भ्रुव = भँवें, भौहें। कुटिल गति—टेढ़ी चालवाली।

संगति का दोष सबको लगता है, सचमुच यह बात सच्ची कही गई है। तिरछी टेढ़ी भँवों की संगति से आँखें भी टेढ़ी और तिरछी चाल वाली हो गईं!

दृगनु लगत बेधत हियहिं बिकल करत अँग आन।
ए तेरे सब तें विषम ईछन तीछन बान ॥५७॥

अन्वय—लगत दृगनु, बेधत हियहिं, बिकल करत आन अँग ए तेरे ईछन-तीछन बान सब तैं विषम।

आन = दूसरा। विषम = भयंकर, कठोर। ईछन = ईक्षण = नेत्र। तीछन = तीक्ष्ण = तेज, चोखे, कटीले।

लगते हैं आँखों में, बेधते हैं हृदय को, और व्याकुल करते हैं अन्य अंगों को—सारे शरीर को! ये तुम्हारे नेत्र-रूपी तीखे-चोखे बाण सबसे भयंकर हैं।

झूठे जानि न संग्रहे मन मुँह निकसे बैन।
याही तैं मानहु किये बातनु कौं बिधि सैन ॥५८॥

अन्वय—मुँह निकसे बैन झूठे जानि मन संग्रहे न, मानहु याही तैं बातनु कौं बिधि सैन किये।

सैन = इशारा। बैन = वचन। संग्रहै = संचय करता है। याही तैं = इसी लिये। बिधि = ब्रह्मा।

मुँह से निकले हुए वचनों को झूठा समझकर मन संग्रह नहीं करता—प्रमाण नहीं मानता। मानों इसी कारण (हृदय की) बातें करने के लिये ब्रह्मा ने नेत्रों के इशारे बनाये।

फिरि फिरि दौरत देखियत निचले नैंकु रहैं न।
ए कजरारे कौन पर करत कजाकी नैन ॥५९॥

अन्वय—फिरि फिरि दौरत देखियत नैंकु निचले न रहैं, ए कजरारे नैन कौन पर कजाकी करत।

निचले = निश्चल, स्थिर। नेकु = जरा भी। कजरारे = काजल लगाये हुए। कजाकी = (कजा = मृत्यु) हत्यारापन, लुटेरापन, लूटमार।

बार बार दौड़ते हुए दीख पड़ते हैं, जरा भी स्थिर नहीं रहते। (तुम्हारे) ये काजल लगे हुए नेत्र किसपर डाका डाल रहे हैं—किसकी हत्या करने के लिये ये इधर-उधर दौड़ लगा रहे हैं?

खरी भीर हू भेदि कै कित हू ह्वै उत जाइ।
फिरै डीठि जुरि डीठि सों सबकी डीठि बचाइ ॥६०॥

अन्वय—खरी भीरहू भेदि कै कितहू ह्वै उत जाइ, डीठि सबकी डीठि बचाइ डीठि सों जुरि फिरै।

खरी=भारी। भेदि कै=पार करके। कितहू ह्वै = किसी ओर से होकर। उत=वहाँ। डीठि=नजर। जुरि = मिलकर। डीठि बचाइ=आँखें बचाकर।

भारी भीड़ को भी भेद कर, और किसी ओर से भी वहाँ (नायक के पास) पहुँचकर, नायिका की नजर, सबकी आँखें बचा, उसकी (नायक की) नजर से मिल, फिर (साफ कन्नी काट कर) लौट आती है।

सबही त्यौं समुहाति छिनु चलति सबनु दै पीठि।
वाही त्यौं ठहराति यह कविलनवी लौं दीठि ॥६१॥

अन्वय—कविलनवी-लौं यह दीठि सब ही तन छिन समुहाति, सबनु पीठि दै चलति, वाही तन ठहराति।

समुहाति = सामना करना, टकराना। कविलनवी = कम्पास के समान एक प्रकार का यंत्र, जिसकी सूई सदा पश्चिम की ओर रहती है, चोर पकड़ने की वह कटोरी जो मंत्र पढ़कर चलाई जाती है। चलति सबनि दै पीठि = सब का तिरस्कार करती चली जाती है।

किबलनुमा की सुई के समान उसकी यह नजर सभी के शरीर से क्षण भर के लिये टकराती है, फिर सभी से विमुख होकर चल पड़ती है, और उसके—अपने प्रेमिक के—रूप पर आकर ठहरती है।

कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन मैं करत हैं नैननु ही सब बात ॥६२॥

अन्वय—कहत, नटत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात, भरे भौन में नैननु ही सब बात करत हैं।

कहत = कहते हैं, इच्छा प्रकट करते हैं। नटत = नाहीं-नाहीं करते हैं। रीझत = प्रसन्न होते हैं। खिझत = खीजते हैं, रंजीदा होते हैं। खिलत = पुलकित होते हैं। लजियात = लजाते हैं।

कहते हैं, नाहीं करते हैं, रीझते हैं, खीजते हैं, मिलते हैं, खिलते हैं और लजाते हैं। (लोगों से) भरे घर में (नायक-नायिका) दोनों ही) आँखों ही द्वारा बातचीत कर लेते हैं।

सब अँग करि राखी सुघर नाइक नेह सिखाइ।
रस-जुत लेत अनंत गति पुतरी-पातुर राइ ॥६३॥

अन्वय—नेह-नाइक सिखाइ सब अंग करि सुघर राखी पुतरी-पातुरराइ रस-जुत अनंत गति लेत।

अँग = प्रकार। सुघर = सुचतुर, सुदक्ष। नाइक = नाचना-गाना

सिखानेवाला उस्ताद। पातुर = वेश्या। 'राय' वेश्याओं की उपाधि—जैसे प्रवीणराय वेश्या, जो केशवदास की साहित्यिक चेली थी। रस-जुत = रसीले। लेत अनन्त गति = अनेक प्रकार के पैंतरे और काटछाँट करती है, तरह-तरह की भावभंगी ले थिरकती है।

प्रेम-रूपी उस्ताद ने सिखाकर उसे सब प्रकार से सुदक्ष बना रक्खा है। (फलतः वह आँखों की) पुतली-रूपी वेश्या रसों से भरे हुए नाना प्रकार के हाव-भाव दिखा रही है।

कंज नयनि मंजनु किये बैठी ब्यौरति बार।
कच अँगुरी बिच दीठि दै चितवति नन्दकुमार ॥६४॥

अन्वय—कंजनयनि मंजनु किये बैठी बार ब्यौरति, कच अँगुरी बिच दीठि दै नंद कुमार चितवति।

ब्यौरति = सुलझाती है। कच = बाल, केश। दीठि = दृष्टि, नजर।

कमलनयनी (नायिका) स्नान कर बैठी हुई अपने बालों को सुलझा रही है और बालों तथा अँगुलियों के बीच से कृष्णजी को देखती भी है। (लोग जानते हैं कि वह बाल सँवार रही है, इधर बालों और उँगलियों के बीच इशारे चल रहे हैं!)

डीठि-बरत बाँधी अटनु चढ़ि धावत न डरात।
इतहिं-उतहिं चित दुहुन के नट-लौं आवत-जात ॥६५॥

अन्वय—अटनु बाँधी डीठि-बरत चढ़ि धावत न डरात, दुहुन के चित्त नट-लौं इतहिं उतहिं आवत जात।

डीठि = नजर। बरत = रस्सी। अटनि = कोठे। लौं = समान।

कोठों पर बँधी दृष्टि-रूपी रस्सी पर चढ़कर दौड़ते हैं, (जरा भी) डरते नहीं। दोनों के चित्त नट के समान इधर-से-उधर (बेधड़क) आते-जाते हैं।

नोट—प्रेमिक और प्रेमिका अपनी अटारियों पर खड़े आँखें लड़ा रहे हैं। कवि ने उसी समय की उनके चित्त की दशा का वर्णन किया है।

जुरे दुहुनु के दृग झमकि रुके न झीनैं चीर।
हलुकी फौज हरौल ज्यौं परै गोल पर भीर ॥६६॥

अन्वय—दुहुनु के दृग झमकि जुरे, झीनैं चीर न रुके, ज्यौं हरौल हलुकी फौज, गोल पर भीर परैं।

झीने = महीन, बारीक। चीर = साड़ी। हरौल = हरावल, सेना का अग्रभाग। गोल = सेना का मुख्य भाग। झमकि = उछलकर या नाचकर। भीर = चोट, हमला।

दोनों की आँखें ललक के साथ बढ़कर जुट गईं, बारीक साड़ी (के घूँघट) में वे न रुकीं, जिस प्रकार सेना के अग्रभाग में हलकी फौज रहने से मुख्य भाग पर ही भीड़ आ पड़ती है।

लीनैं हूँ साहस सहसु कीनैं जतनु हजारु।
लोइन लोइन-सिंधु तन पैरि न पावत पारु ॥६७॥

अन्वय—हजार जतनु कीनैं सहसु साहस लीनैं हूँ, लोइन तन-लोइन-सिंधु पैरि पार न पावत।

लोइन = आँख। लोइन = लावण्य, सुन्दरता। पैरि = तैरकर।

हजार यत्न करने और हजार साहस रखने पर भी ये आँखें (तुम्हारे) शरीर-रूपी लावण्य-सागर को तैरकर पार नहीं पा सकतीं—तुम्हारा शरीर इतने अगाध-लावण्य से परिपूर्ण है!

पहुँचति डटि रन-सुभट लौं रोकि सकैं सब नाहिं।
लाखनु हूँ की भीर मैं आँखि उहीं चलि जाहिं ॥६८॥

अन्वय—रन-सुभट लौं डटि पहुँचति, सब नाहिं रोकि सकैं, लाखनुहूँ की भीर में आँखि उहीं चलि जाहिं।

रन-सुभट = लड़ने में वीर ।

लड़ाई के वीर योद्धा के समान डटकर पहुँच जाती हैं—लोग उन्हें नहीं रोक सकते । लाखों की भीड़ में भी (उसकी) आँखें उस (नायक की) ओर चली ही जाती हैं ।

गड़ी कुटुम की भीर मैं रही बैठि दै पीठि ।
तऊ पलकु परि जाति इत सलज हँसौंही डीठि ॥६९॥

अन्वय—कुटुम की भीर मैं गड़ी पीठि दै बैठि रही, तऊ पलकु सलज हँसौंही डीठि इत परि जाति ।

पलकु = पल + एकु = एक पल के लिये । इत = यहाँ, इस ओर । हँसौंही = प्रसन्न, विनोदिनी ।

कुटुम्ब की भीड़ में गड़ी हुई—चारो ओर से परिवार वालों से घिरी हुई—(वह नायिका नायक की ओर) पीठ देकर बैठी है । तो भी एक क्षण के लिये (उसकी) लजीली और विनोदिनी दृष्टि इसकी ओर पड़ ही जाती है ।

भौंह उँचै आँचरु उलटि मौरि मोरि मुँह मोरि ।
नीठि-नीठि भीतर गई दीठि दीठि सौं जोरि ॥७०॥

अन्वय—भौंह उँचै, आँचरु उलटि, मौरि, मुँह मोरि, । दीठि सौं दीठि जोरि, नीठि नीठि भीतर गई ।

उँचै = ऊँचा करके । मौरि = मौलि, सिर । नीठि नीठि = जैसे-तैसे, मुश्किल से । नीठि नीठि गई = मुश्किल से धीर-धीरे गई ।

भौंह ऊँची कर, आँचल उलट, सिर झुका और मुँह मोड़कर (वह नायिका) नजर-से-नजर मिलाती हुई धीरे-धीरे (घर के) भीतर (चली गई) ।

ऐंचति-सी चितवनि चितै भई ओट अलसाइ।
फिरि उझकनि कौं मृगनयनि दृगनि लगनिया लाइ ॥७१॥

अन्वय—ऐंचति-सी चितवनि चितै अलसाइ ओट भई, मृगनयनि फिरि उझकनि को लगनिया दृगनि लाइ।

ऐंचति-सी=खींचती हुई-सी, चित्ताकर्षक, चितचोर। चितवनि = दृष्टि, नजर। चितै = देखकर। दृगनि = आँखों का। लगनिया = लगन, चाट। अलसाइ = जँभाई लेकर, उभाड़ दिखाकर अथवा मंद गति से।

(चित्त को) खींचती हुई-सी नजरों से देख वह अलसाकर (आँख से) ओट तो हो गई; किन्तु उस मृगनयनी ने (उस समय से) बार-बार उझक-उझककर देखने की लगन (मेरी) आँखों में लगा दी—तब से बार-बार मैं उझक-उझककर उसकी बाट जोह रहा हूँ।

सटपटाति-सी ससिमुखी मुख घूँघट-पटु ढाँकि।
पावक-झर-सी झमकि कै गई झरोखा झाँकि ॥७२॥

अन्वय—ससिमुखी सटपटाति-सी मुख घूँघट-पटु ढाँकि, पावक-झर-सी झमकि कै झरोखौ झाँकि गई।

पावक-झर = आग की लपट। सटपटाति-सी = डरती हुई-सी। झमकि कै = नखरे की चाल से, गहनों की झनकार करके चपलता से।

डरती हुई-सी—वह चन्द्रवदनी (अपने) मुखको घूँघट से ढक कर अग्नि की लपट सरीखी चंचलता के साथ झरोखे से झाँक गई।

नोट—भाव यह है कि अपने गुरुजनों के डर से वह मुख पर आँचल डालकर झटपट खिड़की पर आई और (नायक को) देखकर चली गई।

लागत कुटिल कटाच्छ सर क्यौं न होहिं बेहाल।
कढ़त जि हियहिं दुसाल करि तऊ रहत नटसाल ॥७३॥

अन्वय—कुटिल कटाच्छ सर लागत क्यों न बेहाल होहिं, जि हियो दुसाल करि कढ़त तऊ नटसाल रहत।

कुटिल = तिरछे, टेढ़े। कटाच्छ = तीक्ष्ण दृष्टि, बाँकी-तिरछी नजर। कढ़त = निकलना। हियो = हृदय। दुसाल = दो भाग, आरपार। तऊ = तो भी। नटसाल = काँटे का वह हिस्सा, जो काँटा निकाल लेने पर भी टूटकर अन्दर ही रह जाता है।

तिरछे कटाक्ष-रूपी (चोखे) वाण के लगने से (लोग) क्यों न व्याकुल हों? यद्यपि (वाण) हृदय को आरपार करके निकल जाता है, तथापि उसकी नुकीली गाँसी की कसक (पीड़ा) रह ही जाती है।

नैन-तुरंगम अलक-छबि-छरी लगी जिहिं आइ।
तिहि चढ़ि मन चंचल भयौ मति दीनी बिसराइ ॥७४॥

अन्वय—नैन तुरंगम, जिहिं अलक-छबि-छरी आइ लगी, तिहिं चढ़ि मन चंचल भयौ मति बिसराइ दीनि।

तुरंगम = चंचल घोड़ा। अलक = बाँकी लट। छरी = कोड़ा। बिसराय दीनी = विस्मृत कर दिया, भुला दिया।

नेत्र-रूपी घोड़े, जिन्हें लट की शोभा-रूपी छड़ी आकर लगी है—जो नायिका की लट-रूपी चाबुक खाकर उत्तेजित हुए हैं—उन (नेत्र-रूपी घोड़ों) पर चढ़कर मेरा मन चंचल हो गया है और उसने मेरी बुद्धि नष्ट कर दी है।

नीचीयै नीची निपट दीठि कुही लौं दौरि।
उठि ऊँचैं नीचै दियौ मन-कुलंग झपिझोरि ॥७५॥

अन्वय—दीठि कुही लौं निपट नीचीयै नीची दौरि, ऊँचैं उठि मन-कुलंग झपिझोरि नीचे दयौ।

निपट = एकदम। डीठि = दृष्टि, नजर। कुही = एक पक्षी, जो बाज

की जाति का होता है। लौं = समान। कुलंग = कलविंक = चटका = गौरैया, बगेरी। उठि ऊँचे = ऊपर उड़कर। नीचे दियो = मार गिराया।

(उसकी) नजर ने कुही-पक्षी के समान एकदम नीचे-ही-नीचे दौड़कर और (फिर) ऊँचे चढ़ मेरे मन-रूपी कुलंग को छोपकर और झोरकर नीचे गिरा दिया।

नोट—कुही-पक्षी शिकार को पकड़ने के लिये पहले तो नीचे-ही नीचे उड़ता है, फिर एकबारगी ऊपर उड़ शिकार पर भीषण रूप से टूट पड़ता और उसे झकझोर नीचे गिरा देता है। लज्जाशीला नायिका की उड़नबाज नजर की भी वही गति है—रसज्ञ पाठक जानते हैं।

तिय कित कमनैती पढ़ी बिनु जिहि भौंह-कमान।
चल चित-बेझैं चुकति नहिं बंक बिलोकनि बान ॥७६॥

अन्वय—तिय कित कमनैती पढ़ी, बिनु जिहि भौंह-कमान, बंक बिलोकनि बान, चल चित-बेझैं नहिं चुकति।

कित = कहाँ। कमनैती = तीर चलाने की कला, बाण-विद्या। जिहि = ज्या = डोरी, प्रत्यंचा। चल = चंचल। बेझै = निशान, लक्ष्य। बंक = टेढ़ा। बिलोकनि = चितवन, दृष्टि।

इस स्त्री ने यह बाण-विद्या कहाँ पढ़ी कि बिना डोरी के भौंह रूपी धनुष और तिरछी दृष्टि-रूपी बाण से चंचल चित्त-रूपी निशाने को बेधने से नहीं चूकती?

दूरयौ खरै समीप कौ लेत मानि मन मोदु।
होत दुहुनु के दृगनु हीं बतरसु हँसी बिनोदु ॥७७॥

अन्वय—दूर्यौ खरै समीप कौ मन-मोदु मानि लेत, दुहुनु के दृगन हीं बतरसु हँसी-बिनोदु होत।

(नायक-नायिका दोनों) दूर-दूर खड़े होने पर भी निकट

होने का आनन्द मन में मान लेते हैं—यद्यपि दोनों दूर-दूर खड़े हैं, तथापि निकट रहकर सम्भाषण करने का आनन्द अनुभव कर रहे हैं; क्योंकि दोनों की आँखों (इशारों) से ही रसीली बातचीत, दिल्लगी और चुहल हो रही है।

छुटै न लाज न लालचौ प्यौ लखि नैहर-गेह।
सटपटात लोचन खरे भरे सकोच सनेह॥७८॥

अन्वय—प्यौ नैहर गेह लखि न लाज छुटै न लालचौ; सकोच-सनेह भरे लोचन खरे सटपटात।

प्यौ = प्रियतम। खरे=अत्यन्त। नैहर = मायके, पीहर। सटपटात =विचित्र, बेचैन हो रहे हैं।

पति को अपने मायके में देखकर न तो (उन्हें भर नजर देखने के लिये) लाज छूटती है और न लालच ही छोड़ते बनता है। यों संकोच और प्रेम से परिपूर्ण उस नायिका के नेत्र अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं।

नोट—इस दोहे में स्वाभाविकता खूब है।

करे चाह-सौं चुटकि कै खरैं उड़ौहैं मैन।
लाज नवाएँ तरफरत करत खूँद-सी नैन॥७९॥

अन्वय—मैन चाह सों चुटकि कै खरैं उड़ौहैं करे, लाज नवाएँ नैन तरफरत खूँद-सी करत।

चुटकि कै = चाबुक मार कर। उड़ौहैं = उड़ाकू, उड़ान भरनेवाला। मैन = कामदेव। खूँद = जमैती, घोड़े की ठुमुक चाल।

कामदेव ने चाह का चाबुक मारकर नेत्रों को बड़ा उड़ाकू बना दिया है। किन्तु लाज (लगाम) से रोके जाने के कारण उसके नेत्र (रूपी-घोड़े) तड़फड़ाकर जमैती-सी कर रहे हैं।

नोट—जब घोड़े की जमैती सिखाई जाती है, तब एक आदमी पीछे चाबुक फटकार कर उसे उत्तेजित करता रहता है और दूसरा आदमी उसकी लगाम कसकर पकड़े रहता है। यों घोड़ा पीछे की उत्तेजना और आगे की रोक-थाम से छटपटाकर जमैती करने लगता है।

नावक-सर-से लाइ कै तिलकु तरुनि इत ताँकि।
पावक-झर-सी झमकि कै गई झरोखा झाँकि॥८०॥

अन्वय—नावक-सर-से तिलकु लाइ कै तरुनि इत ताँकि, पावक झर-सी झमकि कै झरोखा झाँकि गई।

तिलकु = टीका। तरुनि = नवयुवती। पावक-झर = आग की लपट। झरोखा=खिड़की। झमकि कै=चंचल चरणों से। नावक-सर=एक प्रकार का छोटा चुटीला तीर, जो बाँस की नली के अंदर से चलाया जाता है, ताकि सीधे जाकर गहरा घाव करे।

चुटीले तीरे के समान (ललाट पर) तिलक लगाकर उस नवयुवती ने इस ओर देखा और आग की ज्वाला-सी चंचलता के साथ खिड़की से झाँक गई।

नोट—'नावक के तीर' बिहारी के दोहों के विषय में प्रसिद्ध है—

सतसैया के दोहरे जनु नावक के तीर।
देखत में छोटे लगैं बेधैं सकल सरीर॥

अनियारे दीरघ दृगनु किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरै कछू जिहिं बस होत सुजान॥८१॥

अन्वय—किती तरुनि अनियारे दीरघ दृगनु समान न, जिहिं बस सुजान होत वह चितवन कछु औरै।

अनियारे = नुकीली। दीरघ = बड़ी। दृगनु = आँखें। जिहिं = जिसके। सुजान = रसिक।

कितनी युवतियों की नुकीली और बड़ी-बड़ी आँखें एक-सी नहीं हैं; बहुत-सी युवतियों की आखें बड़ी-बड़ी और नुकीली हैं—किन्तु रसिक-जन को वशीभूत करनेवाली वह रसीली नजर कुछ और ही होती है !

चमचमात चंचल नयन बिच घूँघट-पट झीन।
मानहु सुरसरिता-बिमल-जल उछरत जुग मीन ॥८२॥

अन्वय—झीन घूँघट पट विच चंचल नयन चमचमात, मानहु सुरसरिता बिमल जल जुग मीन उछरत।

घूँघट-पट = घूँघट का कपड़ा। झीन = बारीक, महीन। सुरसरिता = गंगा। जुग = दो। मीन = मछली। उछरत = उछलती है।

बारीक कपड़े के घूँघट की ओट से (उसकी) चंचल आँखें चमक रही हैं—झलक रही हैं, मानो गंगाजी के स्वच्छ जल में दो मछलियाँ उछल रही हैं।

फूले फदकत लै फरी पल कटाच्छ करवार।
करत बचावत बिय नयन पाइक घाइ हजार ॥८३॥

अन्वय—बिय नयन-पाइक पल-फरी कटाच्छ-करवार लै फूले फदकत हजार घाइ करत बचावत।

फूले=उमंग से भरकर। फदकत = पैंतरे बदलते हैं। फरी = ढाल। पल = पलक। करवार = करवाल = तलवार। बिय = दोनों। पाइक = पैदल सिपाही। घाय = घाव, वार।

(उसके) दोनों नेत्र-रूपी सिपाही पलक-रूपी ढाल और कटाक्ष-रूपी तलवार लेकर सानन्द पैंतरे बदलते तथा हजारों वार करते और बचाते है।

जदपि चवाइनु चीकनी चलति चहूँ दिसि सैन।
तऊ न छाड़त दुहुन के हँसी रसीले नैन ॥८४॥

अन्वय—जदपि चवाइनु चीकनी चहुँ दिसि सैन चलति, तऊ दुहुन के रसीले नैन हँसी न छाड़त।

चवाइनु चीकनी = निंदा से भरी। तऊ = तो भी। सैन = इशारे। हँसी = उमंग-भरी, छेड़छाड़।

यद्यपि उसपर चारों ओर से निंदा भरे इशारे चल रहे है—लोग इशारे कर-कर के उसकी निंदा कर रहे हैं—तो भी दोनों की रसीली आँखें हँसी (चुहलबाजी) नहीं छोड़तीं।

जटित नीलमनि जगमगति सींक सुहाई नाँक।
मनौ अली चंपक कली बसि-रसु लेतु निसाँक ॥८५॥

अन्वय—नीलमनि जटित सींक जगमगति सुहाई नाँक, मनौ अली चंपक-कली बसि निसाँक रसु लेतु।

जटित=जड़ी हुई। नीलमनि=नीलम। सींक=स्त्रियों की नाक में पहनने का एक आभूषण-विशेष, जिसे लौंग या छुच्छी भी कहते हैं। निशाँक = निःशंक, बेधड़क। रसु लेतु = आनन्द लूट रहा है, रस चूस रहा है।

नीलम से जड़ी लौंग (उसकी) सुन्दर नाक में जगमग करती है, मानों भौंरा चम्पा की कली पर निःशंक बैठकर रस पी रहा हो।

नोट—गोरी नाक चम्पा की कली है, नीलम-जड़ी लौंग भौंरा है। भौंरा चम्पा के पास नहीं जाता; पर कवि ने असम्भव को सम्भव कर दिया है।

बेधक अनियारे नयन बेधत करि न निषेधु।
बरबट बेधत मो हियौ तो नासा कौ बेधु ॥८६॥

अन्वय—बेधक अनियारे नयन बेधत निषेधु न करि, तो नासा को बेधु मो हियौ बरबट बेधत।

वेधक = वेधनेवाला । अनियारे = नुकीले । निषेध = रुकावट । वेधु = छेद, छिद्र । नासा = नाक । बरबट = अदबदाकर, जबर्दस्ती ।

चुभीली नुकीली आँखें यदि हृदय को छेदती हैं, तो छेदने दे, उन्हें मना मत कर (वे ठहरी चुभीली नुकीली, बेधना तो उनका काम ही है) ; क्योंकि तेरी नाक का वेध—लौंग पहनने की जगह का छेद—मेरे हृदय को बरबस बेध रहा है—जो स्वयं बेध है, वही बेध रहा है, तो फिर बेधक क्यों न बेधे ?

जदपि लौंग ललितौ तऊ तूँ न पहिरि इकआँक ।
सदा साँक बढ़ियै रहै रहै चढ़ी-सी नाँक ॥८७॥

अन्वय—जदपि लौंग ललितौ, तऊ तू इकआँक न पहिरि, नाँक चढ़ी-सी रहै सदा साँक बढ़ियै रहै ।

ललितौ = सुन्दर । इकआँक = निश्चय । साँक बढ़ियै रहै = डर बना रहता है । रहै चढ़ी-सी नाक = नाक चढ़ी रहना, क्रुद्ध या रुष्ट होना ।

यद्यपि लौंग (देखने में) अत्यन्त सुन्दर है, तो भी तू निश्चय उसे न पहन; (क्योंकि उसके पहनने से) तेरी नाक सदा चढ़ी-सी रहती है, जिससे मेरे मन में सदा भय की वृद्धि होती है (कि तू शायद क्रुद्ध तो नहीं है) !

बेसरि मोती दुति झलक परी ओठ पर आइ ।
चूनौ होइ न चतुर तिय क्यों पट पोंछ्यो जाइ ॥८८॥

अन्वय—बेसरि मोती दुति-झलक ओठ पर आइ परी, चतुर तिय चूनौ न होइ, पट क्यों पोछ्यो जाइ ।

पट = कपड़ा । बेसरि = नाक की झुलनी, बुलाक ।

बेसर में लगे हुए मोती की आभा की (सफेद) परिछाँहीं तुम्हारे ओठों पर आ पड़ी है । हे सुचतुरे ! वह चूना नहीं है (तुमने

डा. डिल्ली
कल्याणी देवी स्मारक
पुस्तकालय
S939

जो पान खाया है, उसका चूना होठों पर नहीं लगा है), फिर वह कपड़े से कैसे पोंछी जा सकती है ?

नोट—नायिका के लाल-लाल होठों पर नकबेसर के मोती की उजली झलक आ पड़ी है, उसे वह भ्रमवश चूने का दाग समझकर बार-बार पोंछ रही है; किन्तु वह मिटे तो कैसे ?

इहिं द्वैहीं मोती सुगथ तूँ नथ गरबि निसाँक।
जिहिं पहिरैं जग-दृग ग्रसति लसति हँसति-सी नाँक॥८९॥

अन्वय—नथ ! तूँ इहिं द्वैहीं मोती सुगथ निसाँक गरबि, जिहिं पहिरै नाँक हँसति-सी लसति, जग दृग ग्रसति।

सुगथ = सुन्दर पूँजी। गरबि = अभिमान कर ले। हँसति-सी लसति= सुघड़ जान पड़ती है। ग्रसति—फँसाती है।

अरे नथ ! तू इन दो ही मोतियों की पूँजी पर निश्शंक होकर गर्व कर ले; क्योंकि तुझे पहनकर (उस नायिका की) नाक हँसती-सी (सुन्दर शोभासम्पन्न) दीख पड़ती है और संसार की आँखों को फाँसती है।

नोट—एक उर्दू-कवि ने कहा है—'नाक में नथ वास्ते जीनत के नहीं। हुस्न को नाथ के रक्खा है कि जाये न कहीं'। जीनत=खूबसूरती। हुस्न = सौन्दर्य्य।

बेसरि-मोती धनि तुहीं को बूझै कुल जाति।
पीबौ करि तिय-ओठ को रस निधरक दिन-राति॥९०॥

अन्वय—बेसरि मोती तुहीं धनि ! कुल जाति को बूझै, तिय ओठ को रसु, निधरक दिन-राति पीबौ करि।

अरे बेसर में गुँथा हुआ मोती ! तू ही धन्य है। (भाग्यवान्

कुल और जाति कौन पूछता है ? (अलबेली) कामिनियों के (सुमिष्ट) अधरों का रस तू निर्भयता पूर्वक दिन-रात पिया कर।

नोट—'को बूझै कुल जाति' से यह मतलब है कि मोती तुच्छ सीप-कुल से पैदा हुआ है, तो भी उसे ऐसा सुन्दर सौभाग्य प्राप्त है, जिसके लिये कितने कुलीन नवयुवक तरसते रहते हैं !

बरन, बास, सुकुमारता सब बिधि रही समाइ।
पँखुरी लगी गुलाब की गात न जानी जाइ ॥९१॥

अन्वय—बरन बास सुकुमारता सब बिधि समाइ रही, गात लगी गुलाब की पँखुरी जानी न जाइ।

(नायिका) की देह पर लगी गुलाब की पँखुरी पहचानी नहीं जाती—बिलग नहीं देख पड़ती; क्योंकि उसका रंग और उसकी सुगन्ध तथा कोमलता गाल के रंग, सुगंध और कोमलता में एकदम मिल-सी गई है।

लसत सेत सारी ढप्यौ तरल तर्‌यौना कान।
पर्‌यौ मनौ सुरसरि-सलिल रवि-प्रतिबिम्बु बिहान ॥९२॥

अन्वय—सेत सारी ढप्यौ कान तरल तर्‌यौना लसत, मनौ सुरसरि-सलिल बिहान-रवि-प्रतिबिम्बु पर्‌यौ।

तरल = चंचल। बिहान = प्रातःकाल।

उजली साड़ी से ढका हुआ उसके कान का चंचल कर्णफूल ऐसा सोह रहा है, मानों गंगा के उज्जल जल में प्रातःकाल के सूर्य का (सुनहला) प्रतिबिम्ब आ पड़ा हो।

नोट—यहाँ सोने का कर्णफूल प्रातःकाल का सूर्य है, और साड़ी गंगा का स्फटिक-सा स्वच्छ जल।

सुदुति दुराई दुरति नहिं प्रगट करति रति-रूप।
छुटै पीक औरै उठी लाली ओठ अनूप ॥६३॥

अन्वय—सुदुति दुराई नहिं दुरति, रति-रूप प्रगट करति, पीक छुटै ओठ अनूप लाली औरै उठी।

सुदुति = सुद्युति = सुन्दर कान्ति। रति-रूप = रति का रूप, कामदेव की स्त्री 'रति' अत्यन्त सुन्दर कही जाती है; अतएव यहाँ 'रति-रूप' से अर्थ है सौन्दर्य का अत्यन्त आधिक्य। दुराई = छिपाये।

सुन्दर कान्ति छिपाने से नहीं छिपती, वरन् (ऐसी चेष्टा करने पर) वह और भी अपरूप सौंदर्य प्रगट करती है। पान की पीक (या लाली) छुड़ाये जाने पर ओठों की अनुपम लाली और भी बढ़ गई है।

नोट—नायिका अपने ओठ की ललाई को पान की लाली समझकर बार-बार उसे छुड़ा रही है; किन्तु ज्यों-ज्यों पान की लाली छुटती है, त्यों-त्यों उसके ओठ की स्वाभाविक लाली और भी खिलती जाती है।

कुच-गिरि चढ़ि अति थकित ह्वै चली डीठि मुँह-चाड़।
फिरि न टरी परियै रही परी चिबुक की गाड़ ॥६४॥

अन्वय—कुचगिरि चढ़ि, अति थकित ह्वै, डीठि मुँह चाड़ चली, चिबुक की गाड़ परी परियै रही, फिरि टरी न।

कुच = स्तन। डीठि = दृष्टि = नजर। चाड़ = चाह। परियै रही = पड़ी रही। चिबुक = ठुड्डी। गाड़ = गढ़।

स्तन-रूपी (ऊँचे) पर्वत पर चढ़, अत्यन्त थककर, दृष्टि—मुख (देखने) की चाह में (आगे) चली। (किन्तु रास्ते में ही) ठुड्डी के गढ़े में वह (इस प्रकार) जा गिरी कि (उसी में) पड़ी रह गई, (वहाँ से) पुनः (इधर-उधर) टली नहीं।

नोट—'चिबुक की गाड़' पर एक संस्कृत-कवि की उक्ति है कि ब्रह्मा ने सुन्दरी स्त्री को जब पहले पहल बनाया, तब उसके रूप पर आप ही इतने मुग्ध हुए कि ठुड्डी पकड़कर भर-नजर देखने लग गये। उसी समय कच्ची मूर्त्ति की ठुड्डी उनके अँगूठे से दब गई। वही गढ़ा हो गया।

ललित स्याम लीला ललन चढ़ी चिबुक छबि दून।
मधु छाक्यौ मधुकर पस्यौ मनौ गुलाब-प्रसून ॥६५॥

अन्वय—ललित स्याम-लीला, ललन, चिबुक-छबि दून चढ़ी, मनौ मधु छाक्यौ मधुकर गुलाब-प्रसून पस्यौ।

ललित = सुन्दर। स्यामलीला = गोदना की बिन्दी। दून = दूना। मधु छाक्यौ = रस पीकर तृप्त। मधुकर = भौंरा। प्रसून = फूल।

सुन्दर गोदने की (काली) बिन्दी से, हे ललन! उसकी (गुलाबी) ठुड्डी की शोभा दूनी बढ़ गई है, (जान पड़ता है) मानों मधु पीकर मस्त भौंरा गुलाब के फूल पर (बेसुध) लेटा हुआ है।

नोट—'पद्माकर' के इसी भाव के एक कवित्त का पद है—'कैधों अरविन्द में मलिन्दसुत सोयो आय, गरक गोविन्द कैधों गोरी की गुराई में।' अपने 'तिल-शतक' में मुबारक कवि तिल को यों प्रणाम करते हैं—

गोरे मुख पर तिल लसै, ताको करौं प्रणाम।
मानहु चंद बिछाय के पौढ़े सालोग्राम॥

डारे ठोढ़ी-गाड़ गहि नैन बटोही मारि।
चिलक-चौंधि मैं रूप-ठग हाँसी-फाँसी डारि ॥६६॥

अन्वय—चिलक चौंध में रूप-ठग हाँसी-फाँसी डारि, नैन-बटोही मारि ठोढी गाड़ गहि डारे।

ठोढ़ी = ठुड्डी, चिबुक। चिलक = चमक, कान्ति।

(शरीर की) कान्ति की चकाचौंध में सौन्दर्य-रूपी ठग ने

हँसी रूपी फाँसी डाल (दर्शक के) नेत्र रूपी बटोही को मारकर उसे ठुड्डी-रूपी गढ़े में डाल रक्खा है। यह स्याम-लीला (गोदना की काली बिन्दी) उसी की लाश है।

नोट—एक उर्दू कवि ने भी 'तिल' को आशिक का 'जलाभुना दिल' कहा है। क्या खूब !

तो लखि मो मन जो लही सो गति कही न जाति।
ठोढ़ी गाढ़ गड़्यौ तऊ उड़्यौ रहत दिन-राति ॥९७॥

अन्वय—तो लखि मो मन जो गति लही सो कही न जाति, ठोढ़ी गाड़ गड़्यौ तऊ दिन राति उड़्यो रहत।

मन गड़्यौ = मन बसना, मन डूबा रहना। मन उड़्यौ = मन उडना, मन उचटा रहना, कहीं मन न लगना।

तुम्हें देखकर मेरे मन ने जो चाल पकड़ी है, वह (चाल) कही नहीं जाती—अजीब चाल है। यद्यपि वह तुम्हारी ठुड्डी के गढ़े में गड़ा (धँसा) रहता—तल्लीन रहता है, तो भी दिन-रात उड़ता—उचटा ही रहता है—चंचल ही बना फिरता है !

नोट—यहाँ कवि ने 'मन का गड़ना' और 'मन का उड़ना' इन दोनों मुहाविरों का प्रयोग अच्छा भिड़ाया है।

लौंनै मुँह दीठि न लगै यौं कहि दीनौ ईठि।
दूनी ह्वै लागन लगी दियैं दिठौना दीठि ॥९८॥

अन्वय—ईठि लौंनै मुँह दीठि न लगै, यौं कहि दिठौना दीनौ दिये दीठि दूनी ह्वै लगन लगी।

लौनै = लावण्यमय। ईठि=हितैषिणी। दिठौनी=काजल की बिन्दी; नजर लग जाने के डर से स्त्रियाँ काजर की बिन्दी लगाती हैं।

हितैषिणी सखी ने—'इस लावण्ययुक्त मुखड़े पर कहीं किसी

की नजर न लग जाय' (ऐसा) कहकर डिठौना लगा दिया। किन्तु उस गोरे मुखड़े पर काजल का काला डिठौना देने से लोगों की नजर दुगुनी होकर लगने लगी—लोग और भी चाव से घूरने लगे।

पिय तिय सों हँसि कै कह्यौ लखै दिठौना दीन।
चन्दमुखी मुख चन्दु तैं भलौ चन्द सम कीन ॥९९॥

अन्वय—दिठौना दीन लखैं, पिय तिय से सों हँसि कै कह्यौ, चंदमुखी चंद सम कीन, मुख चंदु तैं भलौ।

सों=से। दिठौना दीन=दिठौना लगाये हुये। तैं=से।

डिठौना लगाये हुए देखकर प्रीतम ने अपनी प्रियतमा से हँसकर कहा—हे चन्द्रमुखी! (काला डिठौना लगाकर) चन्द्रमा के समान (धब्बेदार) कलंकित बना लेने पर भी, (तुम्हारा) मुख, चन्द्रमा से अच्छा ही है।

गड़े बड़े छबि-छाकु छकि छिगुनी छोर छुटैं न।
रहे सुरँग रँग रँगि वही नह दी-महँदी नैन ॥१००॥

अन्वय—छबि छाकु छकि बड़े छिगुनी छोर छुटैं न; वही नह दी मँहदी सुरँग रँग नैन रँगि रहे।

छबि=शोभा। छाकु=नशा। छकि=भर-पेट पीकर। छिगुनी=कनिष्ठा अँगुली, कनगुरिया। सुरँग=लाल। नह दी=नँह में दी गई, नख में लगाई गई। मँहदी=मेंहदी।

सौंदर्य की मदिरा पीकर खूब ही गड़ रहे हैं, छिगुनी की छोर छोड़ते ही नहीं। यहाँ तक कि उसी (छिगुनी के) नहँ में लगी मेंहदी के लाल रँग में ये नेत्र रँग भी गये हैं—उसके ध्यान में लाल भी हो गये हैं।

———

द्वितीय शतक

सूर उदित हूँ मुदित मन मुखु सुखमा की ओर।
चितै रहत चहुँ ओर तें निहचल चखनु चकोर ॥१०१॥

अन्वय—सूर उदितहूँ, मुदित मन, मुखु सुखमा की ओर, चकोर निहचल चखनु चहुँ ओर तें चितै रहत।

सूर=सूर्य। सुखमा=सौंदर्य, शोभा। निहचल चखनु=अटल दृष्टि से, टकटकी लगाकर।

सूर्य के उदय हो जाने पर भी आनन्दित मन से उसके मुख के सौंदर्य की ओर (उसे चन्द्र-मंडल समझकर) चकोर टकटकी लगाये चारों ओर से देखता रहता है।

पत्राहीं तिथि पाइयै वा घर कैं चहुँ पास।
नित प्रति पून्यौईं रहत आनन-ओप उजास ॥१०२॥

अन्वय—वा घर कैं चहुँ पास पत्रा हीं तिथि पाइयै, आनन ओप-उजास नित प्रति पून्यौईं रहत।

पत्रा=तिथिपत्र। नित प्रति=हर रोज। पून्यौईं=पूर्णिमासी ही। आनन=मुख। ओप=चमक। उजास=प्रकाश।

उस नायिका के घर के चारों ओर पत्रा (पंचांग) ही में तिथि पाई जाती है—तिथि निश्चय करने के लिये पत्रा ही की शरण लेनी पड़ती है; क्योंकि (उसके) मुख की चमक और प्रकाश से वहाँ सदा पूर्णिमा ही बनी रहती है—उसके मुख की चमक और प्रकाश देखकर लोग भ्रम में पड़ जाते हैं कि पूर्ण चन्द्र की चाँदनी छिटक रही है।

नैकु हँसौंही बानी तजि लख्यौ परतु मुँहु नीठि।
चौका चमकनि चौंध मैं परति चौंधि-सी डीठि ॥१०३॥

अन्वय—नैकु हँसौंही बानि तजि, मुँह नीठि लख्यौ परतु; चौका-चमकनि-चौंध में डीठि चौंधि-सी परति।

नैकु = जरा, तनिक। बानि = आदत। नीठि = मुश्किल से। चौका = अगले चार दाँतों का समूह। चौंध = चकाचौंध। डीठि = दृष्टि।

जरा इस हँसोड़ आदत को छोड़ो। (तुम्हारा) मुख भी मुश्किल से देख पड़ता है; क्योंकि दाँतों की चमक की चकाचौंध में नजर चौंधिया-सी जाती है।

चलन न पावतु निगम-मगु जगु उपज्यौ अति त्रास।
कुच-उतंग-गिरिधर गह्यौ मैना-मैनु मवास ॥१०४॥

अन्वय—निगम मगु न चलन पावतु, जगु अति त्रास उपज्यौ कुच-उतंग-गिरिवर मैना-मैनु मवास गह्यौ।

निगम-मगु = वेद का पथ। उतंग—ऊँचे। मैना = राजपुताने की एक लुटेरी जाति। मैनु = कामदेव। मवास = अड्डा।

(कोई) वेद के रास्ते पर नहीं चलने पाता—'परदारेषु मातृवत्' आदि नियमों का पालन नहीं कर पाता। संसार में अत्यन्त भय उत्पन्न हो गया है; (क्योंकि, तुम्हारे) कुच-रूपी ऊँचे पहाड़ पर कामदेव-रूपी मीना ने अपना अड्डा बना रक्खा है—जहाँ कोई पथिक इस पहाड़ की ओर आया कि लुटा!

ज्यौं ज्यौं जौवन जेठ दिन कुच मिति अति अधिकाति।
त्यौं त्यौं छिन छिन कटि छपा छीन परति नित जाति ॥१०५॥

अन्वय—ज्यौं ज्यौं जौबन-जेठ, कुच-दिनमिति अति अधिकाति; त्यौं त्यौं छिन छिन, कटि-छपा नित छीन परति जाति।

मिति = दिन का मान। कटि = कमर। छपा = रात्रि। छीन = क्षीण = पतली।

जैसे-जैसे जवानी-रूपी जेठ मास में कुच-रूपी दिन का मान अत्यन्त बढ़ता जाता है, वैसे-ही-वैसे क्षण-क्षण में (नायिका की) कटि-रूपी रात नित्य क्षीण पड़ती जाती है—थोड़ी-थोड़ी घटती जाती है।

लगी अनलगी सी जु बिधि करी खरी कटि खीन।
किए मनौ वैहीं कसरु कुच नितम्ब अति पीन ॥१०६॥

अन्वय—बिधि जु कटि खरी खीन लगी अनलगी सी करी, मनौ वैहीं कसर कुच नितंब अति पीन किए।

लगी = शरीर के मध्य भाग में जड़ी हुई, प्रत्यक्ष। अनलगी = शरीर के जोड़ में न लगी हुई, अदृश्य। खरी = अत्यन्त। कुच = स्तन। पीन = पुष्ट।

ब्रह्मा ने उस (नायिका) की कमर इतनी पतली बना दी कि (अत्यन्त बारीकी के कारण) लगी हुई होने पर भी न लगी हुई-सी (जान पड़ती है); मानों इसी कसर (को पूरा करने) के लिये (उन्होंने) उसके कुच और नितम्ब बहुत पुष्ट कर दिये।

नोट—जवानी में स्त्रियों की कमर पतली और कुच तथा नितम्ब बड़े-बड़े हो जाते हैं। 'आलम शेख' की एक संयुक्त रचना इसी भाव की है—

कनक-छरी सी कामिनी, काहे को कटि खीन।
कटि कै कंचन काटि बिधि, कुचन मध्य धरि दीन ॥

जंघ जुगल लोइन निरे करे मनौ बिधि-मैन।
केलि-तरुनु दुखदैन ए केलि तरुन सुखदैन ॥१०७॥

अन्वय—मनौ निधि-मैन जंघ जुगल निरे लोइन करे, ए केलि-तरुनु दुख दैन, केलि तरुन सुख दैन।

जुगल = दोनों। लोइन = लावण्य, सुन्दरता। निरे = खालिस, बिलकुल। केलि-तरुनु = कदली के पेड़ों को। दैन=देनेवाला। केलि = रति-क्रीड़ा। तरुन = युवक।

मानों काम-रूपी ब्रह्मा ने उसकी दोनों जाँघों को खालिस लावण्य ही का बनाया है—उसमें हाड़-मांस नहीं है, केवल लावण्य-ही-लावण्य कूट-कूटकर भरा है। ये (जाँघें) केले के वृक्षों को दुःख देनेवाली हैं—इनकी सुघराई देखकर केले के खम्भ को अपनी सौन्दर्यहीनता पर दुःख होता है—किन्तु रति के समय में युवकों को सुख देनेवाली हैं।

रह्यौ ढीठु ढाढ़स गहैं ससहरि गयौ न सूरु।
मुर्‌यौ न मनु मुरवानु चुभि भौ चूरनु चपि चूरु ॥१०८॥

अन्वय—ढीठु ढाढ़स गहैं रह्यौ, ससहरि न गयौ सूरु न, मुर्‌यौ न मनु मुरवानु चुभि, चूरन चपि चूरु भौ।

ससहरि गयौ = सिहर जाना, डर गया। सूरु = शूर, वीर। मुरवा= पाँव का वह भाग जहाँ पर कड़े, छड़े, पाजेब आदि गहने पहने जाते हैं, सुपवा। चूरन = चूरा का बहुवचन, कड़े। चँपि = दबकर।

ढिठाई से साहस किये रहा। डरा नहीं, मुड़ा भी नहीं। वीर के समान डटा रहा। भले ही मेरा वह मन मुरवों में चिपक, कड़ों से चँपकर, चूर हो गया।

पाइ महावरु दैन कौं नाइनि बैठी आइ।
फिरि फिरि जानि महावरी एड़ी मीड़ति जाइ ॥१०९॥

अन्वय—पाइ महावरु दैन को नाइनि आइ बैठी, फिरि फिरि एड़ी महावरी जानि मीड़ति जाइ।

महावरी = महावर लगी हुई। फिरि फिरि = बार-बार।

(उस नायिका के) पाँव में महावर लगाने के लिये नाइन आ बैठी। किन्तु (उसकी एँड़ी स्वाभाविक रूप से इतनी लाल थी कि) वह बारबार उसे महावर लगी हुई जानकर माँज-माँज कर धोने लगी।

नोट—पैरों में महावर लगाने के पहले, पहले की लगी हुई महावर धो दी जाती है।

कौहर-सी एड़ीनु की लाली देखि सुभाइ।
पाइ महावरु देइ को आपु भई बे-पाइ॥११०॥

अन्वय—कौहर-सी एड़ीन की सुभाइ लाली देखि पाइ महावरु को देइ, आप बे-पाइ भई।

कौहर = एक जंगली लाल फल। सुभाय = स्वाभाविक। देइ को = कौन दे, कौन लगावे। बे-पाय = हक्का-बक्का, विस्मय-विमुग्ध।

लाल कौहर फल के समान उसकी एँड़ियों की स्वाभाविक लाली देखकर, पैर में महावर कौन लगावे? नाइन स्वयं हक्का-बक्का (किंकर्त्तव्यविमूढ़) हो गई!

किय हाइलु चित चाइ लगी बजि पाइल तुव पाइ।
पुनि सुनि सुनि मुँह-मधुर-धुनि क्यों न लालु ललचाइ॥१११॥

अन्वय—तुव पाइ पाइल बाजि चित चाइ लगि हाइलु, किय, पुनि, मुँह मधुर-धुनि सुनि सुनि लालु क्यों न ललचाइ।

हाइलु = घायल। चाय = चाह, चाट। पायल = पाजेब।

तेरे पैरों की पाजेब बजकर चित्त में चाह उत्पन्न करती और

घायल बनाती है। फिर मुख की मीठी बोली सुन-सुनकर लाल (नायक) क्यों न लालच में पड़ जाय ?

सोहत अँगुठा पाइ कै अनवटु जस्यौ जराइ।
जीत्यौ तरिवन-दुति सुढरि पस्यौ तरनि मन पाइ ॥११२॥

अन्वय—जराइ जस्यौ पाइ कै अँगूठा अनवटु सोहत, मनु तरिवन-दुति जीत्यौ तरनि सुढरि पाइ पस्यौ।

पाइ के = पैर के। अनवटु = पैर के अंगूठे में पहनने का आभूषण-विशेष। जराइ = जड़ाव, नगीना। तरिवन = कर्णफूल। तरनि = सूर्य।

नगीने जड़ा हुआ पैर के अंगूठे का अनवट शोभ रहा है। (वह ऐसा लगता है) मानो कर्णफूलों की प्रभा से पराजित हो सूर्य उस (नायिका) के पावों पर लुढ़क पड़ा हो।

पग पग मग अगमन परत चरन-अरुन-दुति झूलि।
ठौर ठौर लखियत उठे दुपहरिया-से-फूलि ॥११३॥

अन्वय—मग पग पग अगमन चरन अरुन दुति झूलि परत, लखियत ठौर ठौर दुपहरिया-से फूलि उठे।

अगमन = आगे की ओर। अरुन = लाल। दुति = चमक। दुपहरिया = एक प्रकार का लाल फूल।

पथ में पग-पग पर आगे की ओर (जहाँ पैर पड़ने को हैं) पैर की लाल प्रभा झड़-सी पड़ती है—जहाँ वह अपना पैर उठाकर रखना चाहती है, वहीं उसके तलवे की लाली पृथ्वी में प्रतिबिम्बित होने लगती है—(वह ऐसी) देख पड़ती है, मानों जगह-जगह दुपहरिया के (लाल-लाल) फूल फूल उठे हों।

दुरत न कुच बिच कंचुकी चुपरी सारी सेत।
कवि-आँकनु के अरथ लौं प्रगटि दिखाई देत ॥११४॥

अन्वय—चुपरी सेत सारी कंचुकी बिच कुच न दुरत, कवि आँकनु के अरथ लौं प्रगटि दिखाई देत।

कंचुकी = स्तनों के कसने की चोली। चुपरी = चिपटी हुई, सुगंधित सटी या कसी हुई। सेत = सफेद। आँकनु = अक्षरों, शब्दों।

सटी हुई उजली सारी और कंचुकी के भीतर स्तन नहीं छिपते। कवि के शब्दों के अर्थ के समान वे साफ देख पड़ते हैं।

नोट—यों ही एक कवि ने स्त्री के कंचुकी-मण्डित कुच और कवि के गूढ़ार्थ-भाव-सम्मिलित शब्दों की तुलना करते हुए कहा है—

कवि-आखर अरु तिय-सुकुच अध उघरे सुख देत।
अधिक ढके हू सुखद नहिं उघरे महा अहेत॥

भई जु छबि तन बसन मिलि बरनि सकैं सुन बैन।
आँग-ओप आँगी दुरी आँगी आँग दुरै न॥११५॥

अन्वय—बसन मिलि जु तन छबि भई सु बैन न बरनि सकैं आँग ओप आँगी दुरी, आँगी आँग न दुरै।

सु = सो, वह। ओप = कान्ति, प्रभा। आँगी = अँगिया, चोली। दुरी = छिप गई।

वस्त्र से मिलकर उसके शरीर की जो छबि हुई, वह वचन द्वारा नहीं वर्णन की जा सकती—उसके वर्णन में वाणी (मुग्धता या असमर्थता के कारण) मूक हो जाती है। (उसके) अंग की कान्ति से (उसकी) चोली ही छिप गई, चोली से अंग (स्तन) न छिप सके!

नोट—पीताम्बर की चोली अङ्ग की चम्पक-कान्ति में छिप गई।

भूषन पहिरि न कनक कै कहि आवत इहि हेत।
दरपन कै-से मोरचे देह दिखाई देत॥११६॥

अन्वय—कनक कै भूषन न पहिरि, इहिं हेत कहि आवत, दरपन कै मोरचे-से देह दिखाई देत।

कनक = सोना। कहि आवत इहि हेत = इसलिये कहा जाता है। मोरचे = धब्बे।

सोने के गहने तू न पहन, यह इसलिये कहा जाता है कि (वे गहने) दर्पण में लगे धब्बे के समान (तेरी) देह में (भद्दे) देख पड़ते हैं।

मानहु बिधि तन-अच्छ-छबि स्वच्छ राखिबैं काज।
दृग-पग पोंछन को करे भूषण पायन्दाज ॥११७॥

अन्वय—मानहु बिधि तन-अच्छ-छबि स्वच्छ राखिबैं काज-दृग-पग पोंछन को भूषण पायन्दाज करे।

अच्छ = अच्छी। दृग-पग = नजर के पैर। पायन्दाज = बँगले के दरवाजे पर रक्खा हुआ पैर पोछने का टाट, पायपोश।

मानों ब्रह्मा ने (नायिका के) शरीर की सुन्दर कान्ति को स्वच्छ रखने के निमित्त दृष्टि के पैर पोंछने के लिये भूषण-रूपी पायन्दाज बनाये हैं—(ताकि देखनेवालों की नजर के पैरों की धूल से कहीं अंग की कान्ति न मलिन हो जाय। इसलिये भूषण-रूपी पायन्दाज बनाया कि अंग पर पड़ने से पहले नजरें अपने पैरों की धूल साफ कर लें!)

नोट—एक सुरसिक ने इसका उर्दू-अनुवाद यों किया है—

निगाहों के कदम मैली न कर दें चाँदनी तन की।
ये जेवर तूने पहने हैंगे पायन्दाज की सूरत॥

सोनजुही-सी जगमगति अँग-अँग जोबन-जोति।
सुरँग कसूंभी चूनरी दुरँग देह-दुति होति ॥११८॥

अन्वय—सोनजुही-सी अँग अँग जोबन जोति जगमगाति कसूँभी सुरँग चूनरी देह-दुति दुरँग होति।

सोनजुही = पीली चमेली। जोबन = जवानी। सुरँग = लाल। कसूँभी=कुसुम के रंग की, लाल। देह-दुति = शरीर की कान्ति।

सोनजुही के समान उसके अंग-अंग में जवानी की ज्योति जगमगा रही है। (उसपर) कुसुम में रँगी हुई लाल साड़ी (पहनने पर) शरीर की कान्ति दुरंगी हो जाती है—लाल और पीले के संयोग से अजीब दुरंगी (नारंजी) रंग उत्पन्न होता है।

छिप्यो छबीलौ मुँह लसै नीलैं अंचर-चीर।
मनौ कलानिधि झलमलै कालिन्दी कैं तीर ॥११९॥

अन्वय—नीलै अंचर-चीर छिप्यो छबीलौ मुँह लसै, मनौं कलानिधि कालिन्दी कैं तीर झलमलै।

छिप्यो=ढका हुआ। छबीलौ=सुन्दर। नीलैं अंचर चीर = नीली साड़ी का अँचरा। कलानिधि = चन्द्रमा। कालिन्दी = यमुना।

नीले अंचल में ढका हुआ सुन्दर मुखड़ा (ऐसा) शोभ रहा है, मानों चन्द्रमा (नीले जल वाली) यमुना के तीर पर झलक रहा हो—अपनी प्रभा बखेर रहा हो।

लसै मुरासा तिय स्रवन यौं मुकुतन दुति पाइ।
मानहु परस कपोल कैं रहे स्वेद कन छाइ ॥१२१

अन्वय—मुकतन दुति पाइ मुरासा तिय-स्रवन यों लसै मानौ कपोल कैं परस स्वेद-कन छाइ रहे।

मुरासा = कर्णफूल। मुकुतन = मुक्ताओं, मोतियों। परसे = स्पर्श। कपोल = गाल। सेद = स्वेद, पसीना। कन = कण, बिन्दु।

मोतियों की कान्ति पाकर (मुक्ता-जटित) कर्णफूल, नायिका के

कानों में यों शोभते हैं, मानों (उसके) गालों के स्पर्श से (उन कर्णफूलों पर) पसीने के कण छा रहे हों।

नोट—धन्य बिहारी ! तुमने प्राणहीन कर्णफूलों पर भी स्त्री के गालों के सौंदर्य का जादू डाल ही दिया ! कोमल कपोलों के स्पर्श से कर्णफूलों के भी पसीने निकल आये !

सहज सेत पँचतोरिया पहिरत अति छबि होति।
जल-चादर के दीप लौं जगमगाति तनि जोति ॥१२१॥

अन्वय—सहज सेत पँचतोरिया पहिरत छबि अति होति, जल-चादर के दीप-लौं तन-जोति जगमगाति।

सहज = स्वाभाविक। सेत = श्वेत, सफेद। पँचतोरिया = एक प्रकार का झूना सफेद रेशमी कपड़ा। लौं = समान।

स्वाभाविक रूप से सफेद पचतोरिया पहनने पर उसकी शोभा बढ़ जाती है। जल-चादर के अन्दर रक्खे हुए दीपक के समान (उस पचतोरिया के भीतर से उसके) शरीर की कान्ति जगमगाने लगती है।

नोट—जल-चादर = राजाओं के बाग में पहले ऐसी सजावट होती थी कि फव्वारे से होकर चादर की तरह पानी गिरता था, और उसके बीच में दीपक रक्खे जाते थे, जो अलग से झलमलाते-से देख पड़ते थे।

सालति है नटसाल-सी क्यौंहूँ निकसत नाँहि।
मनमथ-नेजा-नोक-सी खुभी खुभी जिय माँहि ॥१२२॥

अन्वय—मनमथ-नेजा-नोक-सी खुभी जिय माँहि खुभी नट-साल-सी सालति है, क्यौंहूँ नाँहि निकसति।

सालति = चुभती है, पीड़ा पहुँचा रही है। नटसाल = बाण की नोक का वह तिरछा भाग, जो टूटकर शरीर के भीतर ही रह जाता है। मनमथ

=कामदेव। नेजा=कटार। खुभी=लौंग के आकार का एक प्रकार का कान का गहना। खुभी=गड़ी।

कामदेव के कटार की नोक के समान (नायिका के कानों की) खुभी (मेरे) मन में गड़ गई है। बाण की टूटी हुई गाँसी की तरह पीड़ा पहुँचा रही है। किसी प्रकार नहीं निकलती।

अजौं तर्‌यौना हीं रह्यौ स्रुति सेवत इकरंग।
नाक-बास बेसरि लह्यौ बसि मुकुतन कैं सग ॥२१२३॥

अन्वय—इकरंग स्रुति सेवत अजौं तर्‌यौना ही रह्यौ, मुकुतनु कैं संग बसि बेसरि नाक-वार लह्यौ।

अजौं=आज भी। तर्‌यौना=(१) कर्णफूल (२) तर्‌यौ+ना=नहीं तरा। स्रुति=(१) श्रुति, वेद (२) कान। इकरंग=एक मात्र, एक ढंग से। नाक=(१) नासिका (२) स्वर्ग। बेसरि=(१) नाक का भूषण, झुलनी (२) बे+सरि=जिसकी समानता न हो, अनुपम। मुकुतनु=(१) मुक्ता (२) मुक्त लोग, महात्मा।

श्लेषार्थ—एकमात्र वेद ही की सेवा करने से—सत्संग न कर केवल वेद ही पढ़ते रहने से—कोई अभी तक नहीं तरा। (किन्तु) मुक्तात्माओं—जीवन-मुक्त महात्माओं—की सत्संगति से अनुपम स्वर्ग का वास (बहुतों ने) पाया।

एकमात्र (एक ढंग से) कानों को सेते रहने से आज भी यह 'कर्णफूल' कर्णफूल ही रह गया। (किन्तु) मुक्ताओं की संगति करके बेसर ने नाक का सहवास पा लिया।

नोट—इस दोहे में भी बिहारी ने श्लेष का अपूर्व चमत्कार दिखलाया है। कविवर रसलीन ने भी एक ऐसा ही दोहा कहा है—

ठग तस्कर स्रुति सेइ के लहत साधु परमान।
ये खुटिला स्रुति सेइ के खुटिलै रही निदान॥

(सो०) मंगल बिन्दु सुरंगु, मुख ससि केसरि आड़ गुरु।
इक नारी लहि संगु, रसमय किय लोचन जगत ॥१२४॥

अन्वय—सुरंगु-बिन्दु मंगल, मुख ससि, केसरि आड़ गुरु, इक नारी संगु लहि जगत-लोचन रसमय किय।

सुरंगु = लाल। आड़ = टीका। गुरु = बृहस्पति। रसमय = तृप्तिमय, रसयुक्त, जलमय।

(ललाट में लगी) लाल बेंदी 'मंगल' है। मुख 'चन्द्रमा' है। केसर का (पीला) टीका 'बृहस्पति' है। (यों मंगल, चन्द्रमा और बृहस्पति—तीनों ने) एक स्त्री का संग पाकर—स्त्री-योग में पड़कर—संसार के लोचनों को सरस (शीतल) कर दिया है।

नोट—ज्योतिष के अनुसार मङ्गल, चन्द्रमा और बृहस्पति के एक नाड़ी में आ जाने से खूब वर्षा होती है। मङ्गल का रंग लाल, चन्द्रमा का श्वेत और बृहस्पति का पीला कहा गया है।

गोरी छिगुनी नखु अरुनु छला स्यामु छबि देइ।
लहत मुकुति-रति पलकु यह नैन त्रिबेनी सेइ ॥१२५॥

अन्वय—गोरी छिगुनी, अरुनु नखु, स्यामु छला छबि देइ, नैन यह त्रिबेनी सेइ पलकु मुकुति रति लहत।

छिगुनी = कनिष्ठा अँगुली। छला = छल्ला, अँगूठी। मुकुति = मुक्ति, मोक्ष। रति = प्रीति। पलकु = एक क्षण।

गोरी कनिष्ठा अँगुली, (उसका) लाल नख, और (उसमें पहनी गई नीलम-जड़ी) साँवली अँगूठी—ये तीनों शोभा दे रहे हैं। नेत्र, इस त्रिवेणी (गोरी गंगा, लाल सरस्वती और श्यामला यमुना के संगम)—का सेवन करके, एक क्षण में ही, प्रीति-रूपी मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

तरिवन कनकु कपोल दुति बिच-बीच ही बिकान।
लाल-लाल चमकति चुनी चौका चीन्ह समान ॥१२६॥

अन्वय—कनकु तरिवन कपोल-दुति बिच-बीच ही बिकान, लाल-लाल चुनी चौका चीन्ह-समान चमकति।

तरिवन = तरौना, तरकी, कर्णभूषण-विशेष। कपोल = गाल। चुनी = चुन्नी, मणि के टुकड़े। चौका = अगले चारो दाँत। चौंध = चमक।

सोने की तरकी गालों की कान्ति के बीच ही में बिक गई—लीन हो गई, देख नहीं पड़ती (हाँ उस तरकी में जड़ी हुई) लाल-लाल चुन्नियाँ अगले चारों दाँतों के चिह्न के (साथ-साथ) समान भाव से चमक रही हैं।

सारी डारी नील की ओट अचूक चुकै न।
मो मन-मृग करबर गहै अहे अहेरी नैन ॥१२७॥

अन्वय—नील की सारी डारी ओट अचूक न चुकै, अहे नैन-अहेरी मो मन-मृग करवर गहै।

डारी = (डाली) डाल आदि की बनी हुई हरी टट्टी, जिसकी ओट से शिकारी शिकार करते हैं। कर-वर = (कर-बल) हाथ से ही। अहे = अरी। अहेरी = शिकारी।

नीली साड़ी की टट्टी की ओट से अचूक निशान चलाते हैं, कभी चूकते नहीं। अरी! (तुम्हारे) नेत्र-रूपी शिकारी ने मेरे मन रूपी मृग को हाथ ही से पकड़ लिया।

तन भूषन अंजन दृगनु पगनु महावर रंग।
नहिं सोभा कौं साजियतु कहिबैं ही कौं अंग ॥१२८॥

अन्वय—तन भूषन, दृगनु अंजन, पगनु महावर-रंग, कहिबैं ही कौं, अंग-सोभा कौं साजियतु नहिं।

पगन = पाँवों में। साजयितु = सजता है, बढ़ाता है।

शरीर में गहने, आँखों में काजल, पाँवों में महावर का रंग—ये सब केवल कहने-भर के ही (शृंगार के) अंग हैं, ये शोभा की सामग्री नहीं हैं—इनसे शोभा की वृद्धि नहीं होती।

नोट—एक उर्दू-कवि ने कहा है—

नहीं मुहताज जेवर का जिसे खूबी खुदा ने दी।
कि देखो खुशनुमा लगता है जैसे चाँद बिन गहना॥

पाइ तरुनि-कुच-उच्च पदु चिरम ठग्यौ सब गाँउ।
छुटैं ठौरु रहिहै वहै जु हो मोल छबि नाँउ॥१२९॥

अन्वय—तरुनि कुच उच्च पद पाइ चिरम सब गाँउ ठग्यौ, ठौर छुटैं वहै मोल, छबि, नाँउ रहिहै जु हो।

चिरम = गुंजा, करजनी। ठौर = स्थान। वहैं = वही। जु हो = जो वास्तव में है। मोल = दाम। नाँउ = नाम।

नवयुवती के स्तनों पर ऊँचा स्थान पाकर गुंजे ने समूचे गाँव को ठग लिया—सभी को भ्रम हो गया कि हो न हो यह मूँगा है। किन्तु (वह) स्थान छूटने पर नवयुवती के गले से उतर जाने पर—वही (स्वल्प) मूल्य, वही (भद्दी) शोभा और वही (गुंजा) नाम रह जायगा, जो (वास्तव में) है।

उर मानिक की उरबसी डटत घटतु दृग-दागु।
छलकतु बाहिर भरि मनौ तिय हिय कौ अनुरागु॥१३०॥

अन्वय—उर मानिक की उरबसी डटत दृग-दागु घटतु मनौ तिय हिय कौ अनुरागु बाहिर भरि छलकतु।

उरबसी = गले में पहनने का एक आभूषण, मणिमाला, हैकल, चौका। डटत = देखते। दृग-दागु = आँखों की जलन। अनुरागु = प्रेम (अनुराग "प्रेम" का रंग भी माणिक्य की तरह लाल माना गया है)

हृदय पर मणिमाला देखते ही आँखों की जलन घट जाती है। (वह ऐसी देख पड़ती है) मानों (उस) नायिका के हृदय का प्रेम बाहर होकर झलक रहा है।

जरी-कोर गोरै बदन बढ़ी खरी छबि देखु।
लसति मनौ बिजुरी किए सारद-ससि परिबेखु ॥१३१॥

अन्वय—गोरैं बदन जरी कोर—खरी बढ़ी छबि देखु, मानो सारद-ससि परिबेखु किए बिजुरी लसति।

जरी-कोर = जरी की किनारी। बरी = प्रज्वलित होती। खरी = अधिक। बिजुरी = बिजुली। सारद = शरदऋतु के। परिबेखु = मण्डल, घेरा।

गोरे मुखड़े पर (साड़ी में टँकी हुई) जरी किनारी इस अत्यंत बढ़ी हुई शोभा को तो देखो। (मालूम पड़ता है) मानों शरद ऋतु के चन्द्रमा को चारों ओर से घेरे हुए बिजली सोह रही हो।

नोट—यहाँ जरी की किनारी बिजली, मुखमंडल शरद ऋतु का चन्द्र-मंडल है। विद्युन्मण्डल से घिरा हुआ चन्द्रमण्डल! अद्भुत कवि-कल्पना है।

देखो सो न जुही फिरति सोनजुही-से अंग।
दुति लपटनु पट सेत हूँ करति बनौटी-रंग ॥१३२॥

अन्वय—सोनजुही-से अंग सो न जुही देखी। दुति-लपटन सेत पट हू बनौटी रंग करत फिरति।

सोनजुही = पीली चमेली। लपटन = लपटों, लौं, दमक। सेत = श्वेत, सफेद। बनौटी = कपासी।

सोनजुही की-सी देह वाली उस (नायिका) को तो तुमने

देख न ली (अर्थात् तुमने भी देखी) जो (अपने सुनहले शरीर की) आभा की लपटों से उजले वस्त्र को भी (पीले) कपासी रंग का बनाती हुई (वाटिका में) घूमती है।

नोट—झीन वसन महँ झलकइ काया।
जस दरपन महँ दीपक छाया॥

तीज-परब सौतिनु सजे, भूषन बसन सरीर।
सबै मरगजे—मुँह करी इहीं मरगजैं चीर ॥१३३॥

अन्वय—तीज-परब सौतिनु भूषन-बसन सरीर सजे। इहीं मरगजैं चीर सबैं मुँह मरगजे करी।

तीज-परब = भादो बदी ३ का त्योहार। मरगजैं = मलिन, रौंदी हुई। चीर = साड़ी।

तीज के व्रत के दिन सौतिनों ने गहनों और कपड़ों से अपने शरीर को सिंगारा; किन्तु उसने अपनी (उस रति-मर्दित) मलिन साड़ी से ही सब का मुँह मलिन कर दिया।

नोट—पति-सहवास में रौंदी हुई उसकी मलिन साड़ी देखकर सौतों ने यह जाना कि रात में इसने प्यारे के साथ केलि-रंग किया है।

पचरँग रँग बेंदी खरी उठी जागि मुख जोति।
पहिरैं चीर चिनौटिया चटक चौगुनी होति ॥१३४॥

अन्वय—पचरँग-रँग बेंदी खरी, मुखजोति जागि उठी। चिनौटिया चीर पहिरैं चटक चौगुनी होति।

चिनौटिया चीर = कई रंगों से रँगी लहरदार चुनरी। चटक = चमक।

पचरँगे रँग की बेंदी बनी है। (उसे लगाते ही) आबदार मुख की ज्योति (और) जगमगा उठी। (उसपर) रंग-बिरंगी चुनरी पहनने से चमक (और भी) चौगुनी हो जाती है।

बेंदी भाल तँबोल मुँह सीस सिलसिले बार।
दृग आँजे राजै खरी एई सहज सिंगार ॥१३५॥

अन्वय—भाल बेंदी, मुँह तँबोल, सीस सिलसिले बार, दृग आँजे, एई सहज सिंगार खरी राजै।

भाल = ललाट। तँबोल = पान। सिलसिले = सजाये हुए, चिकनाये हुए। बार = केस। आँजे = काजल लगाये। खरी = अत्यन्त। एई = इसी। सहज = स्वाभाविक।

ललाट में बेंदी, मुख में पान, सिर पर सजाये हुए बाल और आँखों में काजल लगाये—इसी स्वाभाविक शृंगार से (नायिका) अत्यन्त शोभ रही है।

नोट—आस्यं सहास्यं नयनं सलास्यं सिन्दूरबिन्दूदयशोभि भालम्।
नवा च वेणी एणीदृशश्चेदन्यैरगण्यैरपि भूषणैःकिम्॥

हौं रीझी लखि रीझिहौ छबिहिं छबीले लाल।
सोनजुही-सी होति दुति मिलत मालती माल ॥१३६॥

अन्वय—छबीले लाल, हौं रीझी, छबिहि लखि रीझिहौ। मालती-माल मिलत सोनजुही-सी दुति होति।

रीझिहौ = मोहित (मुग्ध) हो जाओगे। सोनजुही = पीली चमेली।

हे छबीले लाल—रसिया श्रीकृष्ण! मैं देखकर मोह गई हूँ, तुम भी (उसकी) शोभा देख मोह जाओगे। (कैसी स्वाभाविक कान्ति है!) मालती की (उजली) माला (उसके गोरे शरीर से) मिलकर सोनजुही के समान (पीली) द्युति की हो जाती है।

नोट—तुलसीदास का एक बरवै भी कुछ इसी तरह का है—

सिय तुव अंग रंग मिलि अधिक उदोत।
हार बेलि पहिरावौं चंपक दोत॥

झीनैं पट मैं झुलमुली झलकति ओप अपार।
सुरतरु की मनु सिंधु मैं लसति सपल्लव डार ॥१३७॥

अन्वय—झीने पट में झुलमुली अपार ओप झलकति। मनु सिन्धु मैं सुरतरु की सपल्लव डार लसति।

झीने = महीन, बारीक। पट = वस्त्र। झुलमुली = कान में पहनने का कनपत्ता नामक गहना, चकाचौंध करती हुई। ओप = कान्ति। सुरतरु = कल्पवृक्ष। लसत = शोभता है। डार = शाखा।

महीन कपड़े में कनपत्ते की (चकाचौंध करती हुई) अपार कान्ति झलमला रही है। (वह ऐसा मालूम होता है) मानों समुद्र में कल्पवृक्ष की पल्लव युक्त शाखा शोभा पा रही हो।

फिरि फिरि चितु उतहीं रहतु टुटी लाज की लाव।
अंग अंग छबि-झौंर मैं भयौ भौंर की नाव ॥१३८॥

अन्वय—फिरि फिरि चितु उत हीं रहतु लाज की लाव टुटी अंग अंग छवि झौंर मैं भौंर की नाव भयौ।

लाव = लंगर की रस्सी। झौंर = समूह।

बार-बार चित्त उधर ही चला जाता है। लाज की रस्सी टूट गई है। (उसके) अंग-प्रत्यंग की शोभा के समूह में (मेरा चित्त) भँवर में फँसी नाव के समान हो गया है।

केसरि कै सरि क्यौं सकै चंपकु कितकु अनूपु।
गात-रूपु लखि जातु दुरि जातरूप कौ रूपु ॥१३९॥

अन्वय—केसरि क्यौं सरि कै सकै चंपक कितकु अनूपु गात रूपु लखि जातरूप को रूपु दुरि जातु।

केसरि=केसर। कै सरि क्यों सकै = क्यों सरि कै सकै = किस प्रकार

समानता कर सके। गात-रूपु = शरीर का सौंदर्य। जातरूप = सोना। जातु दुरि = छिप जाता है।

केसर क्योंकर समानता कर सके, चम्पा भी कितनी अनुपम ठहरी—उसकी अनूपता का दावा भी व्यर्थ है। (उसके) शरीर का सौंदर्य देखकर सोने का सौंदर्य भी छिप जाता है।

वाहि लखैं लोइन लगै कौन जुवति की जोति।
जाकैं तन की छाँह ढिग जोन्ह छाँह-सी होति ॥१४०॥

अन्वय—वाहि लखैं कौन जुवति की जोति लोइन लगै जाके तन की छाँह ढिग जोन्ह छाँह-सी होति।

लोइन = लोचन, आँख। जोन्ह = चाँदनी।

उसे देखने पर किस युवती की ज्योति आँखों में जँचेगी? जिसके शरीर की छाया के निकट चाँदनी भी छाया-सी हो जाती है—छाया-सी मलिन दीख पड़ती है।

कहि लहि कौन सकै दुरी सोनजाइ मैं जाइ।
तन की सहज सुबास बन देती जौ न बताइ ॥१४१॥

अन्वय—सोनजाइ मैं जाइ दुरी कहि कौन लहि सकै जौ तन की सहज सुबास बन न बताइ देती।

कहि=कहो। लहि = पाना। दुरि = छिपी। सोनजाइ = सोनजुही, पीली-चमेली। सुवास = सुगंध।

(जब वह) सोनजुही (की क्यारी) में जाकर छिप गई, (तब) कहो, उसे कौन पा सकता, यदि (उसके) शरीर की स्वाभाविक सुगंध बनकर न बता देती।

नोट—सोनजुही की पीली आभा में उसके शरीर की आभा विलीन हो

गई; किन्तु उसके शरीर की स्वाभाविक सुगन्ध से पता चल गया कि वह कहाँ छिपी है।

हरि छवि-जल जब तैं परे तब तैं छिनु बिछुरैं न।
भरत ढरत बूड़त तिरत रहत-घरी लौं नैन ॥१४२॥

अन्वय—हरि-छबि-जल जब तैं परे तब ते छिनु न बिछुरैं घरी लौं नैन भरत ढरत बूड़त तिरत रहत।

लौं = समान। तिरत = तैरते हैं।

श्रीकृष्ण की शोभा-रूपी जल में जब से पड़े हैं तब से एक क्षण के लिये भी नहीं बिछुड़ते। (सदा उस शोभा-रूपी जल में) (समय-दर्शक जल-यंत्र) घड़ी के समान मेरे नेत्र भरते हैं, ढरते हैं, बूड़ते हैं और तिरते रहते हैं।

नोट—इस जलयंत्र (रहट घड़ी) में कई घड़े सिलसिलेवार बँधे होते हैं। जब तक एक भरता रहता है, तब तक दूसरे से पानी गिरता, तीसरा डूबता रहता, और चौथा उतराता रहता है। यही सिलसिला सदा जारी रहता है।

रहि न सक्यौ कसकरि रह्यौ बस कर लीनौ मार।
भेदि दुसार कियौ हियौ तन-दुति-भेदी सार ॥१४३॥

अन्वय—कसकरि रह्यौ रहि न सक्यौ मार बस कर लीनौ तन-दुति-भेदी सार हियौ भेदि दुसार कियौ।

कसकरि रह्यौ = कसकर (अपने को सँभालकर) रहते। मार = कामदेव। दुसार = दो+शाल = दोनों ओर छेद किया हुआ, आर-पार। भेदीसार = बरमा, लकड़ी में छेद करनेवाला औजार।

अपने को काबू में रखने की चेष्टा तो की, पर रख न सका, सफल न हुआ, कामदेव ने मुझे वश में कर ही लिया। (उसने)

नायिका के शरीर की शोभा-रूपी बरमा से छेदकर (मेरे) हृदय को आर-पार कर दिया।

पहिरत हीं गोरैं गरैं यौं दौरी दुति लाल।
मनौ परसि पुलकित भई बौलसिरी की माल ॥१४४॥

अन्वय—गोरैं गरैं पहिरत हीं लाल यौं दुति दौरी मनौ बौलसिरी की माल परसि पुलकित भई।

गरे = गले। परसि = स्पर्श करके। बौलसिरी=मौलसिरी, फूल-विशेष।

उसके गोरे गले में पहनते ही, हे लाल, ऐसी चमक (उस माला में) आ गई, मानों (वह) मौलसिरी की माला भी उसके स्पर्श से पुलकित हो गई हो—रोमांचित हो गई हो।

कहा कुसुम कह कौमुदी कितक आरसी जोति।
जाकी उजराई लखैं आँख ऊजरी होति ॥१४५॥

अन्वय—कहा कुसुम कह कौमुदी आरसी जोति कितक, जाकी उजराई लखैं आँख ऊजरी होति।

कुसुम = फूल, जो कोमलता और सुन्दरता में प्रसिद्ध है। कौमुदी = चाँदनी। आरसी = आईना, दर्पण। आँखि ऊजरी होति = आँखें तृप्त हो जाती हैं—प्रसन्न अथवा विकसित हो जाती हैं।

फूल, चाँदनी और दर्पण की ज्योति की उज्ज्वलता को कौन पूछे ? (वह नायिका इतनी गोरी है कि) जिसकी उज्ज्वलता को देख कर (काली) आँखें उजली हो जाती हैं।

नोट—'प्रीतम' जी ने इसका अनुवाद यों किया है—

कुमुद औ चाँदनी आईनः यह रंगत कहाँ पाये।
शबाहत देख जिसकी आँख में भी नूर आ जाये ॥

कंचन तन धन बरन बर रह्यौ रंगु मिलि रंग।
जानी जाति सुबास हीं केसरि लाई अंग ॥ १४६ ॥

अन्वय—धन कंचन-तन बर बरन रंग रंगु मिलि रह्यौ, अंग लाई केसरि सुबास ही जानी जात।

धन = नायिका। बरन = वर्ण, रंग।

नायिका के सुनहले शरीर के श्रेष्ठ रंग में (केसर का) रंग मिल-सा गया है। (फलतः) अंग में लगी हुई केसर अपनी सुगंध से ही पहिचानी जाती है।

अंग अंग नग जगमगत दीपसिखा-सी देह।
दियो बढ़ाएँ हू रहै बड़ो उज्यारो गेह ॥१४७॥

अन्वय—दीपसिखा-सी देह अंग अंग नग जगमगत, दिया बढ़ाएँ हू गेह बड़ो उज्यारो रहै।

नग = आभूषणों में जड़े हुए हीरे। दीपसिखा = दीपशिखा, दीपक की टेम या लौ। दिया बढ़ाएँ हू = दीपक को बुझाने पर भी। उज्यारो = उजेला।

दीपक की लौ के समान उसके अंग-प्रत्यंग में नग जगमगा रहे हैं। अतएव, दीपक बुझा देने पर भी घर में (ज्योतिपूर्ण शरीर और नगों के प्रकाश से) खूब उजेला रहता है।

ह्वै कपूरमनिमय रही मिलि तन-दुति मुकुतालि।
छिन-छिन खरी बिचच्छनी लखति छाइ तिनु आलि ॥१४८॥

अन्वय—तन-दुति मिलि मुकुतालि कपूरमनिमय ह्वै रही छिन-छिन खरी बिचच्छनी आलि तिनु छाइ लखति।

कपूरमणि = कहरुवा, यह पीले रंग का होता है, और तिनके का स्पर्श होते ही उसे चुम्बक की तरह पकड़ लेता है। दुति = चमक। मुकुतालि =

मुक्तालि, मुक्ताओं के समूह। खरी = अत्यन्त। विचच्छनी = चतुरा स्त्री। छाइ = छुलाकर। तिनु = तिनके। आलि = सखी।

शरीर की (पीली) द्युति से मिलकर मुक्ता की (उजली) माला (पीले) कर्पूरमणि—कहरुवा—की माला-सी हो रही है। अतएव, अत्यन्त सुचतुरा सखी क्षण-क्षण (उस माला से) तिनके छुला-छुला कर देखती है (कि अगर कहरुवा की माला होगी, तो तिनके को पकड़ लेगी)।

खरी लसति गोरैं गरैं धँसति पान की पीक।
मनौ गुलीबँद लाल की लाल लाल दुति लीक ॥१४९॥

अन्वय—गोरैं गरैं धँसति पान की पीक खरी लसति लाल लाल लीक दुति मनौ लाल की गुलीबँद।

धँसति = हलक के नीचे उतरती है। खरी = अधिक। लसति = शोभती है। गुलीबँद = गले में बाँधने का आभूषण, जिसे कंठी कहते हैं। लाल = लाल मणि। लीक = रेखा, लकीर।

(उस गोरी के) गोरे गले में उतरती हुई पान की पीक बड़ी अच्छी लगती है। (उसे कंठ तक करते समय अत्यन्त सुकुमारता के कारण जो पीक की ललाई बाहर झलकती है, (सो) लाल-लाल लकीरों की चमक (ऐसी मालूम पड़ती है) मानों लाल मणियों की कंठी (उसने पहनी) हो।

बाल छबीली तियन मैं बैठी आपु छिपाइ।
अरगट ही फानूस-सी परगट होति लखाइ ॥१५०॥

अन्वय—छबीली बाल तियन मैं आपु छिपाइ बैठी, फानूस-सी अरगट ही परगट लखाइ होति।

बाल = नवयौवना । अरगट = अलग । फानूस = शीशे के अंदर बलता हुआ दीपक । परगट = प्रकट, प्रत्यक्ष ।

(वह) सुन्दरी बाला स्त्रियों (के झुण्ड) में अपने आपको छिपाकर जा बैठी । किन्तु फानूस (की ज्योति) के समान वह अलग ही (साफ) प्रकट दीख पड़ने लगी ।

डीठि न परत समान दुति कनकु कनक सौं गात ।
भूषन कर करकस लगत परस पिछाने जात ॥१५१॥

अन्वय—समान दुति कनकु सैं गात कनक न डीठि परत, भूषन कर करकस लगत परस पिछाने जात ।

डीठि=दृष्टि । दुति = चमक, आभा । कनक = सोना । कर = हाथ । करकस = कठोर । परस = स्पर्श । पिछाने = पहिचाने ।

एक ही प्रकार की आभा होने से (उसके) सोने के ऐसे (गोरे) शरीर में सोना (सुनहला गहना) नहीं दीख पड़ता—वह शरीर के रंग में मिल जाता है । (अतएव, सोने के) गहने हाथ में कठोर लगने से स्पर्श द्वारा ही पहचाने जाते हैं ।

करतु मलिनु आछी छबिहिं हरतु जु सहजु विकासु ।
अंगरागु अंगनु लगै ज्यौं आरसी उसासु ॥१५२॥

अन्वय—जु आछी छबिहिं मलिनु करतु, सहज विकासु हरतु । अंगनु लगै अंगरागु उसासु आरसी ज्यों ।

आछी = अच्छी । अंगराग—केसर, चंदन, करतूरी आदि का सौंदर्य-वर्द्धक लेप । आरसी = आईना । उसास = उच्छ्वास = साँस की भाफ ।

जो सुन्दर शोभा को भी मलिन कर देता है, स्वाभाविक रूप-विकास को भी हर लेता है । (उसके) शरीर में लगा हुआ अंग-राग आईने पर पड़ी साँस की भाफ-सा (मालूम पड़ता) है ।

नोट—आईने पर साँस की भाफ पड़ने से जिस प्रकार उसकी ज्योति धुँधली हो जाती है, अंगराग से नायिका के शरीर की स्वभाविक ज्योति भी उसी प्रकार मलिन हो जाती है।

अंग अंग प्रतिबिम्ब परि दरपन सैं सब गात।
दुहरे तिहरे चौहरे भूषन जाने जात ॥१५३॥

अन्वय—दरपन-सैं सब गात; अंग-अंग प्रतिबिम्ब परि भूषन दुहरे, तिहरे, चौहरे जाने जात।

आईने-जैसे (चमकीले) शरीर में प्रतिबिम्ब (छाया) पड़ने से (अंग-अंग के गहने) दुहरे, तिहरे और चौहरे दीख पड़ते हैं—एक एक गहना दो-दो, तीन-तीन, चार-चार तक मालूम पड़ता है।

अंग-अंग छबि की लपट उपटति जाति अछेह।
खरी पातरीऊ तऊ लगै भरी-सी देह ॥१५४॥

अन्वय—अंग-अंग छबि की लपट अछेह उपटति जाति। खरी पातरीऊ तऊ देह भरी-सी लगै।

उपटति जाति = बढ़ती ही जाती है। अछेह = निरंतर, अवाध रूप। खरी = अत्यन्त। पातरीऊ = पतली होने पर भी।

अंग-प्रत्यंग से शोभा की लपट अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है। (अतएव) अत्यन्त पतली होने पर भी कान्ति के (अधिकाधिक उभाड़ के कारण) उसकी देह भरी-सी (पुष्ट) जान पड़ती है।

रंच न लखियति पहिरियौं कंचन-सैं तन बाल।
कुँभिलानैं जानी परै उर चम्पक की माल ॥१५५॥

अन्वय—कंचन-सैं तन बाल उर चम्पक की माल पहिरियौं रंच न लखियति। कुंभिलाने जानी परै।

रंच = जरा, कुछ। उर = हृदय।

सोने के ऐसे (गोरे) शरीरवाली (उस) बाला के हृदय पर चंपा की माला (शरीर की द्युति और चंपा की द्युति एक-सी होने के कारण) जरा भी नहीं दीख पड़ती। (हाँ) जब वह कुम्हिला जाती है, तभी देख पड़ती है।

नोट—तुलसीदास का एक बरवै भी इसी भाव का है—

चंपक हरवा अंग मिलि अधिक सुहाइ।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाइ॥

भूषन भारु सँभारिहै क्यों इहिं तन सुकुमार।
सूधे पाइ न धर परै सोभा हीं कैं भार॥१५६॥

अन्वय—इहिं सुकुमार तन भूषन-भारु क्यों सँभारिहै। सोभा ही के भार सूधे पाइधर न परै।

सुकुमार = नाजुक। सूधे = सीधे। धर = धरा = पृथ्वी।

यह सुकुमार शरीर गहनों के भार को कैसे सँभालेगा? जब सौन्दर्य के भार ही से सीधे पैर पृथ्वी में नहीं पड़ते!

नोट—इस दोहे में बिहारी ने मुहाविरे का अच्छा चमत्कार दिखलाया है। 'सीधे पैर नहीं पड़ना' का अर्थ है 'ऐंठ कर चलना'। कोई सखी नायिका से व्यंग्यपूर्वक कहती है कि विना भूषण के ही तुम तुम ऐंठ कर चलती हो, फिर भूषण पहनने पर न मालूम क्या गजब ढाओगी? साथ ही, इसमें सुकुमारता और सुन्दरता की भी हद दिखाई गई है।

न जक धरत हरि हिय धरैं नाजुक कमला बाल।
भजत भार भयभीत ह्वै घनु चंदनु बनमाल॥१५७॥

अन्वय—नाजुक कमला-बाल हरि हिय धरैं न जक धरत। घनु, चदनु, बनमाल भार भयभीत भजत।

जक = डर। घन = कपूर।

हथेली देखकर—(कंजूस) ससुर ने भिक्षा देने का (भार उसी को) सौंपा (इसलिये कि हथेली छोटी है, भिक्षुकों को थोड़ा ही अन्न दिया जा सकेगा) किन्तु (उसके) रूप के लालच में पड़ सारा संसार ही आकर (उससे भिक्षा) माँगने लगा!

नोट—छोटी हथेली स्त्रियों की सुन्दरता की सूचक है।

त्यौं त्यौं प्यासेई रहत ज्यौं ज्यौं पियत अघाइ।
सगुन सलोने रूप की जु न चख-तृषा बुझाइ ॥१६२॥

अन्वय—ज्यौं ज्यौं अघाइ पियत त्यौं त्यौं प्यासेई रहत। सगुन सलोने रूप की जु चख तृषा न बुझाइ।

अघाइ = अफर कर, तृप्तिपूर्वक, छककर। सगुन = गुण सहित। सलोने = लावण्ययुक्त, नमकीन। चख = नेत्र। तृषा = प्यास।

जितना ही अघा-अघा कर पीते हैं, उतना ही प्यासे रह जाते हैं। गुणों से युक्त लावण्य-भरे रूप की—इन नेत्रों की—प्यास शान्त नहीं होती—अर्थात् इन नेत्रों को उसके लावण्यमय रूप के देखने की जो प्यास है, वह नहीं बुझती।

नोट—'सलोने' शब्द यहाँ पूर्ण उपयुक्त है। नमकीन पानी पीने से प्यास नहीं बुझती। त्योंही लावण्यमय रूप देखने से आँखें नहीं ऊबतीं या अघातीं।

रूप-सुधा-आसव छक्यौ आसव पियत बनै न।
प्यालै ओठ प्रिया बदन रह्यौ लगाएँ नैन ॥१६३॥

अन्वय—रूप-सुधा आसव छक्यौ, आसव पियत न बनै। प्यालै ओठ नैन प्रिया-बदन लगाएँ रह्यौ।

रूपसुधा = अमृत के समान मधुर रूप। आसव = मदिरा। छक्यौ=भर पेट पीने से। बदन = मुख।

अमृतोपम सौंदर्य-रूपी मदिरा पीने के कारण (साधारण) मदिरा पीते नहीं बनती। (मदिरा के) प्याले तो ओंठ से लगे हैं, और आँखें प्यारी के मुख पर अड़ी हैं वह एकटक प्यारी का मुख देख रहा है, पर बेचारे से मदिरा पी नहीं जाती।

दुसह सौति सालैं सुहिय गनति न नाह बियाह।
धरे रूप-गुन कौ गरबु फिरै अछेह उछाह ॥१६४॥

अन्वय—सौति दुसह, सुहिय सालैं; नाह बियाह न गनति। रूप-गुन कौ गरबु धरे अछेह उछाह फिरै।

गनति न = नहीं गिनती, परवा नहीं करती। नाह = पति। अछेह-अनन्त, अधिक। उछाह = आनन्द, उत्साह।

सौतिन सदा दुस्सह होती है, वह हृदय में सालती है (यह जानकर भी वह नायिका) पति के (दूसरे) विवाह की परवा नहीं करती। (अपने) रूप और गुण के गर्व में मस्त हो अनन्त आनन्द से विचर रही है।

लिखन बैठि जाकी सबी गहि गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ॥१६५॥

अन्वय—जाकी सबी गरब-गरूर गहि-गहि लिखन बैठि जगत के केते चतुर चितेरे कूर न भए।

सबी = चित्र। गरूर = अभिमान। केते = कितने। चितेरे = चित्र-कार। कूर = बेवकूफ।

(उस नायिका के रूप का क्या कहना!) जिसके चित्र को अत्यन्त गर्व और अभिमान के साथ बनाने के लिये बैठकर संसार के कितने चतुर चित्रकार बेवकूफ बन गये—उनसे चित्र नहीं बन सका!

नोट—शक्ल तो देखो मुसव्विर खींचेगा तसवीरे यार।
आप ही तसवीर उसको देखकर हो जायगा ॥—ज़ौक़।

(सो०) तो तन अवधि अनूप, रूप लग्यौ सब जगत कौ।
मो दृग लागे रूप, दृगनु लगी अति चटपटी ॥१६६॥

अन्वय—तो तन अनूप अवधि, सब जगत को रूप लग्यौ। मो दृग रूप लागे दृगनु अति चटपटी लगी।

अवधि = सीमा, हद। दृग = आँख। चटपटी = व्याकुलता।

तुम्हारा शरीर अनुपमता की सीमा है—इसकी समानता संसार में है ही नहीं। (क्योंकि इसके रचने में) संसार-भर का सौंदर्य लगाया गया है-(जहाँ, जिस पदार्थ में, कुछ सौंदर्य मिला, सब का संमिश्रण इसमें कर दिया गया है)—मेरी आँखों में (तुम्हारा वह) रूप आ लगा है—समा गया है। (फलतः) आँखों में अत्यन्त व्याकुलता छा गई है-वे व्याकुल बनी रहती हैं।

नोट—ठाकुर कवि के "कंचन को रंग लै सवाद लै सुधा को बसुधा को सुख लूटि कै बनायो मुख तेरो है" के आधार पर 'पथिक' में सौंदर्य-सामग्रियों का कथन यों किया गया है—

कहते थे तुम कोमलता नीरज की, ज्योति रतन की।
मोहकता शशि की, गुलाब की सुरभि, शान्ति सज्जन की॥
रति का रूप, रंग कंचन का, लेकर स्वाद सुधा का।
विरचा है विधि ने मुख तेरा सुख लेकर वसुधा का॥

त्रिबली नाभि दिखाइ कर सिर ढँकि सकुच समाहि।
गली अली की ओट ह्वै चली भली बिधि चाहि ॥१६७॥

अन्वय—त्रिबली नाभि दिखाइ, सकुच समाहिं सिर ढँकि कर अली की ओट ह्वै भली बिधि चाहि गली चली।

त्रिवली = नाभी के निकट की तीन रेखाएँ । सकुच समाहि = लाज में समाकर, लज्जित होकर । अली = सखी । चाहि = देखकर ।

त्रिवली और नाभी दिखाकर (फिर) लज्जित हो सिर ढँक कर हाथ उठाकर—हे सखि, वह (अपनी) सखियों की ओट हो भली भाँति (नायक को) देखती हुई गली में चली गई ।

देख्यौ अनदेख्यौ कियैं अँगु अँगु सबै दिखाइ ।
पैठति-सी तन मैं सकुचि बैठी चितै लजाइ ॥१६८॥

अन्वय—अँगु-अँगु सबै दिखाइ देख्यौ अनदेख्यौ कियैं । तन मैं पैठति-सी चितै लजाय सकुचि बैठि ।

सकुचि = संकोच करके । लजाय = लजाकर ।

(पहले तो उस नायिका ने) सभी अंग-प्रत्यंग दिखाकर (नायक को) देखती हुई भी अनदेख कर दिया—यद्यपि वह उसे देख रही थी, तो भी न देखने का बहाना करके अपने सभी अंग उसे दिखा दिये । (फिर उस नायक के) तन में पैठती हुई-सी—उसके चित्त में खुबती हुई-सी—वह मन में लजाकर संकोच के साथ बैठ गई ।

बिहँसि बुलाइ बिलोकि उत प्रौढ़ तिया रसघूमि ।
पुलकि पसीजति पूत कौ पिय चूम्यौ मुँहु चूमि ॥१६९॥

अन्वय—बिहँसि बुलाइ उत बिलोकि, प्रौढ़ तिया रसघूमि पूत कौ पिय चूम्यौ मुँहु चूमि पुलकि पसीजति ।

बिहँसि = हँसकर, मुस्कुराकर । उत = उधर । प्रौढ़ = प्रौढ़ा, पूर्ण-यौवना । रसघूमि = रस में मस्त होकर । पुलकि = रोमांचित होकर । पसीजति = पसीजती है, पसीने से तर होती है ।

हँसकर, बुलाकर, (और) उधर (नायक की ओर) देखकर

वह पूर्णयौवना स्त्री, रस में मस्त हो, पति द्वारा चूमे गये अपने पुत्र के मुख को चूमकर, रोमांचित तथा पसीने से तर होती है।

रहौ गुही बेनी लखे गुहिबे के त्यौनार।
लागे नीर चुचान जे नीठि सुखाये बार ॥१७०॥

अन्वय—रहौ, बेनी, गुही गुहिबे के त्यौनार लखे। नीठि सुखाये बार जे नीर चुचान लागे।

रहौ = रह जाओ, ठहरो। त्यौनार = ढंग। नीर = पानी। नीठि = मुश्किल से। बार—बाल, केश।

ठहरो भी, (तुम) वेणी गूँथ चुके। (तुम्हारा) वेणी गूँथने का ढंग देख लिया। मुश्किल से सुखाये हुए इन बालों से (पुनः) पानी चुचुहाने लगा।

नोट—नायिका की चोटी गूँथते समय प्रेमाधिक्य के कारण नायक के हाथ पसीजने लगे, जिससे सूखे हुए बाल पुनः भींग गये।

स्वेद-सलिलु रोमाञ्च-कुसु गहि दुलही अरु नाथ।
हियौ दियौ सँग हाथ कैं हँथलेयैं हीं हाथ ॥१७१॥

अन्वय—स्वेद-सलिल, रोमांच-कुसु, गहि दुलही अरु नाथ; हथलेयैं हीं हाथ कें संग हियौ हाथ दियौ।

स्वेद = पसीना। रोमांच-कुसु = खड़े हुए रोंगटे के कुश। नाथ = दुलहा। हियो = हृदय। हँथलेयैं = पाणिग्रहण।

पसीना-रूपी पानी और रोमांच-रूपी कुश लेकर वर और दुलहिन (दोनों) ने पाणिग्रहण के समय में ही अपने हाथ के साथ ही अपना-अपना हृदय भी (एक दूसरे के) हाथ में दे दिया।

नोट—'प्रीतम' कवि ने कहा है—"धनी की जब सुरत में वह भाव है सरसता, कुश रोम तन खड़े हो भूकम्प है दरसता।"

मानहु मुँह-दिखरावनी दुलहिहिं करि अनुरागु।
सासु सदनु मनु ललन हूँ सौतिन दियौ सुहागु ॥१७२॥

अन्वय—मानहु मुँह-दिखरावनी दुलहिहिं अनुराग करि सास सदनु ललनहूँ मनु, सौतिन सुहाग दियौ।

मुँह-दिखरावनी = पहले पहल नई दुलहिन की मुँहदेखी की रस्म। सदन = घर। सुहाग = सौभाग्य, पतिप्रेम।

मानों मुँह-देखौनी में दुलहिन पर प्रेम करके (उपहार में) सास ने घर, प्रीतम ने मन, और सौतिन ने सुहाग दे दिये।

नोट—सौतिन के सुहाग देने का अभिप्राय यह है कि अब नायक इसी पर अनुरक्त रहेगा, उसे पूछेगा भी नहीं।

निरखि नवोढ़ा नारि-तन छुटत लरिकई लेस।
भौ प्यारो पीतमु तियनु मनहु चलत परदेस ॥१७३॥

अन्वय—नवोढ़ा नारि-तन लरिकई लेस छुटत निरखि तियनु पीतमु प्यारो भौ मनहु परदेस चलत।

नवोढ़ा = नववयस्का। लरिकई = लड़कपन। लेस = सम्बन्ध। तियनु = स्त्रियों को। मनहु = मानों।

नवयुवती नायिका के शरीर से लड़कपन का सम्बन्ध छूटते देखकर—उसे बालिका से नवयुवती होते देखकर—(अन्य) स्त्रियों को (अपना) पति इतना प्यार हो गया, मानों वह परदेश जा रहा हो।

नोट—अन्य स्त्रियों को भय हो गया कि उस नवयुवती के रूप-गुण पर कहीं ये आकृष्ट न हो जायँ, अतएव अपने पति को बहुत ही प्यार करने लगीं। परदेश जाते समय पति और भी प्यारा लगता है।

ढीठ्यौ दै बोलति हँसति पोढ़-बिलास अपोढ़।
त्यौं त्यौं चलत न पिय नयन छकए छकी नवोढ़ ॥१७४॥

अन्वय—ढीठ्यौ दै बोलति हँसति; अपोढ़ (है) पोढ़ बिलास (दरसावति) - त्यौं त्यौं पिय नयन न चलत (मनों) छकी नवोढ़ छकए।

ढीठ्यौ दै = ढिठाई से। पौढ़-बिलास = प्रौढ़ा के समान हावभाव! अपोढ़ = अप्रौढ़, प्रौढ़ा नहीं, नवोढ़ा। चलत न पिय नयन = नायक का आँखें चंचल नहीं होतीं, स्थिर होकर देखती हैं। छकए = शराब पिलाना। छकी = शराब पिये हुई, मदमस्त। नवोढ़ा = नवयुवती।

ज्यों-ज्यों ढिठाई से बोलती और हँसती है, प्रौढ़ा न होने पर भी —पूर्णवयस्का न होने पर भी—प्रौढ़ा का-सा हाव-भाव (दिखला रही) है, त्यों-त्यों प्रीतम (नायक) की आँखें नहीं चलती हैं—एकटक उसकी ओर देखती रहती हैं (मानों उस) मदमस्त नवयुवती ने (उन्हें भी शराब) पिला दिया हो।

सनि कज्जल चख झख-लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु।
क्यौं न नृपति ह्वै भोगवै लहि सुदेस सबु देहु ॥१७५॥

अन्वय—सनि कज्जल, चख झख लगन-सुदिन सनेहु उपज्यौ। सबु देहु सुदेसु लहि क्यौं न नृपति ह्वै भोगवै।

सनि = शनैश्चर। चख = आँख। झख = मीन। सुदिन = शुभ घड़ी। सुदेस = सुन्दर देश।

काजल शनैश्चर है, आँखें मीन लग्न हैं। (यों इस शनैश्चर और मीन लग्न के संयोग की) शुभ घड़ी में प्रेम की उत्पत्ति हुई है (फिर वह प्रेम) समूचे शरीर-रूपी सुन्दर देश को पाकर (उसका) राजा बन क्यों न भोग करे ?

नोट—ज्योतिषशास्त्र के अनुसार मीन लग्न में शनैश्चर पड़ने से राज्ययोग होता है।

चितई ललचौहैं चखनु डटि घूँघट पट माँह।
छल सौं चली छुवाइ कै छिनकु छबीली छाँह ॥१७६॥

अन्वय—घूँघट-पट माँह डटि ललचौहैं चखनु चितई। छबीली छल सों छिनकु छाँह छुवाइ कै चली।

चितई = देखा। ललचौहैं = मन ललचानेवाले। चखनु = आँखें। छिनकु = एक क्षण। छाँह = छाया, परिछाईं।

घूँघट के कपड़े के भीतर से डटकर—निश्शंक होकर—(उसने) लुभावनी आँखों से (मुझे) देखा। (फिर वह) छबीली छल से एक क्षण के लिये अपनी छाया (मेरे शरीर से) छुलाकर चली गई।

नोट—छाया छुलाने से नायिका का यह तात्पर्य है कि मैं आप (प्रेमी) से मिलना चाहती हूँ।

कीनैं हूँ कोटिक जतन अब कहि काढ़ै कौनु।
भौ मन मोहन रूपु मिलि पानी मैं कौ लौनु ॥१७७॥

अन्वय—कोटिक जतन कीनैं हूँ कहि अब कौनु काढ़ै। मोहन रूप मिलि मन पानी में कौ लौनु भौ।

कहि = कहो। काढ़ै = निकाले, बाहर करे। लौनु = नमक।

करोड़ो यत्न करने पर भी, कहो, अब कौन (उसे) बाहर कर सकता है। श्रीकृष्ण के रूप से मिलकर (मेरा) मन पानी में का नमक हो गया—जिस प्रकार नमक पानी में घुलकर मिल जाता है, उसी प्रकार मेरा मन भी श्रीकृष्ण से घुल-मिल गया है।

नेह न नैननु कौं कछू उपजी बड़ी बलाइ।
नीर भरे नित प्रति रहै तऊ न प्यास बुझाइ ॥१७८॥

अन्वय—नेह न, नैननि को कछू बड़ी बलाइ उपजी। नित प्रति नीर भरे रहैं, तऊ प्यास न बुझाइ।

बलाय = बला, रोग। तऊ = तोभी। नित प्रति = नित्य, प्रतिदिन।

(यह) प्रेम नहीं है—कौन इसे प्रेम कहता है? (मेरी) आँखों में (निस्संदेह) कोई भारी रोग उत्पन्न हो गया है। (देखो न) सदा पानी से भरी रहती हैं—आँसुओं में डूबी रहती हैं, तो भी (इनकी) प्यास नहीं बुझती!

छला छबीले लाल को नवल नेह लहि नारि।
चूँवति चाहति लाइ उर पहिरति धरति उतारि॥१७९॥

अन्वय—छबीले लाल को छला नवल नेह लहि नारि चूँवति चाहति उर लाइ पहिरति उतारि धरति।

छला = छल्ला, अँगूठी। नवल = नया। लहि = पाकर। चाहति = देखती है। लाइ उर = हृदय से लगाकर। धरति = रखती है।

छबीले लाल की—रसिया श्रीकृष्ण की—अँगूठी नवीन प्रेम में (उपहार-स्वरूप) पाकर (वह) स्त्री (उसे) चूमती है, देखती है, छाती से लगाकर पहनती है और उतारकर रखती है—पगली-सी ये सारी चेष्टाएँ कर रही हैं।

थाकी जतन अनेक करि नैंकु न छाड़ति गैल।
करी खरी दुबरी सुलगि तेरी चाह चुरैल॥१८०॥

अन्वय—अनेक जतन करि थाकी नैंकु गैल न छाड़ति। तेरी चाह चुरैल सुलगि खरी दुबरी करी।

नेकु = जरा, तनिक। गैल = राह। खरी = अत्यन्त। सु लगि = अच्छी तरह लगकर।

अनेक यत्न करके थक गई (किन्तु) जरा भी राह नहीं छोड़ती,

पिंड नहीं छोड़ती—छुटकारा नहीं देती। तेरी चाह-रूपी चुड़ैल ने अच्छी तरह लगकर उसे बहुत ही दुबली बना दिया है।

उन हरकी हँसि कै इतै इन सौंपी मुसुकाइ।
नैन मिलैं मन मिलि गए दोऊ मिलवत गाइ ॥१८१॥

अन्वय—उन हँसिकै हरकी, इतै इन मुसुकाइ सौंपी। गाइ मिलवत नैन मिलैं दोऊ मन मिलि गए।

हरकी = हटकी, रोका। इतै = इधर। मिलवत = मिलाते समय।

उन्होंने—श्रीकृष्ण ने—हँसकर मना किया (नहीं, मेरी गायों में अपनी गायें मत मिलाओ), इधर इन्होंने—श्रीराधिका ने—मुस्कुराकर सौंप दी (लो मेरी गौएँ, मैं तुम्हीं को सौंपती हूँ), यों गायों को मिलाते समय आँखें मिलते ही दोनों (राधाकृष्ण) का मन भी मिल गया।

फेरु कछुक करि पौरि तैं फिरि चितई मुसुकाइ।
आई जावनु लेन तिय नेहैं गई जमाइ ॥१८२॥

अन्वय—कछुक फेरु करि पौरि तैं फिरि मुसुकाइ चितई। तिय आई जावनु लेन गई नेहैं जमाइ।

फेरु = बहाना। पौरि = दरवाजा, ड्योढ़ी। चितई = देखा। जावनु = वह थोड़ा-सा खट्टा दही, जिसे दूध में डालकर दही जमाया जाता है।

कुछ बहाना करके दरवाजे से लौट (उसने) मुस्कुराकर (मेरी ओर) देखा। (यों) वह स्त्री आई (तो) जामन लेने, (और) गई प्रेम जमाकर—प्रेम स्थापित कर।

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यों ज्यों बूड़ै स्याम रँग त्यौं त्यौं उज्जल होइ ॥१८३॥

अन्वय—या अनुरागी चित्त की गति कोइ नहिं समुझै। ज्यौं-ज्यौं स्याम-रँग बूड़ै त्यौं-त्यौं उज्जल होइ।

गति = चाल। कोइ = कोई। स्यामरंग = काला रंग, कृष्ण का रंग। उज्जल = उज्ज्वल, निर्मल।

इस प्रेमी मन की (अटपटी) चाल कोई नहीं समझता (देखो तो) यह ज्यों-ज्यों (श्रीकृष्ण के) श्याम-रंग में डूबता है, त्यों-त्यों उजला ही होता जाता है।

होमति सुखु करि कामना तुमहिं मिलन की लाल।
ज्वालमुखी-सी जरति लखि लगनि अगिनि की ज्वाल॥१८४॥

अन्वय—लाल, तुमहि मिलन की कामना करि सुखु होमति लखि, लगनि अगिनि-की ज्वाल ज्वालमुखी-सी जरति।

होमति = होम करती है, आग में डालती है। लखि=देखो। लगनि = प्रेम।

हे लाल! तुमसे मिलने की कामना करके (वह) सुख का होम (विसर्जन) कर रही है। देखो! (उसकी) प्रेमाग्नि की ज्वाला ज्वालामुखी (पर्वत) के समान जल रही है। (वह ज्वाला शान्त नहीं होती, क्योंकि सुखों की आहुति तो बराबर पड़ रही है।)

मैं हो जान्यौ लोइननु जुरत बाढ़िहै जोति।
को हो जानतु:दीठि कौं दीठि किरकिरी होति॥१८५॥

अन्वय—मैं जान्यौ हो लोइननु जुरत जोति बाढ़िहै। को जानतु हो दीठि को दीठि किरकिरी होति।

मैं हो जान्यो = मैं जानती थी। लोइननु = आँखें। को हो जानत = कौन जानता था। दीठि = नजर, दृष्टि। किरकिरी = आँख में पड़ी धूल।

मैं जानती थी कि आँखों के मिलने (लड़ने) से आँखों की

ज्योति बढ़ेगी (दो के मिलने से दुगुनी ज्योति भी बढ़ेगी) । (किन्तु) कौन जानता था कि नजर के लिये नजर (बालू की) किरकिरी-सी होती है—उसे केवल पीड़ा ही पहुँचाती है ।

जौन जुगुति पिय-मिलन की धूरि मुकुति मुँह दीन ।
जौ लहियैं सँग सजन तौ धरक नरक हूँ की न ॥१८६॥

अन्वय—जो पिय-मिलन की जुगुति न, मुकुति मुँह धूरि दीन । जौ सजन सँग लहियैं तो नरक हूँ की धरक न ।

जुगुति=उपाय । मुकुति=मुक्ति, मोक्ष । सजन=प्रीतम, अपना प्यारा । धरक=धड़क, भय ।

यदि प्रीतम से मिलने का उपाय न हो—यदि इससे प्रीतम न मिल सके—(तो) मोक्ष के मुख पर भी धूल डालो—उसे तुच्छ समझो । (और) यदि अपने प्यारे का संग पाओ, तो नरक का भी डर नहीं—प्रीतम के साथ नरक भी सुखकर है ।

नोट—एक कवि ने इसी भाव पर यों मजमून बाँधा है

प्रीतम नहीं बजार में, वहै बजार उजार ।
प्रीतम मिलै उजार में, वहै उजार बजार ॥

मोहूँ सौं तजि मोहु दृग चले लागि इहिं गैल ।
छिनकु छ्वाइ छबि गुर डरी छले छबीलै छैल ॥१८७॥

अन्वय—मोहूँ सों मोहु तजि दृग इहिं गैल लागि चले । छिनकु छबि-गुर डरी छ्वाइ छबीलै छैल छले ।

मोहूँ सो=मुझ से भी । मोह=ममता । गैल=राह । छिनकु=एक क्षण । छ्वाइ=छुलाकर, स्पर्श कराकर । गुर-डरी=गुड़ की डली या गोली, भेली ।

मुझसे भी ममता छोड़कर (मेरे) नेत्र उसी राह पर जाने

लगे—उसी नायक के लिए व्याकुल रहते हैं। एक क्षण के लिये शोभा रूपी गुड़ की गोली (इनके मुख से) छुलाकर (उस) छबीले छैल ने—सुन्दर रसिक ने—(इन्हें) छल लिया।

को जानै ह्वै है कहा ब्रज उपजी अति आगि।
मत लागै नैननु लगैं चलै न मग लगि लागि ॥१८८॥

अन्वय—को जानै, कहा ह्वै है, ब्रज अति आगि उपजी। नैनु लगैं मन लागै मग लगि चलै न।

को = कौन। कहा = क्या। अति आगि = विचित्र अग्नि, अर्थात् प्रेम की अग्नि। लगि लागि = निकट होकर।

कौन जानता है क्या होगा? ब्रज में विचित्र आग पैदा हुई है, (वह) आँखों में लगकर हृदय में लग जाती है। अतएव तू उस) रास्ते के निकट होकर भी न चल—उस रास्ते से दूर ही रह।

तजतु अठान न हठ पर्‍यौ सठमति आठौ जाम।
भयो बामु वा बाम कौं रहैं कामु बेकाम ॥१८९॥

अन्वय—सठमति आठौ जाम अठान न तजतु हठ पर्‍यौ। कामु बेकाम वा बाम कौं बामु भयौ रहैं।

अठान = अनुष्ठान। सठमति = मूर्ख। जाम = पहर। बामु = विमुख। बाम = स्त्री। काम = कामदेव। बेकाम = व्यर्थ।

मूर्ख (कामदेव) आठो पहर अपना अनुष्ठान—सताने की आदत—नहीं छोड़ता—(अजीब) हठ पकड़ लिया है। वह कामदेव व्यर्थ ही उस अबला से (यों) विमुख बना रहता है—क्रुद्ध हुआ रहता है।

लई सौंह-सी सुनन की तजि मुरली धुनि आन।
किए रहति नित रात दिन कानन लाए कान ॥१९०॥

अन्वय—मुरली धुनि तजि आन सुनन की सौंह-सी लई। नित रात-दिन कानन कान लाए किए रहति।

सौंह = शपथ, कसम। आन = दूसरा। रति = प्रीति, रुचि। किए रहति = (सुनने की) चाह लगाये रहती है। कानन = जंगल। लाए = लगाये।

मुरली की ध्वनि छोड़कर दूसरी चीज सुनने की (उसने) कसम-सी खा ली है। (वह) नित्य रात-दिन जंगल की ओर—वृन्दावन की ओर—(वंशी-ध्वनि में) कान लगाये (प्रेमोत्कंठित) रहती है।

भृकुटी-मटकनि पीत-पट चटक लटकती चाल।
चल चख-चितवनि चोरि चितु लियौ बिहारीलाल ॥१९१॥

अन्वय—भृकुटी मटकनि, पीतपट चटक, लटकती चाल, चल चख चितवनि बिहारीलाल चितु चोरि लियौ।

भृकुटि = भवँ। चटक = चमक। लटकती चाल = अँठलाती चाल। चल = चंचल। चख = आँखें। चोरि लियौ = चुरा लिया।

भँवों की मटकन, पीताम्बर की चमचमाहट, मस्ती की चाल और चंचल नेत्रों की चितवन से बिहारीलाल (श्रीकृष्ण) ने चित्त को चुरा लिया।

दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुर-चित प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हियैं दई नई यह रीति ॥१९२॥

अन्वय—उरझत दृग, टूटत कुटुम, प्रीति जुरत चतुर चित, गाँठि परति दुर्जन हियैं, दई, यह नई रीति।

दृग = आँख। उरझत = उलझती है, लड़ती है। टूटत कुटुम = सगे सम्बंधी छूट जाते हैं। जुरत = जुड़ता है; जुटता है। हियैं = हृदय। दई = ईश्वर। नई = अनोखी।

उलझते हैं नेत्र, टूटता है कुटुम्ब! प्रीति जुड़ती है चतुरों के

चित्त में, और गाँठ पड़ती है दुर्जन के हृदय में ! हे ईश्वर ! (प्रेम की) वह (कैसी) अनोखी रीति है !

नोट—साधारण नियम यह है कि जो उलझेगा, वही टूटेगा; जो टूटेगा, वही जोड़ा जायगा; और जो जोड़ा जायगा, उसी में गाँठ पड़ेगी। किन्तु यहाँ सब उलटी बातें हैं, और तुर्रा यह कि उलटी होने पर भी सत्य है। यह दोहा बिहारी के सर्वोत्कृष्ट दोहों में से एक है।

चलत घैरु घर घर तऊ घरी न घर ठहराइ।
समुझि उहीं घर कौं चलै भूलि उहीं घर जाइ ॥१९३॥

अन्वय—घर घर घैरु चलत तऊ घरी घर न ठहराइ। समुझि उहीं घर कौं चलै, भूलि उहीं घर जाइ।

घैरु = निन्दा, चवाव। तऊ = तो भी। समुझि = जान-बूझकर। उहीं = उसी (नायक के घर को)।

घर-घर में निन्दा (की चर्चा) चल रही है—सब लोग निंदा कर रहे हैं—तो भी वह घड़ी भर के लिये (अपने) घर में नहीं ठहरती। जान-बूझकर उसी (नायक) के घर जाती है, और भूलकर भी उसी के घर जाती है (प्रेमांध होने से निंदा की परवा नहीं करती)

डर न टरै, नींद न परै हरै न काल बिपाकु।
छिनकु छाकि उछकै न फिरि खरौ बिषमु छबि छाकु ॥१९४॥

अन्वय—डर टरै न, नींद न परै, काल-बिपाकु न हरै, छिनकु छाकि फिरि न उछकै छबि-छाक खरौ बिषमु।

काल-बिपाकु = निश्चित समय का व्यतीत हो जाना। छाकि = पीकर। उछकै = उतरै। फिरि = पुनः। खरौ = अत्यन्त। बिषमु = विकट, विलक्षण। छबि = सौंदर्य। छाक = मदिरा, नशा।

डर से दूर नहीं होता, नींद पड़ती नहीं, समय की कोई निश्चित अवधि बीतने पर भी नष्ट नहीं होता। थोड़ा-सा भी पीने से फिर कभी नहीं उतरता। (यह) सौंदर्य का नशा अत्यन्त (विकट) या विलक्षण है।

नोट—नशा डर से दूर हो जाता है, उसमें नींद भी खूब आती है, तथा एक निश्चित अवधि में दूर भी हो जाता है। किन्तु सौंदर्य (रूप-मदिरा) के नशे में ऐसी बातें नहीं होती। यह वह नशा है, जो चढ़कर फिर उतरना नहीं जानता।

झटकि चढ़ति उतरति अटा नैंकु न थाकति देह।
भई रहति नट कौ बटा अटकी नागर नेह ॥१९५॥

अन्वय—झटकि अटा चढ़ति उतरति, देह नैंकु न थाकति। नागर-नेह अटकी नट कौ बटा भई रहति।

झटकि = झपटकर। अटा = कोठा, अटारी। नैंकु = जरा। अटकी = फँसी हुई। नागर = चतुर। नेह = प्रेम। बटा = बट्टा।

झपाटे के साथ कोठे पर चढ़ती और उतरती है। (उसकी) देह (इस चढ़ने-उतरने में) जरा भी नहीं थकती। चतुर (नायक) के प्रेम में फँसी वह नट का बट्टा बनी रहती है—जिस प्रकार नट अपने गोल बट्टे को सदा उछालता और लोकता रहता है, उसी प्रकार वह भी ऊपर-नीचे आती-जाती रहती है।

लोभ लगे हरि-रूप के करी साँटि जुरि जाइ।
हौं इन बेंची बीच हीं लोइन बड़ी बलाइ ॥१९६॥

अन्वय—हरिरूप के लोभ लगे जुरि जाइ साँटि करी। इन बीचहीं हौं बेंची लोइन बड़ी बलाइ।

साँटि करी = सौदे की बातचीत कर डाली। जुरि जाई = मिलकर। हौं = मुझे। लोइन=लोचन, आँखें।

श्रीकृष्ण के रूप के लोभ में पड़ (उनकी आँखों से) मिलकर (मेरी आँखों ने) सट्टा-पट्टा किया—सौदे की बातचीत की। (और विना मुझसे पूछ-ताछ किये ही!) इन्होंने मुझे बीच ही में बेच डाला—ये आँखें बड़ी (बुरी) बला हैं!

नई लगनि कुल की सकुच बिकल भई अकुलाइ।
दुहूँ ओर ऐंची फिरति फिरकी लौं दिन जाइ॥१९७॥

अन्वय—नई लगनि कुल की सकुच अकुलाइ बिकल भई। दुहूँ ओर ऐंची फिरति दिन फिरकी लौं जाइ।

सकुच = संकोच, लाज। ऐंची फिरति = खिंची फिरती है। फिरकी = चकरी नामक काठ का एक खिलौना, जिसमें डोरी बाँधकर लड़के नचाते फिरते हैं। लौं = समान। दिन जाइ = दिन कटते हैं।

(प्रेम की) नई लगन (एक ओर) है और कुल की लाज (दूसरी ओर) है। (इन दोनों के बीच पड़कर) वह घबराकर व्याकुल हो गई है। (यों) दोनों ओर खिंची फिरती हुई (उस नायिका के) दिन चकरी के समान व्यतीत होते हैं।

इततैं उत उततैं इतैं छिनु न कहूँ ठहराति।
जक न परति चकरी भई फिरि आवति फिरि जाति॥१९८

अन्वय—इततैं उत उततैं इतैं छिनु कहूँ न ठहराति। जक न परति चकरी भई फिरि आवति फिरि जाति।

जक = कल, चैन। फिरि = पुनः। चकरी = एक खिलौना, फिरकी।

इधर-से-उधर और इधर-से-उधर (आती-जाती रहती है।)

एक क्षण भी कहीं नहीं ठहरती। (उसे) कल नहीं पड़ती। चकरी की तरह पुनः आती और पुनः जाती है।

तजी संक सकुचति न चित बोलति बाकु कुबाकु।
दिन-छिनदा छाकी रहति छुटतु न छिनु छबि छाकु ॥१९९॥

अन्वय—संक तजी चित सकुचति न, बाकु कुबाकु बोलति। दिन-छिनदा छाकी रहति छिनु छबि छाकु न छुटतु।

बाकु-कुबाकु = सुवाच्य-कुवाच्य, अंटसंट। छिनदा = रात। छाकी रहति = नशे में मस्त रहती है। छिनु = क्षण-भर के लिये। छबि = सौंदर्य। छाकु = नशा, मदिरा।

डर छोड़ दिया। चित्त में लजाती भी नहीं। अंटसंट बोलती है। दिन-रात नशे में चूर रहती है। एक क्षण भी सौंदर्य (रूप-मदिरा) का नशा नहीं उतरता।

ढरे ढार तेहीं ढरत दूजै ढार ढरैं न।
क्यौं हूँ आनन आन सौं नैना लागत नै न ॥२००॥

अन्वय—ढार ढरे तेहीं ढरत दूजै ढार न ढरैं। क्यौं हूँ आन सों आनन नैना नै न लागत।

ढार = ढालू जमीन। आनन = मुख। आन = दूसरा। नै = झुककर।

(जिस) ढार पर ढरे हैं उसी ओर ढरते हैं, दूसरी ढार पर नहीं ढरते—जिस ढालू जमीन की ओर लुढ़के हैं, उसी ओर लुढ़केंगे, दूसरी ओर नहीं। किसी भी प्रकार दूसरे के मुख से (मेरे) नयन झुककर नहीं लग सकते—दूसरे के मुख को नहीं देख सकते।

नोट—'प्रीतम' ने इसका उर्दू-अनुवाद यों किया है—

ढले ही ढाल को तजकर किसी साँचे नहीं ढलते।
ये नैना आन आनन पर किसी सूरत नहीं चलते ॥

तृतीय शतक

चकी जकी-सी ह्वै रही बूझैं बोलति नीठि।
कहूँ डीठि लागी लगी कै काहू की डीठि ॥२०१॥

अन्वय—चकी जकी-सी ह्वै रही बूझैं नीठि बोलति। कहूँ डीठि लागी कै काहू की डीठि लगी।

चकी = चकित, आश्चर्यित। जकी = स्तंभित, किंकर्त्तव्यविमूढ़। नीठि = कठिनता से मुश्किल से। कहूँ = कहीं, किसी जगह। कै = या। काहू = किसी की।

आश्चर्यित और स्तंभित सी हो रही है। पूछने पर भी मुश्किल से बोलती है। (मालूम होता है) इसकी नजर कहीं जा लगी है या किसी और ही की नजर इसे लग गई है—या तो यह स्वयं किसी के प्रेम के फंदे में फँसी है, या किसी ने इसे फँसा लिया है।

पिय कैं ध्यान गही गही रही वही ह्वै नारि।
आपु आपुही आरसी लखि रीझति रिझवारि ॥२०२॥

अन्वय—पिय कैं ध्यान गही गही नारि वही ह्वै रही। रिझवारि आपुही आपु आरसी लखि रीझति।

गही-गही = पकड़े-पकड़े। आरसी = आईना। आपु आपु ही = अपने आप। रिझवारि = मुग्धकारिणी।

प्रीतम के ध्यान में तल्लीन रहते-रहते नायिका वही हो रही—उसे स्वयं प्रीतम होने का भान हो गया। (अतएव) वह रिझाने-वाली आप ही आरसी देखती और अपने आपपर ही रीझती है—अपने आप को प्रीतम और अपने प्रतिबिम्ब को अपनी मूर्त्ति समझकर देखती और मुग्ध होती है।

ह्याँ ते ह्वाँ ह्वाँ ते इहाँ नेकौ धरति न धीर।
निसि दिन डाढ़ी-सी फिरति बाढ़ी-गाढ़ी पीर ॥२०३॥

अन्वय—ह्याँ ते ह्वाँ ह्वाँ ते इहाँ नेकौ धीर न धरति। गाढ़ी पीर बाढ़ी निसि दिन डाढ़ी-सी फिरति।

ह्याँ = यहाँ। ते = से। ह्वाँ = वहाँ। नेकौ = जरा भी। ढाढ़ी = एक गानेवाली जाति, जो सदा गाँवों में नाच-नाच कर बधाई गाया करती है; पँवरिया। डाढ़ी = दग्ध, जला हुआ। कहीं ढाढ़ी भी पाठ है।

यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ (आती-जाती रहती है)। जरा भी धैर्य नहीं धरती। कठिन पीड़ा बढ़ गई है (जिस कारण) रात दिन पँवरियों के समान (या जली हुई सी इतस्ततः) घूमती रहती है।

समरस समर सकोच बस बिवस न ठिकु ठहराइ।
फिरिफिरि उझकति फिरि दुरति दुरिदुरि उझकति जाइ २०४

अन्वय—समरस समर सकोच बस बिबस ठिकु न ठहराइ। फिरि फिरि उझकति फिरि दुरति दुरि दुरि उझकति जाइ।

समरस = समान रस, समान भाव। समर = स्मर = कामदेव। ठिकु ठहराइ = ठीक ठहरना, स्थिर रहना। उझकति = उचक-उचककर देखती है। दुरति = छिपती है।

समान भाव से कामदेव और लज्जा के वश में (पड़ी है) विवश होकर कहीं भी स्थिर नहीं रह सकती। बारबार उझक-उझककर देखती है, फिर छिप जाती है; और छिप-छिपकर उझकती जाती है—अपने आभूषणों को बजाती जाती है।

उरु उरझ्यौ चित-चोर सौं गुरु गुरुजन की लाज।
चढ़ैं हिंडोरे सैं हियैं कियैं बनै गृह काज ॥२०५॥

अन्वय—उर चितचोर सौं उरझ्यौ, गुरुजन की लाज गुरु। हिंडोरै चढ़ै हियैं सैं गृहकाज कियैं बनैं।

उर=हृदय। गुरु=भारी। गुरुजन=बड़े बूढ़े।

हृदय (तो) चितचोर से उलझा हुआ है, और गुरुजनों की लज्जा भी भारी है। (अतएव) हिंडोले पर चढ़े हृदय से—दुतरफा खिंचे हुए मन से—घर का काम करते ही बनता है।

सखी सिखावति मान-बिधि सैननि बरजति बाल।
हरुए कहि मो हीय मैं सदा बिहारीलाल ॥२०६॥

अन्वय—सखी मान बिधि सिखावति, बाल सैननि बरजति। हरुए कहि मो हीय मैं सदा बिहारीलाल।

मान-विधि=मान करने की रीति। हरुए=धीरे-धीरे।

सखी मान करने की रीति सिखलाती है, (तो) बाला (नायिका) इशारे से उसे मना करती है कि (ये मान की बातें) धीरे-धीरे कह (क्योंकि) मेरे मन में सदा बिहारीलाल वास करते हैं, (ऐसा न हो कि वे कहीं सुन लें और रूठ जायँ!)

नोट—इसी भाव का एक श्लोक 'अमरुक शतक' में यों है—

मुग्धे मुग्धतयैव नेतुमखिलः कालः किमारभ्यते।
मानं धत्स्व धृतिं दधान ऋजुतां दूरी कुरु प्रेयसि॥
सख्येवं प्रतिबोधिता प्रतिवचस्तामाह भीतानना।
नीचैः शंस हृदि स्थितोहि ननु मे प्राणेश्वरः श्रोष्यति॥

उर लीनै अति चटपटी सुनि मुरली धुनि धाइ।
हौं हुलसी निकसी सु तौ गयौ हूल-सी लाइ ॥२०७॥

अन्वय—उर अति चटपटी लीनै मुरली धुनि सुनि धाइ। हौं हुलसी निकसी सु तौ हूल-सी लाइ गयौ।

चटपटी = व्याकुलता । धाइ = दौड़कर । हौं=मैं । हुलसी = उल्लास से भरकर । सु तौ = सो तो, वह तो । गयौ = गया । हूल-सी लाइ = बरछी-सी चुभोकर ।

हृदय में अत्यंत व्याकुलता फैल गई । मुरली की ध्वनि सुनते ही दौड़कर (ज्योंही) मैं उमंग से भरी बाहर निकली कि वह (मेरे हृदय में) बरछी चुभोकर चल दिया ।

जौ तब होत दिखादिखो भई अमी इक आँकु ।
लगै तिरीछी डीठि अब ह्वै बीछी कौ डाँकु ॥२०८॥

अन्वय—तब दिखादिखी होत जौ इक आँकु अमी भई । तिरीछी डीठि अब बीछी कौ डाँकु ह्वै लगै ।

तब = उस समय । अमी = अमृत । इक आँकु = निश्चय । डीठि = नजर । ह्वै = होकर । डाँकु = डंक ।

उस समय देखादेखी होने पर जो निश्चय अमृत मालूम हुई थी (वही तुम्हारी) तिरछी नजर अब बिच्छू का डंक होकर लगती है—बिच्छू के डंक के समान व्याकुल करती है ।

लाल तुम्हारे रूप की कहौ रीति यह कौन ।
जासों लागैं पलकु दृग लागत पलक पलौ न ॥२०९॥

अन्वय—लाल तुम्हारे रूप की, कहौ यह कौन रीति । जा सों पलकु दृग लागैं पलौ पलकु न लागत ।

लाल = प्यारे, नायक, नन्दलाल श्रीकृष्ण । जासौं = जिससे । पलकु = पल + एकु = एक पल । पलौ = पल-भर के लिये भी ।

हे लाल ! तुम्हारे रूप की, बताओ, यह कौन-सी रीति है कि जिससे एक पल के लिये भी आँखें लग जाने पर—एक क्षण के

लिये भी जिसे देख लेने पर—फिर पल-भर के लिये भी पलक नहीं लगती—नींद नहीं पड़ती।

अपनी गरजनु बोलियतु कहा निहौरो तोहिं।
तूँ प्यारो मो जीय कौं मो ज्यौ प्यारो मोहिं ॥२१०॥

अन्वय—अपनी गरजनु बोलियतु तोहिं निहौरो कहा। तूँ मो जीय को प्यारो मो ज्यौ मोहिं प्यारो।

गरजनु = गरज से। निहौरो = उपकार, एहसान। मो = मेरे। जीय = प्राण। ज्यौ = जीव, प्राण। मोहिं = मुझे।

(मैं तुमसे) अपनी गरज से ही बोलती हूँ, इसमें तुम्हारे ऊपर मेरा कोई उपकार नहीं है, (क्योंकि) तुम मेरे प्राणों के प्यारे हो, और मेरे प्राण मुझे प्यारे हैं। (अतएव, अपने प्राणों की रक्षा के लिये ही मुझे बोलना पड़ता है।)

सुख सौं बीती सब निसा मनु सोए मिलि साथ।
मूका मेलि गहे सु छिनु हाथ न छोड़ै हाथ ॥२११॥

अन्वय—सब निसा सुख-सौं बीती मनु साथ मिलि सोए। मूका मेलि सु छिन गहे हाथ हाथ न छोड़ै।

सों = से। मनु = मानों। मिलि साथ = गाढ़ालिंगन में बद्ध। मूका मेलि = मुट्ठी बाँधकर। गहे = पकड़े।

सारी रात (स्वप्न में) सुख से बीती। मानों (नायक) साथ ही मिलकर सोया हो। (स्वप्न में ही) मुट्ठी बाँधकर जो एक क्षण के लिये पकड़ा, सो (अब नींद टूटने पर भी) हाथ को हाथ नहीं छोड़ता—(नायिका) अपने ही हाथ को प्रीतम का हाथ समझकर नहीं छोड़ती।

नोट—स्वप्न में नायिका अपने ही हाथों को पकड़े हुई प्रियतम के

आलिंगन का मजा लूट रही थी। इतने में उसकी नींद टूट गई। अब जगने पर मुट्ठी नहीं खुलती। दोनों हाथ परस्पर जकड़े हुए हैं! जाग्रत अवस्था में भी स्वप्न का भान हो रहा है।

देखौं जागत वैसियै साँकर लगी कपाट।
कित ह्वै आवतु जातु भजि को जानै किहि बाट ॥२१२॥

अन्वय—जागत देखौं वैसिये कपाट साँकर लगी। कित ह्वै आवतु केहिं बाट भजि जातु को जानै।

जागत = जगकर। साँकर = जंजीर। कपाट = किवाड़। कित ह्वै = किस ओर होकर, किधर से। भजि = भागना। बाट = रास्ता।

जगकर देखती हूँ तो किवाड़ में वैसे ही जंजीर लगी रहती है (जैसे रात को बंद करके सोई थी) किधर से आते हैं (और) किस रास्ते भाग जाते हैं (यह) कौन जाने?

नोट—यह स्वप्न दशा का वर्णन है। उस्ताद जौक ने लिखा है—

खुलता नहीं दिल बन्द ही रहता है हमेशा।
क्या जाने कि आ जाता है तू इसमें किधर से॥

गुड़ी उड़ी लखि लाल की अँगना अँगना माँह।
बौरी लौं दौरी फिरति छुअति छबीली छाँह ॥२१३॥

अन्वय—लाल की गुड़ी उड़ी लखि अँगना अँगना माँह बौरी लौं दौरी फिरति छबीली छाँह छुअति।

गुड़ी = गुड्डी, पतंग। अँगना = स्त्री। अँगना = आँगन। माँह = में। बौरी = पगली। लौं = समान। छबीली = सुन्दरी।

प्रीतम की गुड्डी उड़ती हुई देखकर (वह) स्त्री अपने आँगन में पगली-सी दौड़ती फिरती और (आँगन में पड़नेवाली उस गुड्डी की) छाया को वह सुन्दरी छूती फिरती है।

नोट—गुड्डी की छाया के स्पर्श में ही प्रीतम के अंगस्पर्श का आनन्दानुभव करती है; क्योंकि गुड्डी का सम्बंध प्रीतम के कर कमलों से है। इस दोहे पर कृष्ण कवि ने यों टीका जड़ी है—

नन्दलला नवनागरि पै निज रूप दिखाइ ठगोरी की नाईं।
बाहर जात बनै गृह ते न विलोकिबे को अति ही अकुलाई॥
प्यारे के चंग इते में उड़ी लखि मोद भरी निज आँगन आई।
होत गुड़ी की जितै जित छाँह तितै तित छूवै को डोलति धाई॥

उनकौ हितु उनहीं बनै कोऊ करौ अनेकु।
फिरतु काक-गोलकु भयौ दुहूँ देह ज्यौ एकु॥२१४॥

अन्वय—उनकौ हित उन ही बनै कोऊ अनेकु करै, दुहुँ देह एकु ज्यौ काक-गोलकु भयौ फिरतु।

हित = प्रीति। काग-गोलकु = कौए के नेत्रों के गड्ढे। ज्यौ = जीव, प्राण। दुहूँ = दोनों।

उनकी प्रीति उन्हीं से सधती है (इसलिये दोनों अभिन्न रहेंगे ही) कोई हजार (निंदा) क्यों न करे। दोनों की देह में एक ही प्राण कौए के (दोनों) गोलक (के एक ही नेत्र) की तरह संचरण करता है।

नोट—किंवदन्ती है कि कौए के दोनों गोलकों में एक ही नेत्र होता है, जो दोनों ओर आता-जाता रहता है। इसीलिये देखने के समय कौआ सिर को इधर-उधर घुमाता है।

करतु जातु जेती कटनि बढ़ि रस-सरिता-सोतु।
आल-बाल उर प्रेम-तरु तितौ तितौ दृढ़ होतु॥२१५॥

अन्वय—रस-सरिता-सोतु बढ़ि जेती कटनि करतु जातु। उर आलबाल प्रेमतरु तितौ तितौ दृढ़ होतु।

जेती = जितनी। कटनि = कटाव। सरिता = नदी। स्रोत = धारा। आलबाल = थाला, वृक्ष की जड़ के पास चारों ओर से बनी हुई मेंड़। उर = हृदय। तरु = वृक्ष। तितो तितौ = उतना ही, अधिकाधिक।

रस-रूपी नदी का स्रोत बढ़कर जितना ही कटाव करता जाता है, हृदय-रूपी थाले का प्रेम-रूपी वृक्ष (कटाव के कारण गिरने के बदले) उतना ही मजबूत होता जाता है।

खल बढ़ई बल करि थके कटै न कुबत-कुठार।
आलबाल उर झालरी खरी प्रेम-तरु-डार ॥२१६॥

अन्वय—खल-बढ़ई बल करि थके कुबत कुठार न कटै। प्रेम-तरु-डार उर आलबाल खरी झालरी।

खल = दुष्ट, निन्दक। कुबत = निंदा। कुठार = कुल्हाड़ी। झालरी = हरी-भरी, सुपल्लवित। खरी = विशेष।

दुष्ट-रूपी बढ़ई जोर लगाकर थक गये, (किन्तु) निन्दा-रूपी कुठार से न काट सके। (वह) प्रेम-रूपी वृक्ष की डाल हृदय-रूपी थाले में और भी हरी-भरी (हो रही) है।

छुटन न पैयतु छिनकु बसि प्रेम-नगर यह चाल।
मार्‍यौ फिरि फिरि मारियै खूनी फिरै खुस्याल ॥२१७॥

अन्वय—छिनकु बसि छुटन न पैयतु प्रेम-नगर यह चाल। मार्‍यौ फिरि फिरि मारियै खूनी खुस्याल फिरै।

छुटन न पैयतु = छुटकारा नहीं पा सकते। छिनुक = क्षण+एकु = एक क्षण। खुस्याल = खुशहाल, आनन्दयुक्त। खूनी = हत्यारा।

एक क्षण के लिये भी बसकर फिर छुटकारा नहीं पा सकते। प्रेम-नगर की यही चाल है। (यहाँ) मरे हुए को बार-बार मारा जाता है, और हत्या करनेवाला स्वच्छन्द घूमता है।

निरदय नेहु नयौ निरखि भयौ जगतु भयभीतु।
यह न कहूँ अब लौं सुनी मरि मारियै जु मीतु ॥२१८॥

अन्वय—नयौ निरदय नेहु निरखि जगत भयभीतु भयौ। यह अब लौं कहूँ न सुनी जु मीत मरि मारियै।

निरदय=निर्दय, दयाहीन, निष्ठुर। निरखि=देखकर। लौं=तक। जु=जो। मीत=प्रेमी।

(तुम्हारे इस) नये प्रकार के निष्ठुर प्रेम को देखकर संसार भयभीत हो गया है। यह बात तो अब तक कहीं न सुनी थी कि जो प्रेमी हो वह (स्वयं भी) मरे (और अपनी प्रेमिका को भी) मारे—आप भी विरह की आग में जले और अपनी प्रेमिका को भी जलावे।

क्यौं बसियै क्यौं निबहियै नीति नेह-पुर नाँहि।
लगा-लगी लोइन करैं नाहक मन बँधि जाँहि ॥२१९॥

अन्वय—क्यौं बसियै क्यौं निबहियै नेह-पुर नीति नाँहि। लगालगी करैं लोइन, मन नाहक बँधि जाँहि।

नीति=न्याय। नेह-पुर=प्रेम-नगर। लगालगी=लाग-डाँट, मुठ-भेड़। लोइन=आँखें। नाहक=बेकसूर, निरपराध।

कैसे बसा जाय और (बसने पर) कैसे निर्वाह हो। (इस) प्रेम-नगर में न्याय तो है ही नहीं। (देखो) परस्पर लड़ती-झगड़ती तो हैं आँखें, और बेकसूर मन कैद किया जाता है!

देह लग्यौ ढिग गेहपति तऊ नेह निरबाहि।
नीची अँखियनु ही इतै गई कनखियनु चाहि ॥२२०॥

अन्वय—देह लग्यौ ढिग गेहपति तऊ नेहु निरबाहि। नीची अँखियनु ही इतै कनखियनु चाहि गई।

देह लग्यौ = देह से सटा हुआ। ढिग = निकट। गेहपति = गृहपति= स्वामी। तऊ = तो भी। नेहु = प्रेम। नीची अँखियन = नीची आँखों से = नीची निगाह से। चाहि = देखना।

देह से सटा हुआ निकट ही उसका पति था, तोभी (वह) प्रेम निबाहकर नीची निगाह से ही इधर कनखियों से देख गई।

हौं हिय रहित हई छई नई जुगुति जग जोइ।
आँखिन आँखि लगै खरी देह दूबरी होइ ॥२२१॥

अन्वय—जग नई जुगुति जोइ हौं हिय हई छई रहति। आँखिन लगै आँखि, खरी दूबरी होइ देह।

हौं = मैं। हई = आश्चर्य। छई = छाई हुई। जुगुति = युक्ति। जोइ = देखकर। आँखिन = आँखों से। खरी = अत्यन्त।

संसार में यह नई युक्ति देखकर मैं तो हृदय में आश्चर्य से छाई रहती हूँ—मेरा हृदय आश्चर्य में डूबा रहता रहता है। आँखों से लगती हैं आँखें, और अत्यन्त दुबली होती है देह।

प्रेमु अडोलु डुलै नहीं मुँह बोलैं अनखाइ।
चित उनकी मूरति बसी चितवनि माँहिं लखाइ ॥२२२॥

अन्वय—प्रेमु अडोलु डुलै नहीं मुँह अनखाइ बोलै। चित उनकी मूरति बसी चितवनि माँहि लखाइ।

अडोलु = दृढ़, अटल। अनखाइ = अनखाकर, झुँझलाकर। चितवनि = आँख, नजर। लखाइ = देख पड़ती है।

प्रेम स्थिर है, वह हिलने-डुलने का नहीं—समझाने बुझाने से छूटने का नहीं। (प्रेम छोड़ती नहीं, उलटे) मुँह से अनखाकर बोलती है। (उसके) चित्त में उनकी—नायक की—मूर्ति बसी है (जो) उसकी आँखों में (स्पष्ट) दीख पड़ती है—उसकी प्रेम-

रंजित आँखों के देखते ही प्रकट हो जाता है कि वह किसी के प्रेम में फँसी है।

चितु तरसतु न मिलतु बनत बसि परोस कैं बास।
छाती फाटी जाति सुनि टाटी ओट उसास ॥२२३॥

अन्वय—चित तरसतु परोस कैं बास बसि मिलतु न बनत। टाटी ओट उसास सुनि छाती फाटी जाति।

उसास = उच्छ्वास, जोर-जोर से साँस लेना।

(मिलने के लिये) चित्त तरसता है (किन्तु) पड़ोस के घर में रहकर—अत्यन्त निकट रहकर—भी मिलते नहीं बनता। टाटी की ओट से ही उसका (विरह-जनित) उच्छ्वास सुनकर छाती फटी जाती है।

जाल-रंध्र-मग अँगनु कौ कछु उजास सौ पाइ।
पीठि दिऐ जगत्यौं रह्यौ डीठि झरोखे लाइ ॥२२४॥

अन्वय—जाल-रंध्र-मग अँगनु कौ कछु उजास सौ पाइ। जग त्यौं पीठि दिऐ डीठि झरोखे लाइ रह्यौ।

जाल-रंध्र = जाली के छेद। मग = राह। उजास = उजाला। पाइ = पाकर। जग त्यों = संसार की ओर। पीठि दिये रहै = (संसार से) विमुख या उदासीन रहता है।

(झरोखे से लगी) जाली के छेदों के रास्ते से आग का कुछ उजेला-सा पाकर—जाली के छेदों से बाहर फूट निकलनेवाली तुम्हारी देह-द्युति को देखकर—(उस नायक ने) संसार की ओर पीठ दे दी है—संसार को भुला दिया है (और) सदा अपनी नजर (तुम्हारे) झरोखे से लगाये रहता है।

जद्यपि सुन्दर सुघर पुनि सगुनौ दीपक-देह।
तऊ प्रकास करै तितैं भरियै जितैं सनेह ॥२२५॥

अन्वय—जद्यपि दीपक देह सुन्दर सुघर पुनि सगुनौ तऊ तितैं प्रकास करै जितैं सनेह भरियै।

सुघर = सुघड़, अच्छी गढ़न का। सगुनौ=गुणयुक्त और (गुण = डोरा) बत्ती-सहित। तऊ = तोभी। तितैं = उतना। जितैं = जितना। सनेह = प्रेम, तेल।

यद्यपि दीपक-रूपी शरीर सुन्दर है, सुघड़ है, और फिर गुण-युक्त है (दीपक-अर्थ में—बत्ती सहित है), तोभी वह उतना ही प्रकाश करेगा, जितना उसमें प्रेम भरोगे (दीपक-अर्थ में—तेल भरोगे।)

दुचितैं चित न हलति चलति हँसति न झुकति बिचारि।
लिखत चित्र पिउ लखि चितै रही चित्र-लौं नारि ॥२२६॥

अन्वय—पिउ चित्र लिखत लखि नारि चित्र-लौं चितै रही। बिचारि दुचित न चलति-हलति न हँसति-झुकति।

दुचितैं चित = दुविधा में पड़े चित्त। हलति = हिलना-डोलना। बिचारि = विचार कर। चितै = देख रही है।

प्रीतम को किसी स्त्री का चित्र बनाते हुए देखकर वह स्त्री तसवीर-सी (अचल-अटल) होकर (प्रीतम के पीछे चुपचाप खड़ी) देख रही है। सोचती है, यह मेरा चित्र बन रहा है, या किसी अन्य स्त्री का। इस दुविधा में पड़ने से वह न आगे बढ़ती है, न हिलती-डोलती है, न हँसती है, और न झुकती ही है।

नैन लगे तिहिं लगनि जन छुटैं छुटै हूँ प्रान।
काम न आवत एक हूँ तेरे सौक सयान ॥२२७॥

अन्वय—नैन तिहि लगन जु लगे प्रान छुटैं हूँ छुटैं। तेरे सौक सयान एकहूँ काम न आवत।

सौक = सौं + एक = अनेक। सयान = चतुराई

आँखें ऐसे (बुरे) लग्न में उनसे लगी हैं कि प्राण छूटने पर भी नहीं छूट सकतीं—(हे सखि !) तुम्हारी सैकड़ों चतुराई में एक भी काम नहीं आती—एक भी सफल नहीं होती।

साजे मोहन-मोह कौं मोहीं करत कुचैन।
कहा करौं उलटे परे टोने लोने नैन ॥२२८॥

अन्वय—साजे मोहन मोह कौं, मोहीं कुचैन करत। कहा करौं लोने नैन टोने उलटे परे।

मोहन = श्रीकृष्ण। मोहीं = मुझे ही। कुचैन = व्याकुल। टोने = जादू। लोने = लावण्यमय, सुन्दर।

(मैंने इन्हें काजल आदि से) सजाया तो मोहन को मोहने के लिये, और मुझे ही व्याकुल बनाती हैं। क्या करूँ, इन लावण्य मयी आँखों के टोने उलटे पड़ गये।

नोट—कहा जाता है कि जादू उलट जाने पर जादू चलानेवाले पर ही विपत्ति आती है। इस दोहे में यही बात खूबी से कही गई है। इस दोहे से बिहारी की तंत्रशास्त्र की जानकारी प्रकट होती है।

अलि इन लोइन-सरनु कौ खरौ विषम संचारु।
लगै लगाएँ एक-से दुहुअनि करत सुमार ॥२२९॥

अन्वय—अलि इन लोइन-सरनि को संचार खरौ विषम दुहुअनि सु मार करत लगैं लगाऐं एक-से।

अलि = सखि। लोइन = आँख। सरनि = बाणों। खरो = अत्यन्त।

विषम = अद्भुत । संचार = गति । अनी = वाण की नोक । सु मार = अच्छी मार, गहरी चोट ।

सखी ! इन नेत्र-रूपी वाणों की गति अत्यन्त अद्भुत है । (इनकी) दोनों ओर की नोकें चोट करती हैं—(आगे की निशान मारनेवाली नोक और धनुष की डोर से सटाकर चलानेवाली पीछे की नोक—दोनों शिकार करती हैं) । (अतएव) इनका लगना और लगाना—नेत्र-रूपी वाण चलाकर किसीको घायल करना और किसी के नेत्र-रूपी वाण से घायल होना—(दोनों) एक से (दुःखदायी) हैं ।

चख-रुचि चूरन डारि कै ठग लगाइ निज साथु ।
रह्यौ राखि हठि लै गयौ हथाहथी मन हाथु ॥२३०॥

अन्वय—चख-रुचि चूरन डारि कै ठग निज साथु लगाइ । हठि राखि रह्यौ हथाहथी मन हाथु लै गयौ ।

चखरुचि = आँखों की सुन्दरता । चूरन = बुकनी, भभूत । हथाहथी = हाथोंहाथ, अति शीघ्र ।

आँखों की सुन्दरता-रूपी भभूत डालकर उस ठग (नायक) ने उसे अपने साथ लगा लिया, यद्यपि (मैं) हठ करती ही रह गई—रोकती ही रह गई—(किन्तु) वह हाथोंहाथ मेरे मन को हाथ (वश) में करके चलता बना ।

नोट—ठग लोग मन्त्र-पढ़ी भभूत रखते हैं, जिसपर वह भभूत डालते हैं, वह उनके पीछे लग जाता है । इस दोहे में इसीका रूपक बाँधा गया है ।

जौ लौं लखौं न कुल कथा तौलौं ठिक ठहराइ ।
देखैं आवत देखिही क्यौं हूँ रह्यौ न जाइ ॥२३१॥

अन्वय—जौ लौं न लखौं तौ लौं कुल-कथा ठिक ठहराइ। देखैं आवत देखिहौ क्यौं हूँ न रह्यौ जाइ।

लौं = तक। लखौं = देखूँ। कुल कथा = कुल की कथा, सतीत्व आदि की बातें। देखहौ = देखिने से ही। क्यौं हूँ = किसी प्रकार।

जब तक (उन्हें) नहीं देखती हूँ, तभी तक कुल की कथा ठीक ठहरती है—अच्छी जँचती है (किन्तु जब) वे देखने में आते हैं—वे दिखलाई पड़ते हैं (तब) देखे बिना किसी प्रकार नहीं रहा जाता—बरबस उन्हें देखना ही पड़ता है।

बन तन कौं निकसत लसत हँसत हँसत इत आइ।
दृग-खंजन गहि लै चल्यौ चितवनि-चैंपु लगाइ ॥२३२॥

अन्वय—बन तन कौं निकसत लसत हँसत-हँसत इत आइ। चितवनि चैंपु लगाइ दृग-खंजन गहि लै चल्यौ।

वन-तन = बन की ओर। इत = इधर। दृग = आँख। चितवनि = नजर, दृष्टि। चैंपु = लासा, गोद।

वन की ओर निकलते समय सुशोभित हो (बन-ठन) कर हँसते-हँसते इधर आये और दृष्टि-रूपी लासा लगा (मेरी) आँख-रूपी खंजन को पकड़कर ले चले!

चितु-बितु बचतु न हरत हठि लालन-दृग बरजोर।
सावधान के बटपरा ए जागत के चोर ॥२३३॥

अन्वय—चितु-बितु न बचतु हठि हरत लालन-दृग बरजोर। ए सावधान के बटपरा जागत के चोर।

चितु = मन। बितु = धन। लालन = कृष्ण। दृग = आँखें। बरजोर = जबर्दस्त। बटपरा = बटमार, राहजन, ठग।

मन-रूपी धन नहीं बचता। हठ करके (वे) छीन लेते हैं।

कृष्ण के नेत्र बड़े जबर्दस्त हैं। ये चौकन्ने आदमी के लिये तो (भूल-भुलैया में डालकर लूटनेवाले) ठग हैं, और जगे हुए के लिये (लुक-छिपकर चुरानेवाले) चोर हैं।

नोट—जो चौकन्ने हैं वे नहीं ठगे जा सकते, और जो जगे हैं उनके घर में चोरी नहीं हो सकती। किन्तु नेत्र ऐसे जबर्दस्त हैं कि चौकन्ने को ठगते और जगे हुए (के माल) को चुराते हैं। कितनी अच्छी कल्पना है।

सुरति न ताल रु तान की उठ्यौ न सुरु ठहराइ।
एरी रागु बिगारि गौ बैरी बोलु सुनाइ ॥२३४॥

अन्वय—ताल रु तान की सुरति न उठ्यो सुरु न ठहराइ। एरी बैरी बोलु सुनाइ रागु बिगारि गौ।

सुरति = सुधि। बिगारि गौ = बिगाड़ गया।

ताल और तान की सुधि नहीं रही। उठाया हुआ सुर भी नहीं ठहरता। अरी (सखी)! वह वैरी (नायक) बोली सुना कर (सारा) राग बिगाड़ गया।

नोट—नायिका गा रही थी। उसी समय उस ओर से नायक गुजरा और कुछ बोलकर चला गया। उसी पर नायिका का यह कथन है।

ये काँटे मो पाँइ गड़ि लीन्ही मरत जिवाइ।
प्रीति जतावतु भीत सौं मीतु जु काढ्यौ आइ ॥२३५॥

अन्वय—ये काँटे मो पाँइ गड़ि मरत जिवाइ लीन्ही। जु प्रीति जतावतु भीति सौं मीतु आइ काढ्यौ।

मों = मेरे। जतावतु = प्रकट करते हुए।

अरे काँटे! (तूने) मेरे पैर में गड़कर (मुझे) मरने से जिला लिया, (क्योंकि) प्रीति प्रकट करते हुए डरते-डरते प्रीतम ने उसे (तुझे) आकर निकाला।

नोट—'प्रीतम' ने इसका उर्दू-अनुवाद यों किया है—

मेरे इस खार-पा ने मुझको मरने से बचाया है।
वो गुलरू खींचने को अज रहे शफकत जो आया है ॥

जात सयान अयान ह्वै वे ठग काहि ठगैं न।
को ललचाइ न लाल के लखि ललचौंहैं नैन ॥२३६॥

अन्वय—सयान अयान ह्वै जात वे ठग काहि न ठगै। लाल के ललचौंहैं नैन लखि को न ललचाइ।

ह्वै जात = हो जाता है, बन जाता है। सयान=चतुर। अयान = अजान, अज्ञान, मूर्ख। काहि = किसे। ललचौंहैं = ललचानेवाले।

चतुर भी मूर्ख बन जाते हैं वे ठग किसे नहीं ठगते? श्रीकृष्ण के (उन) लुभावने नेत्रों को देखकर कौन नहीं ललचता?

जसु अपजसु देखत नहीं देखत साँवल गात।
कहा करौं लालच-भरे चपल नैन चलि जात ॥२३७॥

अन्वय—जसु अपजसु नहीं देखत, देखत साँवल गात। कहा करौं लालच-भरे चपल नैन चलि जात।

साँवल = श्यामल। कहा = क्या। चपल=चंचल।

यश-अपयश (कुछ) नहीं देखते—किस काम के करने से यश होगा और किस काम के करने से अपयश, यह नहीं विचारते; देखते हैं (केवल श्रीकृष्ण का) साँवला शरीर। क्या करूँ, लालच से भरे (मेरे) चंचल नयन (बरबस उनके पास) चले जाते है।

नख-सिख-रूप भरे खरे तौ माँगत मुसकानि।
तजत न लोचन लालची ए ललचौंहीं बानि ॥२३८॥

अन्वय—नखसिख रूप खरे भरे तौ मुसकानि माँगत। लालची लोचन ए ललचौंही बानि न तजत।

नख-सिख = नख से शिखा तक, एँड़ी से चोटी तक, समूचा शरीर। खरे = अत्यन्त, पूर्ण रूप से। ललचौंहीं बानि = ललचाने की आदत।

(श्रीकृष्ण के) नखशिख सौंदर्य से मेरे नेत्र पूर्ण रूप से भरे हैं, तो भी मुसकुराहट माँगते हैं—श्रीकृष्ण के सम्पूर्ण शरीर की अपार शोभा देखकर भी तृप्त नहीं होते, उनकी मुसकुराहट देखना चाहते हैं। (मेरे) लालची नेत्र (अपनी) यह ललचने की आदत छोड़ते ही नहीं।

छ्वै छिगुनी पहुँचौ गिलत अति दीनता दिखाइ।
बलि बावन की ब्यौंतु सुनि को बलि तुम्हैं पत्याइ ॥२३६॥

अन्वय—अति दीनता दिखाइ छिगुनी छ्वै पहुँचौ गिलत। बलि बावन की ब्यौंतु सुनि बलि तुम्हैं को पत्याइ।

छ्वै = छूकर। छिगुनी = कनिष्ठा अँगुली। गिलत = पकड़ लेना। बलि = पाताल के दैत्यराज। ब्यौंतु = छलमय ढंग। बलि = बलैया। पत्याइ = प्रतीति करे, विश्वास करे।

अत्यन्त दीनता दिखाकर छिगुनी छूते ही पहुँचा पकड़ लेते हो। किन्तु बलि और बावन की कहानी सुनकर, बलैया, तुम्हें कौन पतिआय—तुम्हारा विश्वास कौन करे?

नोट—राधिका से कृष्ण कोई मामूली चीज माँग रहे हैं। राधिका झिड़कती है—नहीं, ऐसा होने का नहीं, यह देते ही तुम दूसरी चीज माँगने लगोगे; यों होते-होते मेरे सारे शरीर पर ही कब्जा कर लोगे; बलि से भी तुमने महज तीन डेग जमीन माँगी थी, और उसका सर्वस्व ही हर लिया;

अँगुली पकड़कर पहुँचा पकड़ना तो तुम्हारी आदत ही है; अतएव, हटो, दूर हो।

नैना नैंकु न मान ही कितौ कह्यौ समुझाइ।
तन मन हारैं हूँ हँसैं तिन सौं कहा बसाइ ॥२४०॥

अन्वय—नैना नैंकु न मानहीं कितौ समुझाइ कह्यौ। तन मन हारैंहूँ हँसैं, तिनसौं कहा बसाइ।

नैंकु = जरा। कितौ = कितना भी। कह्यौ = कहा। हारैं हूँ = हारने पर भी। तिनसौं = उससे। कहा बसाइ = क्या बस चले।

नेत्र जरा भी (मेरी बात) नहीं मानते, कितना भी समझा कर कहा। (भला) जो तन-मन हारकर भी हँसता ही रहे, उसपर (किसका) कौन बस ?—जो सर्वस्व गँवाकर भी हँसता ही रहे, उसको कौन सिखा-पढ़ा सकता है ?

लटकि लटकि लटकतु चलतु डटतु मुकुट की छाँह।
चटक भर्‍यौ नटु मिलि गयौ अटक-भटक बट माँह २४१

अन्वय—लटकि लटकि लटकतु चलतु मुकुट की छाँह डटतु। चटक भर्‍यौ नटु अटक-भटक बट माँह मिलि गयौ।

लटकि लटकि लटकतु चलतु = झूमते हुए (इठलाता) चलता है। डटतु = देखता है। चटक भर्‍यौ = चटकीला, रँगीला। बट = बाट, रास्ता। माँह = में।

झूमते-झामते हुए चलता है, चलते हुए अपने मुकुट की परिछाहीं देखता है। वह चटकीला नट (श्रीकृष्ण), अटकते-भटकते हुए, रास्ते में (मुझसे अकस्मात्) मिल गया।

फिरि फिरि बूझति कहि कहा कह्यौ साँवरे-गात।
कहा करत देखे कहाँ अली चली क्यौं बात ॥२४२॥

अन्वय—फिरि फिर बूझत कहि साँवरे गात कहा कह्यौ। कहा करत कहाँ देखे अली क्यौं बात चली।

कहि=कहो। कहा=क्या। अली=सखी। साँवरे गात=श्याम, श्रीकृष्ण।

बार-बार पूछती है कि कहो, उस साँवले शरीर वाले ने (तुमसे) क्या कहा? क्या करते हुए कहाँ (तुमने उन्हें) देखा? और, सखी! (मेरी) बात कैसे-कैसे चली—किस प्रकार मेरी चर्चा छिड़ी?

तो हीं निरमोही लग्यौ मो ही इहैं सुभाउ।
अनआएँ आवै नहीं आएँ आवतु आउ ॥२४३॥

अन्वय—तौ हीं निरमोही मो ही इहै सुभाउ लग्यौ। अनआएँ आवै नहीं आएँ आवतु आउ।

हो=हृदय, मन। अनआएँ=विना आये।

तुम्हारा मन निठुर है (उसकी संगति से) मेरे मन का भी यही स्वभाव हो गया है—वह भी निठुर हो गया है। (इसलिये) विना (तुम्हारे) आये (मेरा मन मेरे पास) आता ही नहीं, (तुम्हारे) आने से आता है (अतएव, तुम) आओ।

नोट—प्रीतम को बुलाने के लिये कैसा अच्छा तर्क है! वाह!!

दुखहाइनु चरचा नहीं आनन आनन आन।
लगी फिरैं ढूका दिए कानन कानन कान ॥२४४॥

अन्वय—दुखहाइनु आनन आनन चरचा नहीं आन। कानन कानन कान दिए ढूका लगी फिरैं।

दुखहाइनु=दुःख देनेवाली। आनन=मुख। आनन=अन्य लोगों की। आन=शपथ। ढूका लगी=ढुका लगाकर, छिपकर। कानन=वन।

(इन) दुःख देनेवालियों के मुख में दूसरों की चर्चा नहीं रहती—(मैं यह बात) शपथ (खाकर कह सकती हूँ)। वन-वन में कान दिये ये ढूका लगी फिरती हैं—विहार-स्थलों के निकट छिपकर हम दोनों की गुप्त बातें सुनने के लिये कान लगाये रहती हैं।

बहके सब जिय की कहत ठौरु कुठौरु लखैं न।
छिन औरै छिन और से ए छबि छाके नैन ॥२४५॥

अन्वय—बहके जिय की सब कहत, ठौरु-कुठौरु न लखैं। छबि छाके ए नैन छिन औरै छिन और से।

छबि छाके = शोभा-रूपी नशा पिये।

बहककर जी की सारी (बातें) कह देते हैं। ठौर-कुठौर-मौका-बेमौका—कुछ नहीं देखते। सौंदर्य के नशे में मस्त ये नेत्र क्षण में कुछ और हैं, और (दूसरे) क्षण में कुछ और ही से हैं—प्रति क्षण बदलते रहते हैं।

नोट—नशे में आदमी को बोलने-बतराने का शऊर नहीं रहता। प्रत्येक क्षण उसकी बुद्धि बदलती रहती है। 'मतवाले की बहक' प्रसिद्ध है।

कहत सबै कबि कमल-से मो मति नैन पखानु।
नतरुक कत इन बिय लगत उपजतु बिरह-कृसानु ॥२४६॥

अन्वय—सबै कबि कमल से कहत, मो मति नैन पखानु। नतरुक इन बिय लगत बिरह कृसानु कत उपजतु।

मो = मेरे। पखानु = पत्थर। नतरुक = नहीं तो। बिय = दो। कृसानु = आग।

सभी कवि (नेत्रों को) कमल के समान कहते हैं, (किन्तु) मेरे मत से ये (नेत्र) पत्थर (के समान) हैं। नहीं तो इनके—

दो के—लगने से (एक दूसरे की आँखों के परस्पर टकराने से) विरहरूपी आग कैसे पैदा होती ?

नोट—पत्थर के परस्पर टकराने से आग पैदा होती है।

लाज-लगाम न मानही नैना मो बस नाहिं।
ए मुँहजोर तुरंग ज्यौं ऐचत हूँ चलि जाहिं ॥२४७॥

अन्वय—लाज-लगाम न मानही नैना मो बस नाहिं। ए मुँहजोर तुरंग ज्यौं ऐचत हूँ चलि जाहिं।

मो=मेरे। मुँहजोर=शोख, निरंकुश, लगाम की धाक न मानने-वाला। तुरंग=घोड़ा। ज्यौं=समान। ऐंचतहूँ=खींचते रहने पर भी।

लाज-रूपी लगाम को नहीं मानते। नेत्र मेरे वश के नहीं हैं। ये मुँहजोर घोड़े की तरह (लगाम) खींचते रहने पर भी (बढ़ते ही) चले जाते हैं।

इन दुखिया अँखियानु कौं सुखु सिरज्यौई नाहिं।
देखैं बनैं न देखतै अनदेखैं अकुलाहिं ॥२४८॥

अन्वय—इन दुखिया अँखियानु कौं सुखु सिरज्यौई नाहिं। देखैं न देखतै बनैं, अन देखैं अकुलाहिं।

सिरज्यौई नाहिं=सृष्टि ही नहीं हुई, बनाया ही न गया। देखते=देखते हुए, देखने के समय।

इन दुखिया आँखों के लिये सुख की सृष्टि ही नहीं हुई। (अपने प्रीतम को) देखते समय (तो इनसे) देखा नहीं जाता—प्रेमानन्द से इनमें आँसू डबडबा आते हैं, फलतः देख नहीं पातीं—(और उन्हें) बिना देखे व्याकुल-सी रहती है।

नोट—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की इसपर एक कुंडलिया यों है—

बिन देखे अकुलाहिं, बावरी ह्वै ह्वै रोवैं।
उघरी उघरी फिरी, लाज तजि सब सुख खोवैं॥
देखे श्रीहरिचन्द नयन भरि लखैं न सखियाँ।
कठिन प्रेम गति रहत सदा दुखिया ये अँखियाँ॥

लरिका लेबै कैं मिसनु लंगर मो ढिग आइ।
गयौ अचानक आँगुरी छाती छैलु छुवाइ॥२४९॥

अन्वय--लरिका लैवे कैं मिसनु लंगर मो ढिग आइ। छैलु छाती अचानक आँगुरी छुवाइ गयौ।

मिसनु=बहाने से। लंगर=ढीठ। ढिग=निकट। अचानक=अकस्मात्। छाती=स्तन। छैलु=रँगरसिया नायक।

(मेरी गोद के) बच्चे को लेने के बहाने वह ढीठ मेरे निकट आया (और बच्चे को लेते समय) वह छबीला मेरी छाती में अकस्मात् अँगुली छुला गया।

नोट—इस दोहे में बिहारी ने प्रेमी और प्रेमिका के हार्दिक भावों की तस्वीर-सी खींच दी है। विदग्ध रसिक ही इस दोहे के मर्म को समझ सकते हैं।

डगकु डगति-सी चलि ठठुकि चितई चली सँभारि।
लिए जाति चितु चोरटी वहै गोरटी नारि॥२५०॥

अन्वय--डगकु डगति-सी चलि ठठुकि चितई सँभारि चली वहै चोरटी गोरटी नारि चित लिये जाति।

डगकु=डग एकु=एक डेग। डगति-सी=डगती हुई-सी, डगमगाती हुई-सी। चितई=देखकर। चोरटी=चोट्टी, चुरानेवाली। गोरटी=गोरी।

एक डेग डगमगाती हुई-सी चलकर ठिठक गई—ठिठककर खड़ी हो गई। (फिर मुझे) देख अपने को सँभालकर चलती

बनी। वही चोटी गोरी स्त्री (अपने इन प्रेम-पूर्ण भावों को दिखा कर) चित्त (चुराये) लिये जाती है।

चिलक चिकनई चटक सौं फलति सटक लौं आइ।
नारि सलोनी साँवरी नागिन लौं डँसि जाइ ॥२५१॥

अन्वय--चिलक चिकनई चटक सौं सटक लौं लफति आइ। साँवरी सलोनी नारि नागिन लौं डँसि जाइ।

चिलक = चमक। चिकनई = चिकनाहट। चटक=चटकीलापन। सौं = सहित। सटक = बेंत वा बाँस की मुलायम छड़ी। सलोनी=लावण्य-युक्त। लौं = समान।

चमचमाहट, चिकनाहट और चटकीलेपन सहित बेंत की छड़ी-सी लचकती हुई (मेरे पास) आकर वह साँवले शरीर वाली लावण्यवती नायिका (मुझे) नागिन के समान डँस जाती है।

रह्यौ मोहु मिलनौ रह्यौ यौं कहि गहैं मरोर।
उत दै सखिहिं उराहनौ इत चितई मो ओर ॥२५२॥

अन्वय--मोहु रह्यौ मिलन रह्यौ यौं कहि मरोर गहैं। उत सखिहिं उराहनौ दै इत मो ओर चितई।

गहैं मरोर = मुड़ गई। उत = उधर। इत = इधर। चितई=देखा।

"प्रेम भी गया और मिलना भी गया"—ऐसा कहकर वह मुड़-सी गई—अपना मुँह फेर-सा लिया। और (इस प्रकार) उधर सखी से उलहना देकर (पुनः) इधर मेरी ओर (कटाक्ष करते हुए) देखा।

नहिं नचाइ चितवति दृगनु नहिं बोलति मुसुकाइ।
ज्यौं ज्यौं रूखी रुख करति त्यौं त्यौं चितु चिकनाइ ॥२५३॥

अन्वय—दृगनु नचाइ नहि चितवति, मुसुकाइ बोलति नहिं, ज्यौं ज्यौं रुख रूखी करति त्यौं त्यौं चित चिकनाइ।

दृगनु = आँखें। रुखी = उदासीन, शुष्क। रुख = चेहरा, भाव।

आँखों को नचाकर नहीं देखती—आँखों से भावभंगी नहीं करती, और मुस्कुराकर बोलती भी नहीं। किन्तु इस प्रकार ज्यों-ज्यों वह अपना रुख रूखा करती है—ज्यो-ज्यों वह रुखाई प्रकट करती है--त्यों-त्यों (मेरा) चित्त चिकनाता ही है—प्रेम से स्निग्ध ही होता है।

नोट—प्रेमिका के क्रोध से प्रेमी असन्तुष्ट नहीं। रुखाई से चित्त के रुखड़े होने की जगह चिकना होना कवि की वर्णन-चातुरी प्रकट करता है।

सहित सनेह सकोच सुख स्वेद कंप मुसकानि।
प्रान पानि करि आपनैं पान धरे मो पानि ॥२५४॥

अन्वय--सनेह सकोच सुख स्वेद कंप मुसकानि सहित प्रान आपनैं पानि करि, मो पानि पान धरे।

स्वेद = पसीना। कंप = काँपना। पानि करि = हाथ में करके। पान = बीड़ा। मो = मेरे। पानि = हाथ।

प्रेम, संकोच, सुख, पसीना, कंपन और मुस्कुराहट सहित—(प्रेम में पगी, लाज में गड़ी, सुख में सनी, पसीने से भिगी, काँपती और मुस्कुराती हुई) मेरे प्राण को अपने हाथ (वश) में करके (उस नायिका ने) मेरे हाथ में पान (का बीड़ा) रक्खा।

चितवनि भोरे भाइ की गोरैं मुँह मुसकानि।
लागति लटकि अली गरैं चित खटकति नित आनि २५५

अन्वय—भोरे भाइ की चितवनि, गोरैं मुँह मुसकानि, लटकि अली गरैं लागति, चित नित आनि खटकति।

चितवनि = देखना। भाह = भाव। नित = नित्य। आनि = आकर।

भोलेभाले भाव से देखना, गोरे-गोरे मुख से मुस्कुराना और लचक-लचककर सखी के गले से लग जाना—(उस नवयुवती की ये सारी चेष्टाएँ) मेरे चित्त में नित्य आकर खटकती हैं।

छिनु-छिनु मैं खटकति सु हिय खरी भीर मैं जात।
कहि जु चली अनहीं चितै ओठन ही बिच बात ॥२५६॥

अन्वय—खरी भीर मैं जात जु अनही चितै ओठन ही बिच बात कहि चली सुहिय छिनु-छिनु मैं खटकति।

खरी = अत्यन्त। अनही चितै = बिना देखे ही।

भारी भीड़ में जाते हुए उसका मेरी ओर बिना देखे ही (और) ओठों के बीच में ही बात कहकर चला जाना (मेरे) हृदय में प्रत्येक क्षण खटकता है (कि न जाने उसने यों धीरे-धीरे कौन-सी गोपनीय बात कही ?)

चुनरी स्याम सतार नभ मुँह ससि की उनहारि।
नेहु दबावतु नींद लौं निरखि निसा-सी नारि ॥२५७॥

अन्वय—स्याम चुनरी सतार नभ, मुख ससि की उनहारि। निसा-सी नारि निरखि नींद लौं नेहु दबावतु।

सतार = स + तार = तारा सहित। नभ = आकाश। ससि = चन्द्रमा। उनहारि = समान। नेह = प्रेम। लौं = समान। निसा = रात्रि।

काली चुनरी ही तारों से भरा आकाश है, और मुखड़ा चन्द्रमा के समान है। (इस चन्द्र और तारे भरे आकाश से युक्त) रात्रि के समान स्त्री को देखकर नींद के समान प्रेम आ दबोचता है—बरबस प्रेम हो ही जाता है, जैसे रात में नींद आ ही जाती है।

मैं लै दयौ लयौ सु कर छुवत छिनकि गौ नीरु।
लाल तिहारौ अरगजा उर ह्वै लग्यौ अबीरु ॥२५८॥

अन्वय—मैं लै दयौ सु कर लयौ, छुवत नीरु छिनकि गौ। लाल तिहारौ अरगजा उर अबीरु ह्वै लग्यौ।

लै = लेकर। सु = वह। छनकि गौ = छन-से सूख गया। अरगजा = सुगन्धित और शीतल पदार्थों से तैयार किया हुआ एक प्रकार का लेप।

मैंने लेकर (उसे) दिया। उसने हाथ में ले लिया। (किन्तु उसके) छूते ही पानी छन-से सूख गया। (यों) हे लाल, तुम्हारा (मेरे द्वारा भेजा हुआ लाल रंग का) अंगराग उस (विरहिणी) के हृदय में अबीर होकर लगा—(विरह-ज्वाला के कारण पानी सूख जाने से वह लाल अरगजा का गीला लेप सूखा अबीर बन गया!)

तौपर वारौं उरबसी सुन राधिके सुजान।
तू मोहन कैं उर बसी ह्वै उरबसी समान ॥२५९॥

अन्वय—सुजान राधिके सुनि तोपर उरबसी वारौं। तू उरवसी समान ह्वै मोहन कैं उरबसी।

वारौं = निछावर करूँ। उरवसी = उर्वशी नामक अप्सरा। सुजान = चतुर। उर बसी = हृदय में बसी। ह्वै = होकर। उरबसी = गले में पहनने का एक आभूषण, हैकल, माला या हार।

हे सुचतुरे राधिके! सुन, (मैं) तुझपर उर्वशी (अप्सरा) को निछावर करती हूँ—तुम्हारे सामने उर्वशी की कीमत कुछ नहीं, (क्योंकि) तू हार के समान श्रीकृष्ण के हृदय में बसी है।

हँसि उतारि हिय तैं दई तुम जु तिहिं दिना लाल।
राखति प्रान कपूर ज्यौं वहै चुहटिनी माल ॥२६०॥

अन्वय—लाल तुम जु तिहिं दिना हँसि हिय तैं उतारि दई, वहै चुहटिनी माल कपूर ज्यों प्रान राखति।

हिय = हृदय। तिहिं=उस। चुहटिनी = गुंजा, करजनी।

हे लाल! तुमने जो उस दिन हँसकर अपने हृदय से (माला) उतारकर दी सो उसी गुंजों की माला ने उसके कपूर के समान प्राण को (विलीन होने से) बचा रक्खा है।

नोट—गुंजा के साथ कपूर रखने से नहीं उड़ता।

रही लटू ह्वै लाल हौं लखि वह बाल अनूप।
कितौ मिठास दयौ दई इतै सलोनैं रूप ॥२६१॥

अन्वय—लाल हौं वह अनूप बाल लखि लटू ह्वै रही। दई इतैं सलोनैं रूप कितौ मिठास दयौ।

लटू = लट्टू। हौं = हम। बाल = नवयुवती, नायिका। सलोनैं = लावण्यमय, नमकीन। मिठास = मीठापन, माधुरी।

हे लाल! मैं उस अनुपम बाला को देखकर लट्टू हो रही हूँ—मुग्ध हो रही हूँ। ईश्वर ने इतने नमकीन रूप में—इस छोटे-से लावण्यमय शरीर में, कितनी मिठास दे दी है—कितनी माधुरी भर दी है।

सोहति धोती सेत मैं कनक-बरन-तन बाल।
सारद-बारद-बीजुरी-भा रद कीजति लाल ॥२६२॥

अन्वय—कनक-बरन-तन बाल सेत धोती मैं सोहति। लाल सारद-बारद-बीजुरी-भा रद कीजति।

सेत = उजला। कनक-वरन = सोने का रंग। सारद = शरद ऋतु का। बारद = वारिद = बादल। बीजुरी = बिजली। भा = आभा।

सोने के रंग-जैसे शरीर वाली (वह) बाला उजली साड़ी में शोभ रही है। हे लाल! (उसकी यह शोभा देखकर) शरद ऋतु के (उजले) बादल में (चमकनेवाली) बिजली की आभा को भी रद करना चाहिये—तुच्छ समझना चाहिये।

वारौं बलि तो दृगनु पर अलि खंजन मृग मीन।
आधी डीठि चितौनि जिहिं किए लाल आधीन ॥२६३॥

अन्वय—तो दृगनु पर अलि खंजन मृग मीन बलि वारौं। जिहि आधी डीठि चितौनि लाल आधीन किए।

वारौं = निछावर करूँ। बलि = बलैया लेना। दृगनु = आँखें। अलि = भौंरा। मीन = मछली। डीठि = नजर। चितौनि = चितवन। लाल = प्रीतम।

(मैं) बलैया (लूँ), तेरी आँखों पर भौंरा· खंजरीट, हिरन, और मछली—सब को—निछावर करूँ। जिन (आँखों) ने आधी नजर की चितवन से ही प्रीतम को वश में कर लिया।

नोट—भौंरे की रसिकता और कालिमा, मृग की दीर्घनेत्रता, तथा खंजन और मीन की चंचलता से स्त्री की आँखों की उपमा दी जाती है। नवयुवती सुन्दरी नायिका की आँखें रसलुब्ध, कजरारी, बड़ी-बड़ी और चंचल होती भी हैं।

देखत बुरै कपूर ज्यौं उपै जाइ जिन लाल।
छिन-छिन जाति परी खरी छीन छबीली बाल ॥२६४॥

अन्वय—लाल कपूर बुरै ज्यौं देखत जिन उपै जाइ। छबीली बाल छिन-छिन खरी छीन परी जाति।

चुरै = ओराना, चुक जाना। उपै जाई = उड़ जाय, काफूर या गायब हो जाय। खरी = अत्यन्त। छीन = दुबली। छबीली बाल = सुन्दरी नवयुवती।

हे लाल! (मुझे भय है कि कहीं वह नायिका) कपूर के समान चुकते-चुकते उड़ न जाय। (क्योंकि तुम्हारे विरह में वह) सुन्दरी युवती क्षण-क्षण में अत्यन्त दुबली पड़ती जाती है—दुबली होती जाती है।

छिनकु छबीले लाल वह नहिं जौ लगि बतराति।
ऊख महूष पियूष की तो लगि प्यास न जाय ॥२६५॥

अन्वय—छबीले लाल छिनकु वह जौ लगि बतराति नहिं तौ लगि ऊख महूष पियूष की प्यास न जाति।

छिनकु = एक क्षण। जौ लगि = जब तक। बतराति = बातचीत करती। महूष = मधु, शहद। पियूष = अमृत।

हे छबीले लाल! एक क्षण के लिये भी वह (नायिका) जब तक बातचीत नहीं करती तब तक ऊख, मधु और अमृत की प्यास भी नहीं जाती—(ये सब पदार्थ स्वभावतः मीठे होने पर भी उसकी बोली की मिठास के इच्छुक बने रहते हैं, उसी के मधुमय वचनों से माधुर्य्य प्राप्त करते हैं।)

नोट—ऊख, महूष और पियूष (की उपमा) से नायिका के वचनों में क्रमशः मधुरता, शीतलता और प्राण-संचारिणी शक्ति का भाव व्यक्त होता है।

नागरि बिबिध विलास तजि बसी गँवेलिनु माहिं।
मूढ़नि मैं गनिबी कि तूँ हूठ्यौ दै इठलाहिं ॥२६६॥

अन्वय—नागरि बिबिध विलास तजि गँवेलिनु माहिं बसी तूँ हूठ्यौ दै इठलाहि कि मूढ़न में गनबी।

विलास = आमोद-प्रमोद। गँवेलिनु=गाँव की गँवार स्त्रियाँ। गनिबी = गिनी जाओगी। हूठौदै = गँवारपन दिखलाकर। इठलाहि = मस्त बनी रह।

ऐ नगर में बसनेवाली सुचतुरा स्त्री! नाना प्रकार के (नगर-सुलभ) आमोद-प्रमोद को छोड़कर तू इन गाँव की गँवार स्त्रियों में आ बसी है। (इसलिये अब) तू भी (उन्हीं के समान) गँवारपन दिखला कर इठला—आनन्द प्रकट कर, नहीं तो (इन गँवारिनों द्वारा) मूर्खाओं में गिनी जाओगी—गँवारिन समझी जाओगी।

पिय मन रुचि ह्वैबौ कठिन तन रुचि होहु सिंगार।
लाखु करौ आँखि न बढ़ैं बढ़ैं बढ़ाऐं बार॥२६७॥

अन्वय—पिय मन रुचि ह्वैबौ कठिन सिंगार तन रुचि होहु। लाखु करौ आँखि न बढ़ैं बढ़ाऐं बार बढ़ैं।

तन रुचि = शरीर की शोभा। बार = बार = बाल, केश।

प्रीतम के मन में रुचि (पैदा) होना कठिन है—प्रीतम को अपनी ओर आकृष्ट कर लेना कठिन है। सिंगार से (तो केवल) शरीर की शोभा बढ़े। लाख भी (प्रयत्न) करो, किन्तु आँखें नहीं बढ़तीं। (हाँ,) बढ़ाने से बाल (अवश्य) बढ़ जाते हैं।

नोट—सिंगार से शरीर की शोभा भले ही हो, प्रीतम का मन आकृष्ट होना कठिन है, क्योंकि वह तो प्रेम से ही वशीभूत होता है।

नहिं परागु नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सौं बँध्यो आगैं कौन हवाल॥२६८॥

अन्वय—नहिं परागु नहिं मधुर मधु इहिं काल विकास नहिं। अली कली सौं ही बँध्यौ आगैं कौन हवाल।

परागु = फूल की सुगंधित धूलि, पुष्परज। मधु = मकरंद, पुष्परस। विकास = खिलना। अली = भौंरा। बँध्यौ = उलझ गया है, घायल या लुब्ध हुआ है। हवाल = दशा।

न (सुगंधित) पराग है, न मीठा मकरंद. इस समय तक विकास भी नहीं हुआ है—वह खिली भी नहीं है। अरे भौंरा! कली से ही तो तू इस प्रकार उलझ गया, फिर आगे तेरी क्या दशा होगी—(अधखिली कली पर यह हाल है तो जब यह कली खिलेगी, सुगंधित पराग और मधुर मकरंद से भर जायगी, तब क्या दशा होगी।)

नोट—यही दोहा सुनकर मिर्जा राजा जयसिंह अपनी किशोरी रानी के प्रेम को कम कर पुनः राजकाज देखने लगे थे। इसी पर उन्होंने बिहारी को एक सौ अशर्फियाँ दी थीं, और इसी ढंग के दोहे रचने के लिये प्रत्येक दोहे पर सौ अशर्फियाँ पुरस्कार देने का उत्साह देकर यह सतसई तैयार कराई थी। इसलिये यही दोहा सतसई की रचना का मूल कारण माना जाता है।

टुनहाई सब टोल में रही जु सौति कहाइ।
सु तैं ऐंचि प्यौ आपु त्यौं करी अदोखिल आइ॥२६९॥

अन्वय—सब टोल में जु सौति टुनहाई कहाइ रही। सु तैं आइ प्यौ आपु त्यौं ऐंचि अदोखिल करी!

टुनहाई = जादूगरनी। टोल = टोले-मुहल्ले में। जु = जो। सु = वह, उसे। तैं = तुमने। ऐंचि = खींचकर, आकृष्ट कर। त्यौं = निकट, ओर। अदोखिल = दोष-रहित, कलंक-रहित।

समूचे टोले में (तुम्हारी) जो सौतिन (पति को अत्यन्त आकृष्ट करने के कारण) जादूगरनी कही जाती थी (कि इसने

जादू करके नायक को वश में कर लिया है) उसे तुमने आकर, पति को अपनी ओर आकृष्ट कर, कलंक-रहित कर दिया (तुम्हारी सौतिन पर से जादूगरनी होने का कलंक हट गया)।

नोट—अब लोग समझ गये कि सौतिन ने अपने रूप के जादू से ही नायक को वश में किया था। तुम अधिक रूपवती हो, सो तुम्हारे आने से नायक तुम्हारे रूप पर आकृष्ट हो गया है, और उसपर से दृष्टि फेर ली है।

देखत कछु कौतिगु इतै देखौ नैकु निहारि।
कबकी इकटक डटि रही टटिया अँगुरिनु फारि ॥२७०॥

अन्वय—इतै कछु कौतिगु देखत नैंकु निहारि देखौ। कब की टटिया अँगुरिनु फारि इकटक डटि रही।

कौतिगु = कौतुक = तमाशा। नैंकु = जरा। निहारी—गौर करके। डटि रही=देख रही है। टटिया—टट्टर।

(क्या) इस ओर कुछ तमाशा देख रहे हो ? (अगर नहीं देखते तो) जरा गौर से देखो—आँखें फाड़-फाड़कर देखो। (वह न जाने) कब से टट्टर को अँगुली से फाड़कर (तुम्हारी ओर) एकटक से देख रही है।

लखि लोइन लोइननु कौं को इन हो नइ आज।
कौन गरीब निवाजिबौ कित तूठ्यौ रतिराज ॥२७१॥

अन्वय—लोइन लोइननु कौं लखि आज को इन न होइ। कौन गरीब निवाजिबो कित रतिराज तूठ्यौ।

लोइन = लावण्य, शोभा। लोइननु = आँखों। को = कौन। निवाजिबो = कृपा होगी। कित = कहाँ। तूठ्यौ=संतुष्ट हुआ है। रतिराज = कामदेव।

इन आँखों का लावण्य देखकर आज कौन इनका नहीं हो रहेगा ?—कौन इन आँखों के वश में नहीं हो जायगा ? (कहो, आज) किस गरीब पर कृपा होगी, कहाँ कामदेव प्रसन्न हुआ है ? (कि तुम यों बनी-ठनी चली जा रही हो ?)

मन न धरति मेरौ कह्यौ तूँ आपनैं सयान।
अहे, परनि पर प्रेम की परहथ पारि न प्रान ॥२७२॥

अन्वय—तूँ आपनैं सयान मेरौ कह्यौ मन न धरति। पर प्रेम की प्रान परहथ अहे पारि न।

सयान = चतुराई। अहे = है। परनि = पड़ना। परहथ = दूसरे के हाथ में। पारिन = डालना, देना।

तू अपनी चतुराई में (मस्त बनी) मेरा कहना मन में नहीं धरती—मेरी बात नहीं मानती। (किन्तु यह याद रख कि) दूसरे के प्रेम में पड़ना—दूसरे के प्रेम में फँसना—(अपने) प्राणों को दूसरे के हाथ में देना है, अतः (प्राण) दूसरे के हाथ में मत दे।

बहक न इहिं बहिनापुली जब-तब बीर बिनासु।
बचै न बड़ी सबीलहूँ चील घोंसुआ मांसु ॥२७३॥

अन्वय—इहि बहिनापुली न बहकि बीर जबतब बिनासु। बड़ी सबीलहूँ चील-घोंसुला मांसु न बचै।

बहकि = बहककर, फेर में पड़कर। बहिनापुली = स्त्रियों की आपस की मैत्री। बीर = सखी। सबील = यत्न। घोंसुआ = घोंसला, खोंता।

इस बहिनापे में मत बहको—इस कुलटा की मित्रता के धोखे में न आओ। हे सखि ! जब न तब इसमें सर्वनाश (ही हुआ) है। (देखो !) बहुत यत्न करने पर भी चील के घोंसले में मांस नहीं बचता।

नोट—कोई दुष्टा स्त्री किसी भोलीभाली नवयुवती सुन्दरी से बहिनापा जोड़कर उसे बिगाड़ना चाहती है। इसपर नवयुवती सुन्दरी की प्यारी सखी उसे समझा रही है।

मैं तोसौं कैबा कह्यौ तू जिनि इन्हैं पत्याइ।
लगालगी करि लोइननु उर में लाई लाइ ॥२७४॥

अन्वय—मैं तोसौं कैबा कह्यौ तू इन्हैं जिनि पत्याइ। लोइननु लगालगी करि उर में लाइ लाई।

तो सौं = तुमसे। कैबा = कितनी बार। जिनि = मत। पत्याइ = प्रतीति कर। लगालगी=लग-लगाकर, एक दूसरे से उलझकर। लोइननु= आँखें। लाई = लगा दी। लाइ = आग, लाग, सेंध।

मैंने तुमसे कई बार कहा (कि) तुम इन्हें मत पतिआओ—इनका विश्वास न करो। (किन्तु तुमने न माना, अब देखो, इन) आँखों ने लगालगी करके—मिल-मिला करके—(तुम्हारे) हृदय में आग लगा दी—तुम्हारे हृदय में चोर पहुँचने के लिये सेंध लगा दी।

सनु सूक्यौ बीत्यौ बनौ ऊखौ लई उखारि।
हरीहरी अरहरि अजौं धर धरहरि जिय नारि ॥२७५॥

अन्वय—सनु सूक्यौ, बनौ बीत्यौ, ऊखौ उखारि लई; अजौं अरहरि हरी-हरी, नारि जिय धरहरि धर।

सूक्यौ = सूख गया। बनौ = (बिनौला) कपास। अरहरि = अरहर, रहरी। अजौं = अब तक। धरहरि = धैर्य।

सन सूख गया, कपास भी बीत चुकी, ऊख भी उखाड़ ली गई। (यों तुम्हारे गुप्त-मिलन के सभी स्थान नष्ट हो गये, किन्तु) अब तक अरहर हरी-हरी है। (इसलिये) हे बाला! हृदय में धैर्य

धारण करो (क्योंकि कम-से-कम एक गुप्त स्थान तो अभी तक कायम है ?)

नोट—सन, कपास, ऊख और अरहर की खड़ी फसल वाला खेत खूब घना और गुप्त एकान्त स्थान के समान होता है। यह देहाती नायिका मालूम होती है; क्योंकि ऐसे स्थान में देहाती नायिकाएँ ही अपना मिलन-मंदिर बनाती हैं !!

जौ वाके तन की दसा देख्यौ चाहत आपु।
तौ बलि नकु बिलोकियै चलि अचकाँ चुपचापु ॥२७६॥

अन्वय—जौ वाके तन की दसा आपु देख्यौ चाहत, तौ बलि नैंकु चुपचापु अचकाँ चलि बिलोकियै।

वाके = उसके। बलि = बलैया लेती है। नैंकु = जरा। बिलोकियै = देखिये। अचकाँ = अचानक। चुपचापु = चोरी-चुपके से।

यदि उसके (विरह में व्याकुल नायिका के) शरीर की (यथार्थ) दशा आप देखना चाहते हैं तो, मैं बलैया लेती हूँ, जरा चुपचाप अचानक चलकर उसे देखिये (नहीं तो आपके आगमन की बात सुनते ही वह आनन्दित हो उठेगी और आप उसकी यथार्थ अवस्था नहीं देख सकेंगे !)

नोट—उनके देखने से जो आ जाती है मुँह पर रौनक।
वो समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है ॥—गालिब

कहा कहौं वाकी दसा हरि प्राननु के ईस।
बिरह-ज्वाल जरिबो लखैं मरिबौ भयौ असीस ॥२७७॥

अन्वय—प्राननु के ईस हरि वाकी दसा कहा कहौं, विरह-ज्वाल जरिबो लखैं मरिबौ असीस भयौ।

कहा = क्या । वाकी = उसकी । जरिबो = जरना । हरि = श्रीकृष्ण । लखे = देखकर । मरिबौ = मरना । भयौ = हुए ।

हे प्राणों के ईश्वर श्रीकृष्ण ! उसकी दशा मैं क्या कहूँ ! (उसका) विरह-ज्वाला में जलना देखकर—तुम्हारे विरह में अपार कष्ट सहना देखकर—मरना ही आशीर्वाद हो गया (मृत्यु ही आशीर्वाद-सी सुखदायिनी मालूम पड़ती है ।)

नोट—छूट जायें गम के हाथों से जो निकले दम कहीं ।
खाक ऐसी जिन्दगी पर तुम कहीं और हम कहीं ॥—जौक

नैंकु न जानी परति यौं परयौ विरह तनु छामु ।
उठति दियैं लौं नाँदि हरि लियैं तिहारो नामु ॥२७८॥

अन्वय—नैंकु न जानि परति विरह तन छामु पर्‍यौ, हरि तिहारो नाम लियैं दियैं लौं नाँदि उठति ।

नैंकु = जरा । छामु = क्षाम, क्षीण, दुबला । दियैं = दीपक । लौं = समान । नाँदि उठति = प्रकाशित हो उठती है । तिहारो = तुम्हारा ।

जरा भी नहीं जान पड़ती—नहीं दीख पड़ती, विरह से (उसका) शरीर यों दुबला हो गया है । हे हरि ! तुम्हारा नाम लेते ही वह दीपक के समान प्रकाशित हो उठती है (इसी से मालूम पड़ता है कि वह वर्त्तमान है, विलीन नहीं हुई है ।)

दियौ सु सीस चढ़ाइ लै आछी भाँति अएरि ।
जापैं सुखु चाहतु लियौ ताके दुखहिं न फेरि ॥२७९॥

अन्वय—आछी भाँति अएरि दियौ सु सीस चढ़ाइ लै जाइ पैं चाहतु सुखु लियौ ताके दुखहिं न फेरि ।

आछी भाँति = अच्छी तरह । अएरि = अंगीकार करके । जापैं = जिसपर, जिसके द्वारा । चाहतु = मन-चाहा । ताके = उसके ।

अच्छी तरह अंगीकार करके (जो कुछ उसने) दिया है, सो शीश पर चढ़ा ले—दुःख ही दिया तो क्या हुआ, उसे भी अंगीकार कर ले। जिससे मनचाहा सुख लिया, उसके (दिये हुए) दुःख को भी मत फेर—वापस न कर।

कहा लड़ैते दृग करे परे लाल बेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीतपटु कहूँ मुकुट बनमाल ॥२८०॥

अन्वय—दृग कहा लड़ैते करे लाल बेहाल परे, कहुँ मुरली कहुँ पीतपटु कहूँ मुकुटु बनमाल।

कहा = कैसा। लड़ैते = लड़ाकू। लाल = नन्दलला, श्रीकृष्ण। बेहाल= व्याकुल। कहुँ = कहीं। पीतपटु = पीताम्बर।

(तुमने अपने) नेत्रों को कैसा लड़ाकू बना लिया है ? वे कैसे ऊधमी हो गये हैं ? (देखो ! उसकी मार से) श्रीकृष्ण व्याकुल होकर (घायल-से) पड़े हैं। कहीं मुरली (पड़ी) है, कहीं पीताम्बर (पड़ा) है, कहीं मुकुट (लुढ़क रहा) है, और कहीं बनमाला (लोट रही) है—(उन्हें किसी की सुधि नहीं !)

तूँ मोहन मन गड़ि रही गाढ़ी गड़नि गुवालि।
उठै सदा नटसाल ज्यौं सौतिनु के उर सालि ॥२८१॥

अन्वय—गुवालि तूँ मोहन मन गाढ़ी गड़नि गड़ि रही। सौतिनु के उर नटसाल ज्यौं सदा सालि उठै।

गाढ़ी गड़नि = अच्छी तरह से, मजबूती के साथ। गुवालि=ग्वालिन। नटसाल = तीर की चोखी नोक, जो टूटकर शरीर के भीतर ही रह जाती है और पीड़ा देती है। ज्यौं = समान, जैसे। सालि=कसक।

अरी ग्वालिन ! तू मोहन के मन में भली भाँति गड़ रही है—श्रीकृष्ण के हृदय में तूने अच्छी तरह घर कर लिया है।

(यह देखकर) सौतिनों के हृदय में तीर की टूटी हुई नोक की पीड़ा के समान सदा कसक उठती रहती है।

बड़े कहावत आपसौं गरुवे गोपीनाथ।
तौ बदिहौं जौ राखिहौं हाथनु लखि मनु हाथ ॥२८२॥

अन्वय—गरुवै गोपीनाथ आपसौं बड़े कहावत, बदि हौं तौ जौ हाथन लखि मन हाथ राखिहौ।

आपसौं=अपने को। गरुवै=भारी, प्रतिष्ठित। तौ=तब। बदिहौं=यथार्थ में समझूँगी। हाथनु=हाथों को।

प्रतिष्ठित गोपीनाथजी! (आप) अपने को बड़े तो कहलवाते हो। किन्तु मैं बदूँगी तब—मैं यथार्थ में प्रतिष्ठित और बड़ा समझूँगा तब—जब (इस नायिका के) हाथों को देखकर (अपना) मन वश में रख लोगे—अपने को काबू में रख सकोगे।

रही दहेंड़ी ढिग धरी भरी मथनियाँ बारि।
फेरति करि उलटी रई नई बिलोवनिहारि ॥२८३॥

अन्वय—दहेंड़ी ढिग धरी रही; मथनियाँ बारि भरी, रई उलटी करि नई बिलोवनिहारि फेरति।

दहेंड़ी=दही रखने का बर्तन, कहतरी, मटकी। ढिग=निकट। मथनिया=जिसमें दही रखकर मथा जाता है, माठ, कूँड़ा। रई=जिससे दही मथा जाता है, रही, मथनी। नई बिलोवनिहारि=दही मथनेवाली नवयुवती, नई-नवेली ग्वालिन।

(दही से भरी हुई) मटकी निकट ही रक्खी रह गई और (दही मथनेवाले) भाँड़ में केवल पानी भर दिया। (फिर) मथनी उलटकर (प्रीतम—श्रीकृष्ण—के ध्यान में पगली बनी हुई वह)

नई दही मथनेवाली फेर (मथ) रही है—उलटी मथनी मे ही भाँड़े के पानी को मथ रही है। (श्रीकृष्ण के प्रेम में बेसुध है)

कोरि जतन कीजै तऊ नागरि नेहु दुरै न।
कहैं देत चितु चीकनौ नई रुखाई नैन ॥२८४॥

अन्वय—कोरि जतन कीजै तऊ नागरि नेहु न दुरै। नैन नई रुखाई चित चीकनौ कहे देत।

कोरि = करोड़। तऊ = तो भी। नागरि = चतुरा। दुरै न = नहीं दुरता, नहीं छिपता। चीकनौ = प्रेम। रुखाई = क्रोध।

करोड़ों यत्न करो तो भी; हे सुचतुरे! प्रेम नहीं छिपता। आँखों की नई रुखाई ही—कृत्रिम रूक्षता (क्रोध) ही—हृदय की चिकनाहट (स्नेहशीलता)—कहे देती है।

नोट—प्रेम छिपाये ना छिपै जा घट परगट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं आँख देति हैं रोय ॥—कबीरदास

पूछैं क्यौं रूखी परति सगिबगि गई सनेह।
मनमोहन छवि पर कटी कहै कँट्यानी देह ॥२८५॥

अन्वय—पूछैं रूखी क्यौं परति सनेह सगिबगि गई मनमोहन छवि पर कटी, कँट्यानी देह कहै।

रूखी परति = अनखाती, कुपित होती। सगबगि गई = शराबोर हो गई, तल्लीन या मस्त हो रही। मनमोहन = श्रीकृष्ण। छवि पर कटी = रूप पर मुग्ध। कँट्यानी = कंटकित, रोमांचित।

पूछने से क्रोधित क्यों होती हो? स्नेह से तो शराबोर हो रही हो। श्रीकृष्ण के रूप पर लट्टू हुई हो, (यह बात तुम्हारी) रोमांचित देह ही कह रही है।

तूँ मति मानैं मुकुतई कियैं कपट चित कोटि।
जो गुनही तौ राखिये आँखिन माँहि अँगोटि ॥२८६॥

अन्वय—कोटि कपट चित कियैं तूँ मुकुतई मति मानैं। जो गुनही तौ आँखिनु माँहि अँगोटि राखिये।

मुकुतई = मुक्ति, छुटकारा। चित = मन। कोटि = करोड़ों। गुनही= गुनहगार, दोषी, अपराधी। अँगोटि = बन्द कर, कैद कर।

करोड़ों कपट मन में रखने से तू अपना छुटकारा न समझ—झूठमूठ मुझे दोषी बतलाने से मैं तेरा पिंड छोड़ दूँगा, ऐसा मत समझ। (हाँ,) यदि (सचमुच मुझे) गुनहगार समझती है, तो अपनी आँखों में मुझे कैद कर रख।

नोट—नायिका को किसी तरह नायक छोड़ना नहीं चाहता। अपने ऊपर किये गये आक्षेप या आरोप को वह पहले तो झूठ बतला रहा है, और सत्य होने पर भी सजा चाहता है—नायिका की आँखों में कैद होना! कविवर रहीम ने भी भगवान् श्रीकृष्ण से कहा है कि मैं नट के समान चौरासी लाख रूप बनाकर तुम्हारे निकट आया, अगर मेरे इन रूपों पर तुम प्रसन्न हो, तो मुझे मनचाही (मुक्ति) दो, नहीं कहो तो मैं इन रूपों को ही न बनाऊँ, और यों चौरासी के फेर से बचूँ। कैसी विलक्षण उक्ति है—"आनीता नटवन्मया तव पुरः श्रीकृष्ण या भूमिका, व्योमाकाश खखांबराब्धि वसुवत् त्वत्प्रीतयेद्यावधि; प्रीतस्त्वं यदि चेन्निशीथ भगवान् स्वप्रार्थितं देहिमे, नोचेद्ब्रूहि कदापि मानय पुनस्त्वेतादृशी भूमिका"—रहीम काव्य।

बाल-बेलि सुखी सुखद इहिं रूखी रुख-घाम।
फेरि डहडही कीजियै सुरस सींचि घनस्याम ॥२८७॥

अन्वय—इहि रूखी रुख घाम सुखद बाल-बेलि सूखी। घनस्याम सुरस सींचि फेरि डहडही कीजियै।

बेलि = लता । रूखी-रुख = क्रोधभाव । घाम = रौद, धूप । डहडही = हरी-भरी । सुरस = (१) सुन्दर प्रेम (२) सुन्दर जल । घनश्याम = (१) श्रीकृष्ण (२) श्यामल मेघ ।

इस क्रोध-भाव-रूपी घाम से (वह) सुख देनेवाली बाला-रूपी लता सूख गई है । (अतएव) हे घनश्याम ! सुन्दर (प्रेम-रूपी) जल से सींच कर इसे पुनः हरी-भरी कर दीजिये ।

हरि हरि बरिबरि उठति है करि करि थकी उपाइ ।
वाकौ जुरु बलि बैदजू तो रस जाइ तु जाइ ॥२८८॥

अन्वय—हरि हरि बरि बरि उठति है, उपाइ करि करि थकी । बैदजू, बलि, वाको जुरु तु रस जाइ तो जाइ ।

बरि-बरि = जल-जल कर । वाको = उसको । जुरु = ज्वर, बुखार । बलि = बलैया लेना । रस = (१) मकरध्वज आदि रसायनिक ओषधि, (२) प्रेम, मिलन-जनित आनन्द ।

हे हरि ! (विरह-ज्वाला में) जल-जल (वह) उठती है । (मैं) उपाय कर-करके थक गई । हे वैद्य महाराज, मैं बलैया लेती हूँ, उसका (विरह-रूपी) ज्वर आपके 'रस' (औषध) से जाय तो जाय (नहीं तो कोई दूसरा उपाय नहीं ।)

तूँ रहि हौं ही सखि लखौं चढ़ि न अटा बलि बाल ।
सबही बिनु ससि ही उदै दीजतु अरघु अकाल ॥२८९॥

अन्वय—सखि तूँ रहि हौं ही लखौं बाल बलि अटा न चढ़ि । सबही बिनु ससि उदै ही अकाल अरघु दीजतु ।

हौं = मैं । अटा = अटारी, कोठा । बलि = बलैया लेना । बाल = बाला, नायिका । अरघु = अर्घ्य । अकाल = असमय, बेवक्त ।

सखि ! तू रह, मैं ही देखती हूँ । बाले ! मैं बलैया लेती हूँ,

तू कोठे पर न चढ़। (नहीं तो कोठे पर तुम्हारा मुख, देख उसे चन्द्रमा समझ) सभी बिना चन्द्रमा के उदय हुए ही, असमय में ही, अर्घ्य देने लगेंगे।

नोट—इसी भाव का एक श्लोक महाकवि कालिदास के शृंगारतिलक में है, जिसमें चंद्रानना नायिका को ग्रहण-काल में झटपट घर में घुसने को कहा गया है। कारण, कहीं उसे पूर्णचन्द्र समझकर राहु ग्रस न ले—झटिति प्रविश गेहे मा वहिस्तिष्ठ कान्ते, ग्रहणसमय वेला वर्तते शीतरश्मेः; तव मुखमकलंकं वीक्ष्य नूनं स राहुः; ग्रसति तव मुखेन्दुं पूर्ण-चन्द्रं विहाय।

दियौ अरघु नीचौं चलौ संकटु भानैं जाइ।
सुचिती ह्वै औरौ सबै ससिहिं बिलोकैं आइ ॥२९०॥

अन्वय—अरघु दियौ नीचे चलौ, जाइ संकट भानैं औरौ सबै सुचिती ह्वै ससिहिं आइ बिलोकैं।

संकट = सकट-चतुर्थी का व्रत। भानैं = तोड़ें। सुचिती ह्वै = सुचित (स्थिरचित्त) होकर, द्विधा को छोड़कर। ससिहिं = चन्द्रमा को। बिलोकैं = देखें।

अर्घ्य दे चुकी, (अब) नीचे चलो। चलकर संकट-चौथ का व्रत तोड़ें—संकट-चतुर्थी के व्रत का पारण करें। (ताकि) अन्य सब (स्त्रियाँ) भी सुचित होकर—दुबिधा छोड़कर—चन्द्रमा को आकर देखें (क्योंकि कोठे पर रहने से तुम्हारे मुखचन्द्र को देखकर सब भ्रम में पड़ जाती हैं कि इस चौथ को यह पूर्णचन्द्र कहाँ से आया!)

वे ठाढ़े उमदाहु उत जल न बुझै बड़वागि।
जाही सौं लाग्यौ हियौ ताही कैं हिय लागि ॥२९१॥

अन्वय—वे ठाढ़े उत उमदाहु, जल बड़वागि न बुझै। जाही सौं हियौ लाग्यौ ताही कैं हिय लागि।

उमदाहु = मद-माती-सी चेष्टा करो, अँठिलाओ। उत = उधर। वड़वागि = समुद्र की वड़वा नामक अग्नि। जाही सों = जिससे। ताही-कैं = उसी के। लागि = लगो।

(देख) वे खड़े हैं, उधर ही उन्मत्त-सी चेष्टा करो—उन्हीं से लपटो-झपटो। जल से बड़वाग्नि नहीं बुझती—मुझसे तुम्हारी ज्वाला शान्त न होगी। जिससे हृदय लगा है, उसी के हृदय से जा लगो। (निकट खड़े ही हैं, फिर देरी क्यों?)

अहे कहै न कहा कह्यौ तो सौं नन्दकिसोर।
बड़बोली बलि होति कत बड़े दृगनु कैं जोर ॥२६२॥

अन्वय—अहे कहै तो सौं नन्दकिसोर कहा कह्यौ। बड़े दृगनु के जोर बलि कत बड़बोली होति।

अहे = अरी। कहा = क्या। नन्दकिसोर = नन्दनन्दन श्रीकृष्ण। बड़बोली = बढ़-बढ़कर बातें करनेवाली। बलि = बलैया लेना।

अरी! कह न, तुझसे श्रीकृष्ण ने क्या कहा है? बड़ी-बड़ी आँखों के बल पर, बलैया जाऊँ, तू क्यों बढ़-बढ़कर बातें करती है?

मैं यह तोही मैं लखी भगति अपूरब, बाल।
लहि प्रसाद-माला जु भौ तनु कदम्ब की माल ॥२६३॥

अन्वय—बाल, मैं तोही मैं यह अपूरब भगति लखी, जु प्रसाद-माला लहि तनु कदम्ब की माल भौ।

बाल = बाला, नवयुवती। लहि = पाकर। भौ=हुई। तनु कदम्ब की माल = कदम्ब के सुन्दर फूल में पीले-पीले सुकोमल अँकुरे निकले रहते हैं, वैसे ही गोरी गोपी के गात में रोमांच उठ आये। (कोमलांगी के रोमांच की उपमा कदम्ब कुसुम से देते हैं, जैसे वीरों के रण रोमांच की पनस-फल से)

हे बाले ! मैंने तुम्हीं में ऐसी अपूर्व भक्ति देखी है। (क्योंकि ठाकुरजी की) प्रसाद की माला पाकर तुम्हारी देह की कदम्ब की माला (रोमांचित) हो गई !

नोट—नायक ने चुपके से अपनी माला भेजी, जिसे नायिका ने सखियों के सामने ठाकुरजी की प्रसाद की माला कहकर पहन लिया। माला पहनते ही शरीर पुलकित हो उठा। इसपर चतुर सखी चुटकी लेती है कि ऐसी अपूर्व ईश्वर-भक्ति किसी और नवयुवती में नहीं देखी गई; क्योंकि नवयुवती में तो पतिप्रेम ही होता है, ईश्वर-प्रेम तो वृद्धा में देखा जाता है।

ढोरी लाई सुनन की कहि गोरी मुसकात।
थोरी-थोरी सकुच सौं भोरी-भोरी बात ॥२६४॥

अन्वय—थोरी-थोरी सकुच सौं भोरी-भोरी बात कहि गोरी मुसकात, सुनन की ढोरी लाई।

ढोरी लाई=आदत लगा ली। सकुच=लाज। सौं=से।

थोड़ी-थोड़ी, लज्जा से, भोली-भोली बातें कहकर वह गोरी मुसकाती है—लज्जा के कारण अधिक कह नहीं सकती, अतएव भोली-भोली बातें थोड़ी-थोड़ी कहकर ही मुस्कुरा पड़ती है। (इस चेष्टा से कही गई उसकी बातें) सुनने की मैंने आदत सी लगा ली है—बिना सुने चैन ही नहीं पड़ता।

चितु दै चितै चकोर त्यौं तीजैं भजै न भूख।
चिनगी चुगै अँगार की चुगै कि चन्द-मयूख ॥२६५॥

अन्वय—चकोर त्यौं चितु दै चितै, भूख तीजै न भजै ! अँगार की चिनगी चुगै कि चन्द मयूख चुगै।

चितै = देखो। तीजैं = तीसरे को। भजै न भूख = भूख लगने पर भी (किसी और को) ध्यान में नहीं लाता। मयूख = चन्द्रमा की किरण।

चकोर (मुखचन्द्र-प्रेमी नायक) की ओर चित्त देकर देखो—उसकी दशा पर अच्छी तरह विचार करो। वह भूख लगने (तीव्र मिलनोत्कंठा होने) पर भी तीसरे को नहीं भजता। या तो आग (विरहाग्नि) की चिनगारी चुगकर खाता है—या चन्द्रमा की किरण (मुखचन्द्र-छवि) को चुगता है—(किसी तीसरे के पास नहीं जाता।)

कब की ध्यान लगी लखौं यह घरु लगिहै काहि।
डरियतु भृंगी-कीट लौं मति वहई ह्वै जाहि ॥२९६॥

अन्वय—लखौं कब की ध्यान लगी, यह घरु, काहि लगिहै। डरियतु भृंगी कीट लौं मति वहई ह्वै जाहि।

यह घर काहि लगिहै = यह घर कौन सुधार सकेगी। भृंगी-कीट= भृङ्गी नामक एक छोटा-सा कीड़ा, जो दूसरे छोटे-छोटे कीड़ों को अपने घर में ले जाकर उनके निकट इतना भनभनाता है कि वे भी उसीके संगीत में लीन होकर भृंगी ही बन जाते हैं। लौं = समान। मति = बुद्धि। वहई = वही।

देखो, कब से ध्यान लगाये हुई है। भला, यह घर कौन सुधार सकेगा—इसे कौन समझा-बुझा सकेगा। मैं तो डरती हूँ कि भृंगी-कीट-न्याय से कहीं उस (नायिका) की बुद्धि भी वही न हो जाय।

नोट—नायिका भी कहीं नायक के ध्यान में निमग्न होकर नायक ही बन गई, तो भय है कि घर-गिरस्ती कौन सँभालेगा।

रही अचल-सी ह्वै मनौ लिखी चित्र की आहि।
तजैं लाज डरु लोक कौ कहौ बिलोकति काहि ॥२९७॥

अन्वय—अचल-सी ह्वै रही मनौ चित्र की लिखी आहि। लोक कौ लाज डरु तजैं कहौ काहि बिलोकति।

अचल=स्थिर। आहि=है। बिलोकति=देखती हो। काहि=किसे।

निश्चल-सी हो रही हो-जरा भी हिलती-डुलती नहीं—मानों चित्र की-सी लिखी (तस्वीर) हो। इस प्रकार संसार की लाज और डर छोड़कर, कहो, तुम किसे देख रही हो ?

ठाढ़ी मन्दिर पै लखै मोहन-दुति सुकुमारि।
तन थाकै हू ना थकै चख चित चतुर निहारि ॥२६८॥

अन्वय—मंदिर पै ठाढ़ी सुकुमारि मोहन-दुति लखै। तन थाकै हू चख चित ना थकै, चतुर निहारि।

मंदिर=अटारी। दुति=छवि। चख=आँख। निहारि=देखो।

कोठे पर खड़ी हो वह सुकुमारी (नायिका) श्रीकृष्ण की शोभा देख रही है (अत्यन्त सुकुमार होने के कारण) शरीर थक जाने पर भी (उसके प्रेम-प्लुत) नेत्र और मन नहीं थकते। अरी चतुर सखी ! तमाशा तो देख।

पल न चलैं जकि-सी रही थकि सी रही उसास।
अबहीं तनु रितयौ कहौ मनु पठयौ किहिं पास ॥२६९॥

अन्वय—पल न चलैं जकि-सी रही, उसास थकि-सी रही। अबहीं तनु रितयौ कहो मनु किहिं पास पठयौ।

जकि-सी=स्तम्भित-सी, जड़-तुल्य, हक्का-बक्का, किंकर्त्तव्यविमूढ़। उसास=उच्छ्वास=साँस। रितयौ=खाली करके।

पलकें नहीं चलतीं—एक-टक देख रही हो। हक्का-बक्का हो गई हो (पत्थर की मूरत बन गई हो)। साँस भी थक-सी गई है—साँस भी नहीं चलती—रुक-सी गई है। अभी से-इस किशोर

अवस्था में ही—शरीर को इस प्रकार खाली कर लिया, कहो मन किसके पास भेज दिया ?

नाक चढ़ै सीबी करै जितै छबीली छैल।
फिरि फिरि भूलि वहै गहै प्यौ कँकरीली गैल ॥३००॥

अन्वय—छबीली छैल जितै नाक चढ़ै सीबी करै, प्यौ फिरि-फिरि भूलि वहै कँकरीली गैल गहै।

नाकचढ़ै=नाक चढ़ाकर। सीबी=सीत्कार, सी-सी करना। छैल=नायिका। गहै—पकड़ता है। प्यौ—पिय—नायक। गैल-राह।

वह सुन्दरी नायिका जहाँ पर (अपने कोमल चरणों में कठोर कंकड़ियों के गड़ने से) नाक चढ़ाकर सी-सी करती है (उस समय की उसकी अलौकिक भाव-भंगी पर मुग्ध होकर) प्रीतम पुनः-पुनः भूलकर उसी कंकरीली राह को पकड़ता है—बार-बार उसे उसी राह पर ले जाता है (कि वह पुनः नाक सिकोड़कर 'सी सी' करे !)

चतुर्थ शतक

हितु करि तुम पठयौ लगैं वा बिजना की बाइ।
टली तपनि तन की तऊ चली पसीना न्हाइ ॥३०१॥

अन्वय—तुम हितु करि पठयौ, वा बिजना की बाइ लगैं तन की तपनि टली, तऊ पसीना न्हाइ चली।

पठयौ = पठाया, भेजा। बिजना = पंखा। बाइ = हवा। टली = दूर हुई। तपनि = जलन, ताप। तऊ=तो भी। न्हाइ चली=शराबोर हो गई।

तुमने हित करके (पंखा) भेजा। उस पंखे की हवा लगने से (उसके) शरीर की जलन तो दूर हो गई—शरीर की (विरहाग्नि)

ज्वाला तो शान्त हो गई, तो भी (तुम्हारा प्रेम स्मरण कर) वह पसीने से नहा गई—प्रेमावेश में उसका शरीर पसीने-से तर हो (पसीज) गया।

नाँउ सुनत ही ह्वै गयौ तनु औरे मनु और।
दब नहीं चित चढ़ि रह्यौ अबै चढ़ाएँ त्यौर ॥३०२॥

अन्वय—नाँउ सुनत ही तनु औरै मनु और ह्वै गयो। चित चढ़ि रह्यौ अबै त्यौर चढ़ाएँ नहीं दबै।

दबै = छिपे। चित चढ़ि रह्यौ = हृदय में रम रहा है। चढ़ाएँ त्यौर = त्यौरियाँ (भौंह) चढ़ाने से, क्रोध प्रकट करने से।

(नायक का) नाम सुनते ही (तुम्हारा) शरीर कुछ और हो गया, मन कुछ और हो गया—शरीर और मन (दोनों) में विचित्र परिवर्त्तन हो गया। वह चित्त में चढ़ा हुआ (नायक) का प्रेम अब त्यौरियाँ चढ़ाने से (क्रोध दिखलाने से) नहीं छिप सकता।

नैकौ उहिं न जुदी करी हरषि जु दी तुम माल।
उर तैं बास छुट्यौ नहीं बास छुटै हूँ लाल ॥३०३॥

अन्वय—हरषि जु तुम माल दी, उहिं नैकौ जुदी न करी। लाल बास छुटै हूँ उर तै बास नहीं छुट्यौ।

नैकौं = तनिक भी। उहिं = उसे। जुदी करी = अलग किया, जुदा किया। हरषि जु दी तुम = तुमने जो प्रसन्न होकर दी। बास = बसेरा। बास = गंध।

प्रसन्न होकर जो तुमने (उसे अपनी) माला दी, वह उसे जरा भी अलग नहीं करती। हे लाल! गन्ध के नष्ट हो जाने पर भी (उस माला का) हृदय का वास (स्थान) नहीं छूटा—सूखकर निर्गन्ध हो जाने पर भी वह माला उसके गले में ही विराज रही है।

परसत पोंछत लखि रहतु लगि कपोल कैं ध्यान।
कर लै प्यौ पाटल बिमल प्यारी पठए पान ॥३०४॥

अन्वय—प्यौ बिमल पाटल कर लै, प्यारी पान पठए। परसत पोंछत कपोल कैं ध्यान लगि लखि रहतु।

परसत = स्पर्श करता है, छूता है। लखि रहत = देखता रहता है। ध्यान लगि = ध्यान करके। कर = हाथ। प्यौ = प्रीतम। पाटल = गुलाब का फूल। बिमल = स्वच्छ, सुन्दर। पठए = भेजा।

प्रीतम ने (प्यारी का भेजा हुआ) सुन्दर गुलाब का फूल हाथ में लेकर (बदले में) प्यारी के पास पान भेज दिया। (और इधर प्रेम-वश उस गुलाब के फूल को वह) स्पर्श करता है, पोंछता है और (प्यारी के) गालों का ध्यान करके (उसे एकटक) देखता है।

नोट—नायिका ने गुलाब का फूल भेजा कि इसी गुलाब के रंग के समान मैं तुम्हारे प्रेम में रँगी हूँ। नायक ने उत्तर में पान भेजा कि यद्यपि बाहर से प्रकट नहीं है, तथापि इस पान के छिपे रंग के समान मैं भी तुम्हारे प्रेम-रंग में शराबोर हूँ। प्रेम का रंग लाल (खून) माना जाता है।

मनमोहन सौं मोहु करि तूँ घनस्याम निहारि।
कुंजबिहारी सौं बिहरि गिरिधारी उर धारि ॥३०५॥

अन्वय—तूँ मनमोहन सौं मोहु करि घनस्याम निहारि। कुंजबिहारी सौं बिहरि गिरिधारी उर धारि!

निहारि = देखना। बिहरि = विहार करना। धारि = धारण करना।

(मोह—प्रेम—ही करना है तो) तू मनमोहन से मोह (प्रेम) कर। (देखना ही चाहती है तो) घनश्याम को देख। (विहार

ही करना चाहती है तो) कुंजविहारी के साथ विहार कर, और (धारण ही करना चाहती है तो) गिरिधारी को हृदय में धारण कर।

नोट—मनमोहन, घनश्याम, कुंजविहारी, गिरिधारी आदि श्रीकृष्ण के नाम हैं। सभी नाम उपयुक्त स्थान पर प्रयुक्त हैं—प्रेम करने के लिये मनमोहन, देखने के लिये श्यामसुन्दर, विहार करने के लिये वृन्दावनविहारी और धारण करने के लिये गिरिधारी। कैसा चमत्कार है।

मोहिं भरोसौ रीझिहैं उझकि झाँकि इक बार।
रूप रिझावनहारु वह ए नैना रिझवार ॥३०६॥

अन्वय—मोहिं भरोसो रीझिहैं इकबार उझकि झाँकि। वह रूप रिझावनहार ए नैना रिझवार।

उझकि = उचककर, जरा उठकर। रिझावनहार=चित्त को आकृष्ट करनेवाले। रिझवार = रीझनेवाले, रूप देखकर लुब्ध होनेवाले।

मुझे (पूरा) भरोसा है कि (तुम देखते ही) रीझ जाओगी—(आसक्त हो जाओगी)। एक बार उचककर झाँको—जरा सिर उठा कर देखो तो सही। (नायक का) वह रूप रिझानेवाला है—आसक्त (मोहित) करनेवाला है, और तुम्हारी ये आखें रीझनेवाली हैं—आसक्त (मुग्ध) हो जानेवाली हैं।

कालबूत-दूती बिना जुरै न और उपाइ।
फिरि ताकैं टारै बनै पाकैं प्रेम लदाइ ॥३०७॥

अन्वय—कालबूत-दूती बिना और उपाइ न जुरै, फिरि प्रेम लदाइ पाकैं हारै बनै।

कालबूत = मेहराव बनाने के समय उसके नीचे ईंट, लकड़ी आदि का दिया हुआ भराव जो मेहराब के पुख्ता हो जाने पर हटा दिया जाता है। जुरै = जुटै, जमे। और = दूसरा। टारैं बनौ = अलग करना ही

पड़ता है। पाकैं = पक जाने पर, पक्का हो जाने के बाद। लदाइ = मेहराव का लदाव।

कालबूत रूपी दूती के विना दूसरे उपाय से (प्रेम) नहीं जुड़ता। फिर प्रेम रूपी लदाव (मेहराव) के पक जाने पर—भली भाँति जुट जाने पर—उसे (भराव-रूपी दूती को) अलग करना ही पड़ता है (अर्थात् जब तक पूर्ण रूप से प्रेम स्थापित नहीं हो जाता, तभी तक दूती की आवश्यकता रहती है।)

गोप अथाइनु तैं उठे गोरज छाई गैल।
चलि बलि अलि अभिसारकी भली सँझौखैं सैल ॥३०८॥

अन्वय—गोप अथाइनु तैं उठे गैल गोरज छाई। अलि बलि चलि अभिसार की सँझौखैं सैल भली।

गोप = ग्वाले। अथाइनु = बाहर की बैठक। गोरज = गोधूली, साँझ समय गौओं के घर लौटते समय उनके खुर-प्रहार से उड़नेवाली धूलि। गैल = राह। बलि = बलैया लेना। अभिसार = वह समय जब नायिका छिपकर अपने प्रेमी से संकेतस्थल पर मिलने जाती है। सँझौखैं सैल = संध्या समय की सैर।

गोप लोग (बाहर की) बैठकों से उठ गये। राह में गोधूलि छा गई। सखी! मैं बलैया जाऊँ, चलो अभिसार के लिये साँझ समय की सैर बड़ी अच्छी होती है—(कोई देखने-सुननेवाला रह ही न गया, रास्ता भी गोधूलि से अंधकारमय हो गया है, अतएव प्रीतम से मिलने का यह बड़ा अच्छा अवसर है।

सघन कुंज घन घन तिमिरु अधिक अँधेरी राति।
तऊ न दुरि है स्याम वह दीप-सिखा-सी जाति ॥३०९॥

अन्वय—कुंज सघन, घन घन, अँधेरी राति तिमिर अधिक। तऊ स्याम वह दीप-सिखा सी जाति न दुरि है।

सघन = घना। घन = मेघ। घन = घना तिमिर = अंधकार। तऊ = तोभी। दुरिहै = छिपेगी। दीप-सिखा = दीप-शिखा = दिये की टेम।

कुंज सघन हैं—अत्यन्त घनी हैं। मेघ भी घने हैं—बादल भी खूब उमड़ रहे हैं। फलतः इस अँधेरी रात में अंधकार और भी अधिक हो गया है। तो भी हे श्याम! वह दीपक की लौ के समान (चमकती हुई नायिका) जाती हुई न छिप सकेगी—इतने अंधकार में भी इसकी देह की द्युति देखकर लोग जान ही जायँगे कि वह जा रही है।

फूली-फाली फूल-सी फिरति जु बिमल बिकास।
भोरतरैयाँ होहुतैं चलत तोहि पिय पास ॥३१०॥

अन्वय—जु फूली-फाली फूल-सी विमल विकास फिरति। तोहि पिय पास चलत तैं भोरतरैयाँ होहु।

फूली-फाली = विकसित और प्रफुल्लित। विमल = स्वच्छ। भोर = प्रातःकाल, उषा काल। तरैया = तारे, तारिकायें।

जो (तारकायें) फूल के समान विकसित और प्रफुल्लित स्वच्छ प्रकाश के साथ (आकाश में) फिर रही हैं। प्रीतम के पास तुम्हारे चलते ही (वे सब) भोर की तारिकायें हो जायँगे—तुम्हारे मुखचन्द्र के प्रकाश से वे सब फीकी पड़ जायँ।

उयौ सरद-राका-ससी करति क्यौं न चितु चेतु।
मनौ मदन छितिपाल कौ छाँहगीरु छबि देतु ॥३११॥

अन्वय—सरद-राका-ससी उयौ चितु चेतु क्यों न करति। मनौ मदन-छितिपाल कौ छाँहगीरु छबि देतु।

उयौ = उगा। सरद-राका-ससी = शरद की पूर्णमासी का चंद्र। मदन = कामदेव। छितिपाल = राजा। छाँहगीरु = छत्र। छवि = शोभा।

शरद-ऋतु का पूर्ण चन्द्र उग आया। (फिर भी) चित्त में चेत क्यों नहीं करती—होश में आकर मान क्यों नहीं छोड़ती? (वह चन्द्रमा ऐसा मालूम होता है) मानों मदन-रूपी राजा का छत्र शोभ रहा हो।

निसि अँधियारी नील-पटु पहिरि चली पिय-गेह।
कहौ दुराई क्यौं दुरै दीप-सिखा-सी देह॥३१२॥

अन्वय—अँधियारी निसि नील पटु पहिरि पिय-गेह चली। कहौ दीप-सिखा-सी देह दुराई क्यौं दुरै?

पटु = वस्त्र, साड़ी। गेह = घर। दुराई = छिपाने से। दीप-सिखा = दीप-शिखा = दीये की लौ।

अँधेरी रात में नीली साड़ी पहनकर (गुप्त रूप से मिलने के लिये) प्रीतम के घर को चली, किन्तु कहो तो (उसकी) दीये की लौ के समान (प्रकाशमान) देह छिपाने से कैसे छिपे?

नोट—दोहा नं० ३०९ के अर्थ से इसके भाव का मिलान कीजिये।

छिपैं छिपाकर छिति छुवैं तम ससिहरि न सँभारि।
हँसति हँसति चलि सखिमुखी मुखतैं आँचरु टारि॥३१३॥

अन्वय—छिपाकर छिपैं छिति तम छुवैं न ससिहरि सँभारि। ससिमुखी मुख ते आँचरु टारि हँसति हँसति चलि।

छिपैं = छिप गया। छिपाकर = चन्द्रमा। छिति = पृथ्वी। छुवैं = छू गया। तम = अंधकार। ससिहरि न = सिहिर मत, डर मत। सँभारि = सँभलकर। टारि = हटाकर।

चन्द्रमा छिप गया। पृथ्वी को अंधकार छू रहा है। (किन्तु

इससे अँधेरा हुआ जानकर) तू डर मत, सँभल जा। अरी चन्द्र-मुखी ! मुख से घूँघट हटाकर हँसती-हँसती चल (तेरे मुख और दाँतों की चमक से आप ही पथ में उजाला हो जायगा।)

नोट—यह शुक्लाभिसारिका नायिका है। किन्तु कृष्णाभिसारिका नायिका पर कुछ इसी भाव का एक कवित्त द्विजदेव कवि का है। उसके अन्तिम दो चरण देखिये—"नागरी गुनागरी सु कैसे डरै रैनि डर जाके 'ग सोहैं ये सहायक अनन्द री; वाहन मनोरथ अमा हैं संगवारी सखी मैनमद सुभट मसाल मुखचन्द री।"

अरी खरी सटपट परी बिधु आधैं मग हेरि।
संग लगैं मधुपनु लई भागनु गली अँधेरि ॥३१४॥

अन्वय—अरी आधैं मग बिधु हेरि खरी सटपट परी। संग लगे मधुपनु भागनु गली अँधेरि लई।

खरी = अत्यन्त, अधिक। सटपट परी = सकपकाहट में पड़ गई। मग = रास्ता। हेरि = देखकर। मधुपनु = मधुपों से, मधुपों के कारण। भागनु = भाग्य से। अँधेरि लई = अँधियारी हो गई।

अरी ! आधी राह पर चन्द्रमा को देखकर मैं बहुत सकपकाहट में पड़ गई—ज्योंही आधी राह खतम की थी कि चन्द्रोदय देखकर असमंजस में पड़ गई (कि मैं जाऊँ या नहीं, और यदि जाऊँ, तो कैसे जाऊँ, कहीं कोई देख न ले) किन्तु (शरीर की सुगंध के लोभ से) साथ लगे हुए भौंरों के कारण भाग्य से ही गली में अँधियारी छा गई। (जिससे कोई मुझे नहीं देख सका !)

जुवति जोन्ह मैं मिलि गई नैकु न होति लखाइ।
सौंधे कैं डौरैं लगी अली चली सँग जाइ ॥३१५॥

अन्वय—जुवति जोन्ह मैं मिलि गई, नैंकु न लखाइ होति। सौंधे कैं डौरैं लगी अली संग चली जाइ।

जुवति = जवान स्त्री। जोन्ह = चाँदनी। नैंकु = तनिक। सौंधे = सुगंध। डौरैं लगी = डोर पकड़े, डोरियाई हुई, आश्रय (सहारे) से। अली = सखी।

नवयौवन (नायिका) चाँदनी में मिल गई—उसका प्रकाशमान गौर शरीर चन्द्रमा की उज्वल किरणों में साफ मिल गया—जरा भी नहीं दीख पड़ी! (अतएव, उसकी) सखी सुगंध की डोर पकड़े—उसके शरीर की सुगंध का सहारा लेकर—(पीछे-पीछे) साथ में चली गई।

ज्यौं ज्यौं आवति निकट निसि त्यौं त्यौं खरी उताल।
झमकि झमकि टहलैं करै लगी रहँचटैं बाल ॥३१६॥

अन्वय—ज्यौं ज्यौं निसि निकट आवति त्यौं त्यौं खरी उताल रहँचटैं लगी बाल झमकि झमकि टहलैं करै।

निसि = रात। खरी = अत्यन्त, अधिक। उताल = उतावली, जल्दीबाजी। टहलैं = कामकाज। रहचटैं लगी = लगन-लगी, प्रेम-पगी।

ज्यों-ज्यों रात निकट आती है—ज्यों-ज्यों दिन बीतता जाता और रात पहुँचती जाती है—त्यों-त्यों अत्यन्त उतावली से वह प्रेम में पगी बाला (प्रियतम के मिलन का समय निकट आता जान) झमक-झमककर (ताबड़तोड़) घर की टहलें करती है।

झुकि झुकि झपकौंहैं पलनु फिरि फिरि जुरि जमुहाइ।
बौंदि पियागम नींद मिसि दीं सब अली उठाइ ॥३१७॥

अन्वय—पियागम बौंदि झपकौंहैं पलनु झुकि झुकि फिरि-फिरि जुरि जमुहाइ, नींद मिसि सब अली उठाइ दीं।

झपकौहैं = झपकती (ऊँघती) हुई। पलनु = पलकों से। जमुहाइ = जमुहाई (अँगड़ाई) लेकर। बींदि = (संस्कृत 'विद्' = जानना) जानकर। पियागम = प्रीतम का आगमन। मिसि = बहाना।

(उस नायिका ने) प्रीतम के आगमन (का समय) जान झपकती हुई पलकों से झुक झुककर और बार-बार मुड़ती हुई जमुहाई लेकर नींद के बहाने से सब सखियों को उठा (जगाकर हटा) दिया (सब सखियाँ उसे ऊँघती हुई जानकर चली गईं)।

अँगुरिनु उचि भरु भीति दै उलमि चितै चख लोल।
रुचि सौं दुहूँ दुहूँन के चूमे चारु कपोल ॥३१८॥

अन्वय—अँगुरिनु उचि, भीति भरु दै उलमि लोल चख चितै, दुहूँ रुचि सौ दुहूँन के चारु कपोल चूमे।

उचि = उचककर। भरु = भार। भीति = भित्ति, दीवार। उलमि = उझककर। चख = आँख। लोल = चंचल। रुचि = प्रेम। दुहूँन = दोनों। चारु = सुन्दर। कपोल=गाल।

(पैर की) अँगुलियों पर उचक—अँगुलियों पर खड़ी हो—दीवार पर शरीर का भार दे और उझककर चंचल आँखों से (इधर-उधर) देखकर दोनों ने प्रेम से दोनों के सुन्दर गालों का (परस्पर) चुम्बन किया।

नोट—नायिका और नायक के बीच में उन दोनों से कुछ ऊँची दीवार थी। उस समय उन दोनों ने जिस कौशल से परस्पर चुम्बन किया था, उसी का वर्णन इस दोहे में है।

चाले की बातैं चलीं सुनत सखिनु कैं टोल।
गोपैंहू लोचन हँसत बिहँसत जात कपोल ॥३१९॥

अन्वय—सखिनु कैं टोल चाले की बातैं चलीं सुनत गोएँहू लोचन हँसत कपोल बिहँसत जात।

चाले = गौना। बातैं चली = चर्चा छिड़ी। टोल = टोली, गोष्ठी, झुंड। गोएँहू = छिपाने पर भी। लोचन = आँखें। बिहँसत = खिलते।

सखियों की टोली में 'गौने की बातचीत चल रही है'—यह खबर सुनकर (प्रसन्नता को) छिपाने (की चेष्टा करने) पर भी (प्रीतम के मिलन के उत्साह में नायिका की) आँखें हँसती हैं, और गाल खिलते जाते हैं—यद्यपि लाज के मारे खुलकर नहीं हँसती, तथापि उसकी आँखों में और गालों पर आनन्द का प्रभाव (विकास) स्पष्ट दीख पड़ता है।

मिसिहीं मिसि आतप दुसह दई और बहकाइ।
चले ललन मनभावतिहिं तन की छाँह छिपाइ ॥३२०॥

अन्वय—मिसि-ही-मिसि दुसह आतप और बहकाइ दई, ललन मनभावतिहिं तन की छाँह छिपाइ चले।

मिसि = बहाना। आतप = धूप। और = औरों को। दुसह = नहीं सहने योग्य। मनभावतिहिं = चहेती स्त्री के पास। छाँह = छाया।

बहाने-ही-बहाने में (उस) कड़ी धूप में दूसरी (सखियों) को बहका दिया—उस स्थान से हटा दिया। फिर ललन (श्रीकृष्ण) प्यारी (राधिका) को शरीर की छाया में छिपाकर (जिससे उसे धूप न लगे) चल पड़े। (अद्भुत आलिंगन!)

लाई लाल बिलोकियै जिय की जीवन-मूलि।
रही भौन के कोन मैं सोनजुही-सी फूलि ॥ ३२१ ॥

अन्वय—लाल लाई जिय की जीवन मूलि बिलोकियै। भौन के कोन मैं सोनजुही-सी फूलि रही।

लाई = ले आई। जिय = प्राण। जीवनमूलि = संजीवनी बूटी। भौन = घर। सोनजुही = पीली चमेली। फूलि = प्रफुल्ल, प्रसन्न।

हे लाल! मैं बुला लाई हूँ, अपने प्राण की संजीवनी बूटी को देखिये – जिसके लिये आपके प्राण निकल-से रहे थे, उस (प्राण-संचारिणी) नवयुवती को देखिये। (उधर) घर के कोने में वह पीली चमेली के समान फूल रही है—पीली चमेली के समान देहवाली वह युवती आपकी प्रतीक्षा में आनन्द-विभोर हो खड़ी है।

नहिं हरि-लौं हियरो धरौ नहिं हर-लौं अरधंग।
एकत ही करि राखियै अंग अंग प्रत्यंग ॥३२२॥

अन्वय—नहिं हरि लौं हियरो धरौ नहिं हर-लौं अरधंग। प्रत्यंग अंग-अंग एकत करि ही राखियै।

हरि = विष्णु। लौं = समान। हियरो = हृदय में। हर = महादेव। अरधंग = आधा अंग। एकत = एकत्र। प्रत्यंग = प्रति अंग।

न तो विद्या के समान (इस नायिका को लक्ष्मी की तरह) हृदय से लगाकर रक्खो, और न शिव के समान (इसे पार्वती की भाँति) अर्द्धांगिनी (बनाकर रक्खो)। (वरन् इसके) प्रत्येक अंग को (अपने) अंग-अंग से एकत्र (सटा) करके ही रक्खो (इसे अपने में इस प्रकार लीन बना लो कि इसका अस्तित्व ही न रह जाय)।

रही पैज कीनी जु मैं दीनी तुमहिं मिलाइ।
राखहु चम्पक माल लौं लाल हियैं लपटाइ ॥३२३॥

अन्वय—मैं जु पैज कीनी रही, तुम्हैं मिलाइ दीनी। लाल चम्पक-माल लौं हियैं लपटाइ राखौ।

पैज = प्रतिज्ञा। चम्पक = चम्पा। हियैं = हृदय में।

मैंने जो प्रतिज्ञा की थी सो रह गई—पूरी हो गई—तुमसे (इस

नायिका को) मिला दिया। अब हे लाल! इसे चम्पे की माला के समान अपने गले में लिपटाकर रक्खो।

रही फेरि मुँह हेरि इत हितु-समुहैं चितु नारि।
डीठि परत उठि पीठ की पुलकैं कहैं पुकारि ॥३२४॥

अन्वय--मुँह फेरि इत हेरि रही नारि चितु हितु समुहैं डीठि परत पीठि की पुलकैं उठि पुकारि कहैं!

हेरि=देखना। इत=इधर, मेरी ओर। हित-समुहैं=प्रेमी के सामने। चित=हृदय। डीठि=दृष्टि, नजर। पुलकैं=रोमांच।

मुँह फेरकर इधर देख रही हो (किन्तु) हे बाले! (तुम्हारा) चित्त तो अपने प्रेमी के सामने है। यद्यपि तुम मेरी ओर देख रही हो, किन्तु तुम्हारा मन सामने खड़े हुए नायक की ओर है। (नायक की) नजर पड़ते ही (प्रेमावेश में तुम्हारी) पीठ की पुलकें उठकर (पीठ के रोंगटे खड़े होकर) यह बात पुकार-पुकार कर कह रही हैं।

दोऊ चाह भरे कछू चाहत कह्यौ, कहैं न।
नहि जाँचकु सुनि सूम लौं बाहिर निकसत बैन ॥३२५॥

अन्वय—दोऊ चाह भरे कछू कह्यौ चाहत कहैं न, जाँचकु सुनि सूम लौं बाहिर बैन नहिं निकसत।

चाह=प्रेम। सूम=कंजूस, कृपण, धरकट। जाँचकु=भिक्षुक, मँगता। लौं=समान। बैन=वचन।

दोनों चाह से भरे—प्रेम में पगे—(एक दूसरे की) कुछ कहना चाहते हैं, किन्तु कह नहीं सकते। याचक आने की खबर सुनकर सूम के समान उनके वचन बाहर नहीं निकलते—जिस प्रकार याचक के आने की खबर सुनकर सूम घर से बाहर नहीं

निकलता, उसी प्रकार उन दोनों के वचन भी मुख से बाहर नहीं होते।

लहि सूनैं घर करु गहत दिखादिखी की ईठि।
गड़ी सुचित नाहीं करति करि ललचौंही डीठि॥३२६॥

अन्वय—दिखादिखी ईठि सूने घर लहि करु गहत। डीठि ललचौंहीं करि नाहीं करति सुचित गड़ी।

लहि=पाकर। सूने = शून्य, एकान्त, अकेला। करु = हाथ। ईठि= इष्ट, प्रेम। ललचौंहीं = ललचानेवाली।

(उसकी मेरी) देखादेखी की ही प्रीति थी—बातें तक नहीं हुई थीं, केवल वह मुझे देखती थी, और मैं उसे देखता था, इसी में प्रेम हो गया था। (एक दिन) सूने घर में (उसे) पाकर (मैंने उसकी) बाँह पकड़ी। उस समय वह आँखें ललचौंही बनाकर 'नाहीं-नाहीं' करती हुई मेरे चित में गड़ गई—बाँह पकड़ते ही अभिलाषा-भरी आँखों से उसने जो 'नहीं-नहीं' की सो हृदय में गड़ रही है।

गली अँधेरी साँकरी भौ भटभेरा आनि।
परे पिछाने परसपर दोऊ परस पिछानि॥३२७॥

अन्वय—साँकरी अँधेरी गली आनि भटभेरा भौ। परस-पिछानि दोऊ परसपर पिछाने परे।

साँकरी=तंग, पतली। भौ भटभेरा = मुठभेड़ हुई, टक्कर लड़ी। आनि=आकर। पिछाने = पहचाने। परस-पिछानि=स्पर्श की पहचान से।

(नायिका नायक से मिलने जा रही थी, और नायक नायिका से मिलने आ रहा था कि इतने ही में) पतली और अँधेरी गली में आकर (दोनों की) मुठभेड़ हो गई—एक दूसरे से टकरा

गये। (और टकराते ही शरीर के) स्पर्श की पहचान से दोनों परस्पर पहचाने गये—एक दूसरे को स्पर्श करके ही एक दूसरे को पहचान गया।

हरषि न बोली लखि ललनु निरखि अमिलु सँग साथु।
आँखिनु ही मैं हँसि धर्‌यौ सीस हियै धरि हाथु ॥३२८॥

अन्वय—सँग साथु अमिल निरखि ललनु लखि हरषि बोली न। आँखिनु मैं ही हँसि हाथ हियै धरि सीस धर्‌यौ।

ललन = प्यारे, श्रीकृष्ण। अमिल = बेमेल, अनजान। हियै = हृदय।

संगी साथियों को अपरिचित जान श्रीकृष्ण को देखकर प्रसन्न होने पर भी कुछ बोली नहीं। हाँ, आँखों में ही हँसकर (अपना) हाथ (पहले) हृदय पर रख (फिर उसे) सिर पर रक्खा—(अर्थात्) हृदय में बसते हो, प्रणाम करती हूँ! (ख़ासी सलामी दगी!)

भेटत बनै न भावतो चितु तरसतु अति प्यार।
धरति लगाइ लगाइ उर भूषन बसन हथ्यार ॥३२९॥

अन्वय—भावतो भेटत ज बनै अति प्यार चितु तरसतु, भूषन बसन हथ्यार उर लगाइ-लगाइ धरति।

भावतो = प्यारे। तरसत = ललचता है। बसन = कपड़े। उर=हृदय।

अपने प्यारे से भेंटते नहीं बनता-दिन होने के कारण गुरुजनों के सम्मुख भेंट नहीं कर पाती—और अत्यन्त प्रेम के कारण चित्त तरस रहा है। (अतएव उनके) गहनों, कपड़ों और हथियारों को हृदय से लगा-लगाकर रखती है।

नोट—सैनिक पति बहुत दिनों पर घर लौटा है, दिन होने के कारण वह बाहर की बैठक में ही रह गया और अपने आभूषण, वस्त्र

और अस्त्र-शस्त्र घर भेज दिये। उस समय उसकी स्त्री की दशा का वर्णन इस दोहे में है।

कोरि जतन कोऊ करौ तन की तपनि न जाइ।
जौ लौं भीजे चीर लौं रहै न प्यौ लपटाइ ॥३३०॥

अन्वय—कोरि जतन कोऊ करौ तन की तपनि न जाइ जौ लौं भीजे चीर लौं प्यौ लपटाइ न रहै।

कोरि = करोड़। तपनि = ताप, ज्वाला। जौलौं = जब तक। भीजे चीर = तर या गीला कपड़ा। लौं = समान। प्यौ = प्रिय, प्रीतम।

करोड़ों यत्न कोई क्यों न करो, किन्तु उस (वियोगिनी) के शरीर की ज्वाला न जायगी—(विरहाग्नि) नहीं शान्त होगी। जब तक कि भीगे हुए चीर के समान (उसका) प्रीतम (उससे) लपटकर न रहे।

तनक झूँठ नसवादिली कौन बात परि जाइ।
तिय मुख रति-आरम्भ की नहिं झूठियै मिठाइ ॥३३१॥

अन्वय—तनक झूठ नसवादिली बात पर कौन जाइ। तिय मुख रति-आरम्भ की झूठियै नहिं मिठाइ।

तनक = थोड़ा। नसवादिली=निस्वादु, बेमजा। तिय = स्त्री। रति= समागम, सम्भोग। मिठाइ = मीठी लगती है। झूठियै=झूठी भी।

"थोड़ा झूठ भी बेमजा है"—(इस) बात पर कौन जाय—कौन भूले। स्त्री के मुख से समागम के आरम्भ में (निकली हुई) झूठी 'नहीं' भी मीठी लगती है।

नोट—दुलहिन की 'नाहीं' पर कविवर दूलह कहते हैं—"धरी जब बाहीं तब करी तुम नाहीं, पाय दियो पलँगाही नाहीं-नाहीं कै सुहाई हौ। बोलत में नाहीं, पट खोलत में नाहीं, 'कवि दूलह' उछाहीं लाख भाँतिन

लखाई हौ। चुम्बन में नाहीं, परिरंभन में नाहीं, सब हासन विलासन में नाहीं ठ कीठाई हौ। मेलि गलबाहीं केलि कीन्हो चितचाहीं, यह 'हाँ' ते भली 'नाहीं' सो कहाँ ते सीख आई हौ ?"

भौंहनु त्रासति मुँह नटति आँखिनु सौं लपटाति।
ऐंचि छुड़ावति करु इँची आगैं आवति जाति ॥३३२॥

अन्वय—भौंहनु त्रासति मुँह नटति आँखिनु सौं लपटाति, ऐंचि करु छुड़ावति इँची आगैं आवति जाति।

त्रासति = डरवाती है। नटति = नहीं-नहीं (इनकार) करती है। ऐंचि = खींचकर। इँची = खिचती। आगे आवति जाति = सामने वा पास चली आती है।

भौंहों से डरवाती है—भौंहें टेढ़ी कर क्रोध प्रकट करती है। मुख से 'नहीं-नहीं' करती है। आँखों से लिपटती है—प्रेम प्रकट करती है। (और) खींचकर (अपना) हाथ (मेरे हाथ से) छुड़ाती हुई भी (वह स्वयं) खिचती हुई आगे ही आती जाती है—यद्यपि वह बाँह छुड़ाकर भागने का बहाना करती है, तो भी मेरी ओर बढ़ती आती है।

दीप उजेरैं हू पतिहिं हरत बसनु रति काज।
रही लिपटि छबि की छटनु नेकौं छुटी न लाज ॥३३३॥

अन्वय—दीप-उजेरैं हू रति-काज पतिहिं बसनु हरतु, छवि की छटनु लिपटि रही, लाज नेकौं न छुटी।

उजेरैं हू = उजाले में भी। बसनु = वस्त्र, साड़ी। रति-काज = सहवास (समागम) के लिये। छटनु = छटा से। नेकौं = जरा भी।

दीपक के उजाले में भी समागम के लिये पति उसके वस्त्र हरण कर रहा है—शरीर से कपड़े हटा रहा है। किन्तु सौंदर्य की

छटा से--शरीर की शोभाजनित आभा से—लिपटी रहने के कारण उसकी लाज जरा भी न छुटी (यद्यपि वस्त्र हटा दिया गया, तो भी उसके शरीर की द्युति में नायक की आँखें चौंधिया गईं, जिससे उसे नग्नता की लाज न उठानी पड़ी !)

लखि दौरत पिय-कर-कटकु बास छुड़ावन काज।
बरुनी बन गाढ़ैं दृगनु रही गुढ़ौ करि लाज ॥३३४॥

अन्वय—बास छुड़ावन काज पिय-कर-कटकु दौरत लखि बरुनी गाढ़ैं बन दृगनु लाज गुढ़ौ करी।

कर = हाथ। कटकु = सेना। वास = (१) वस्त्र (२) निवास-स्थान। बरुनी = पलक के बाल। गाढ़ै = सघन। दृगनु = आँखों। गुढ़ौ करि = किला बनाकर।

वस्त्र (रूपी निवास-स्थान या देश) छुड़ाने के लिये प्रीतम के हाथ-रूपी सेना को दौड़ते (ताबड़तोड़ वस्त्र हरण करते) देख कर बरुनी-रूपी सघन वन में (बने हुए) आँखों को किला बना कर छिप रही—(समूचे शरीर से सिमटकर लाज आँखों में आ छिपी !)

नोट—अत्यन्त लज्जा से स्त्रियाँ आँखें बन्द कर लेती हैं। जबर्दस्ती नग्न किये जाने पर स्वभावतः उनकी आँखें बन्द हो जातीं हैं।

सकुचि सरकि पिय निकट तैं मुलकि कछुक तनु तोरि।
कर आँचर की ओट करि जमुहानी मुँह मोरि ॥३३५॥

अन्वय—सकुचि पिय निकट तैं सरकि तनु तोरि कछुक मुलकि। कर आँचर की ओट करि मुँह मोरि जमुहानी।

सकुचि = लजाकर। सरकि = सरककर, हटकर। मुलकि =

मुस्कुराकर। तनु तोरि = अँगड़ाई लेकर। कर = हाथ। जमुहानी = जमुहाई ली, देह को ऐंठा। मुख मोरि = मुह फेरकर।

(समागम के बाद) लजाकर प्रीतम के निकट से कुछ दूर हट, अँगड़ाई लेकर कुछ मुस्कुराई, तथा हाथ और आँचल की ओट कर, मुख फेरके जँभाई ली।

सकुच सुरत आरंभ हीं बिछुरी लाज लजाइ।
ढरकि ढार दुरि ढिग भई ढीठि ढिठाई आइ॥३३६॥

अन्वय—सकुच सुरत आरम्भ हीं लाज लजाइ बिछुरी। ढीठि ढिठाई आइ ढार दुरि ढरकि ढिग भई—अथवा—ढीठि ढिठाई ढरकि ढार दुरि आइ ढिग भई।

सकुच = (१) सकुचाकर। (२) कुच-सहित। ढरकि = ढरककर, खसककर। ढार दुरि = अनुकूल या प्रसन्न हो।

(१) सकुचाकर समागम के आरम्भ में ही (वह नायिका) लाज से लजाकर दूर हट गई; किन्तु ढीठ ढिठाई के आने पर वह सहर्ष खिसककर निकट आ गई—(पहले लज्जावश अलग हट गई; पर जब ढिठाई ने उत्साहित किया, तब पास चली गई)। अथवा—(२) कुच-स्पर्श के साथ समागम के आरम्भ होते ही लज्जा (बेचारी) लजाकर दूर हो गई (लाज जाती रही) और धृष्ट धृष्टता खिसक कर, प्रसन्न हो, निकट आकर उपस्थित हुई—(लजीली लाज भगी और शोख ढिठाई सामने आई)

पति रति की बतियाँ कहीं सखी लखी मुसकाइ।
कै कै सबै टलाटली अली चलीं सुख पाइ॥३३७॥

अन्वय—पति रति की बतियाँ कहीं सखी मुसुकाइ लखी। सबै अली टलाटली कै कै सुख पाइ चलीं।

रति = समागम। लखी = देखी। टलाटली = टालमटूल, बहाना। अली = सखियाँ। सुख पाइ = सुखी (प्रसन्न) होकर।

पति ने (इशारे से) रति की बातें कहीं, (इसपर नायिका ने) सखियों की ओर मुस्कुराकर देखा। (मर्म समझकर) सब सखियाँ टालमटूल कर-करके प्रसन्न हो (वहाँ से) चल दीं।

चमक तमक हाँसी ससक मसक झपट लपटानि।
ए जिहि रति सो रति मुकुति और मुकुति अति हानि॥

अन्वय—(ज्यों का त्यों)

चमकना और तमकना—कभी चिहुँक उठना और कभी क्रोधित हो जाना, हँसना और सिसकना—कभी मजा पाने पर हँस पड़ना और कभी जोर पड़ने पर कष्ट से सी-सी करना; मसकना और झपटकर लपटाना—शरीर के मर्दित किये जाने पर बार-बार गले से लिपट जाना; ये सब भावभंगियाँ जिस समागम में हों, वही समागम (वास्तव में) मोक्ष है (मोक्ष-तुल्य आनन्दप्रद है), और प्रकार के मोक्ष में तो अत्यन्त हानि (बड़ा घाटा) है।

नोट—बिहारी ने इसमें समागम-समय की पूरी तस्वीर तो खींच ही दी है, साथ ही शब्द-संगठन ऐसा रक्खा है कि यह योगियों के ब्रह्मानन्द पर भी पूर्ण रूप से घटता है। योगी भी ब्रह्मानन्द में मस्त हो कभी चौंक उठते हैं, कभी उत्तेजित हो जाते हैं, कभी हँस पड़ते हैं, कभी रो पड़ते हैं, कभी भाव-विह्वलता के कारण झपट कर (ध्यानस्थ इष्टदेव से) लिपटने की चेष्टा करते हैं। वही परमानन्दमय 'कैवल्य-परमपद' वास्तविक मोक्ष है, अन्य प्रकार के मोक्ष व्यर्थ हैं।

जदपि नाहिं नाहीं नहीं बदन लगी जक जाति।
तदपि भौंह हाँसी—भरिनु हाँसीयै ठहराति॥३३६॥

अन्वय—जदपि बदन नाहिं नाहीं नहीं जक लगी जाति, तदपि हाँसी-भरिनु भौंह हाँ-सीयै ठहराति।

वदन=मुख। जक=रटन, आदत। हाँसी भरिनु भौंह=प्रसन्न भौंह, आनन्द-द्योतक भौंह। हाँ-सीयै=हाँके समान ही। ठहराति=जान पड़ती है।

यद्यपि (नायिका के) मुख में 'नहीं-नहीं नहीं' की ही रट लग जाती है—वह सदा 'नहीं-नहीं' (इनकार) ही करती जाती है, तथापि हँसी-भरी हुई (विकसित) भौंहों के कारण (नहीं-नहीं भी) 'हाँ' के समान ही जान पड़ती है—'हाँ' के समान ही सुखदायक मालूम होती है।

पर्‍यौ जोरु बिपरीत-रति रुपी सुरति रनधीर।
करत कुलाहलु किंकिनी गह्यौ मौनु मंजीर॥३४०॥

अन्वय—बिपरीत-रति जोरु पर्‍यौ, धीर सुरति रन रुपी। किंकिनी कुलाहलु करत, मंजीर मौनु गह्यौ।

विपरीत रति=(समागम-काल में) नायक नीचे और नायिका ऊपर। रुपी=पैर रोपे (जमाये) हुई है, डटी है। सुरति=समागम। रन=युद्ध। किंकनी=कमर में पहनने की एक घुँघरूदार आभूषण, करधनी। मौन गह्यो=मौनावलम्बन, चुप साधे रहना। मंजीर=पाँवों में पहनने का एक रुनझुनकारी गहना, नूपुर।

विपरीत रति में खूब जोर पड़ रहा है—जोरों के साथ विपरीत रति जारी है। वह धीरा समागम-रूपी युद्ध में डटी है। (अतएव, कमर की) किंकनी शोर कर रही है, और (पाँवों के) नूपुर मौन पकड़े हुए (चुप) हैं।

नोट—विपरीत-रति में नायिका की कटि चंचल (क्रियाशील) है, इसलिये किंकनी बज रही है, और पैर (जमे हुए) स्थिर हैं, इसलिये नूपुर चुप हैं।

बिनती रति बिपरीत की करी परसि पिय पाइ।
हँसि अनबोलैं ही दियौ ऊतरु दियौ बुताइ ॥३४१॥

अन्वय—पिय पाइ परसि बिपरीत रति की बिनती करी, अनबोलैं ही हँसि दियौ बुताइ ऊतरु दियौ।

परसि = स्पर्श कर, छूकर। प्रिय = प्रीतम। पाइ = पैर। अनबोलैं ही = विना कुछ कहे ही। ऊतरु दियौ = जवाब दिया। दियौ बुताइ = दीपक बुझाकर।

प्रीतम ने (नायिका के) पैर छूकर विपरीत रति के लिये बिनती की। (इसपर नायिका ने) विना कुछ मुँह से बोले ही (केवल) हँसकर दीपक बुताकर उत्तर दे दिया (कि मैं तैयार हूँ, लीजिये—चिराग भी गुल हुआ!)

मेरे बूझत बात तूँ कत बहरावति बाल।
जग जानी बिपरीत-रति लखि बिंदुली पिय-भाल ॥३४२॥

अन्वय—मेरे बूझत बाल तूँ कत बात बहरावति। पिय-भाल बिंदुली लखि जग जानी बिपरीत रति।

कत = क्यों। बहरावति = बहलाती है, चकमा देती है। जग जानी—दुनिया जान गई। बिंदुली = टिकुली या चमकी या सितारा।

मेरे पूछने पर अरी बाला! तू क्यों चकमा देती है? प्रीतम के ललाट में (तेरी) टिकुली देखकर संसार जान गया कि (तुम दोनों ने) विपरीत रति की है।

नोट—विपरीत-रति में ऊपर रहने के कारण नायिका की टिकुली गिर कर नीचे पड़े हुए नायक के ललाट पर सट गई।

राधा हरि हरि राधिका बनि आए संकेत।
दम्पति रति-बिपरीत-सुखु सहज सुरत हूँ लेत ॥३४३॥

अन्वय—संकेत राधा हरि, हरि राधिका बनि आए। सहज सुरतहूँ दम्पति बिपरीत रति सुखु लेत।

बनि आए=बनकर आये, रूप धरकर आये। संकेत=गुप्त मिलन का पूर्व-निश्चित स्थान। दम्पति=स्त्री-पुरुष दोनों संयुक्त। सहज=स्वाभाविक। सुरत=समागम। हूँ=भी।

गुप्त मिलन के स्थान पर राधा कृष्ण का (रूप धरकर आई) और कृष्ण राधा का रूप धरकर आये (अतएव, इस रूप-बदलौअल के कारण) स्वाभाविक समागम में दम्पति (राधा और कृष्ण—दोनों) विपरीत रति का सुख ले रहे हैं।

नोट—कृष्ण के वेष में राधा ऊपर और राधा के वेष में कृष्ण नीचे हैं। परिवर्तित रूप के अनुसार तो स्वाभाविक रति है। पर वास्तव में विपरीत रति ही है।

रमन कह्यौ हठि रमनि कौं रति बिपरीत बिलास।
चितई करि लोचन सतर सलज सरोस सहास ॥३४४॥

अन्वय—रमन हठि बिपरीत-रति बिलास रमन कौं कह्यौ, लोचन सतर सलज सरोस सहास करि चितई।

सतर=तिरछी। सलज=लज्जा-सहित, लजीली। सरोस=क्रोध-सहित, रोषीली, लाल। सहास=हास-युक्त, हँसीली, प्रफुल्ल।

रमण (श्रीकृष्ण) ने हठ करके (राधा से) विपरीत-रति के विलास में (रमने) कहा। (इसपर राधा ने) अपनी आँखों को तिरछी, लजीली, रोसीली और हँसीली बनाकर (श्रीकृष्ण) की ओर देखा।

रँगी सुरत-रँग पिय-हियै लगी जगी सब राति।
पड़ पैंड़ पर ठठुकि कै ऐंड़ भरी ऐंड़ाति ॥३४५॥

अन्वय—सुरत-रँग-रँगी पिय-हियैं लगी सब राति जगी। पैंड़ पैंड़ पर ठठुकि कै ऐंड-भरी एँड़ाति।

सुरत = समागम, रति। हियैं लगी = हृदय से सटी हुई। पैंड़ पैंड़ = पग-पग पर। ठठुकि कै=ठिठककर, रुक-रुककर। एँड़-भरी=सौभाग्य-गर्व से भरी। ऐंड़ति = अँगड़ाई लेती है, देह ऐंठती है।

समागम के रँग में रँगी प्रीतम के हृदय से लगी सारी रात जगी है। (अतएव, दिन में आलस के मारे) ढ़ग-पग पर ठिठक-ठिठककर गर्व से अँगड़ाई ले रही है।

लहि रति-सुखु लगियै हियैं लखी लजौंही नीठि।
खुलत न मो मन बँधि रही वहै अधखुली डीठि॥३४६॥

अन्वय—रति-सुखु लहि हियैं लगियै, लजौंही नीठि लखी, वहै अधखुली डीठि मो मन बँधि रही खुलत न।

रतिसुखु = समागम का सुख। हियैं=हृदय में। लजौंही = लजीली। नीठि=मुश्किल से। मो = मेरे। मन बँधि रही = मन में बस रही है।

समागम का सुख पाकर हृदय से लग गई और लजीली (आँखों से) मुश्किल से (मेरी ओर) देखा। उस समय को उसकी वह अधखुली नजर मेरे मन से बँध रही है, खुलती नहीं—उसकी लजीली और अधखुली नजरों से देखना मुझे नहीं भूलता।

करु उठाइ घूँघटु करत उझरत पट गुझरौट।
सुख मोटैं लूटीं ललन लखि ललना की लौट॥३४७॥

अन्वय—करु उठाइ घूँघटु करत गुझरौट पट उझरत, ललना की लौट लखि ललन सुख मोटैं लूटीं।

उझरत = सरक जाने से। पट गुझरौट = सिकुड़ा हुआ वस्त्र। मोटैं=

गठरियाँ। ललन = नायक। ललना = नायिका। लौट = अदा से घूम जाना।

हाथ उठाकर घूँघट करते समय सिकुड़े हुए कपड़ों के सरक जाने से नायिका का (नायक से लजाकर) घूम जाना देखकर नायक ने सुख की मोटरियाँ लूटीं – (सुख का खजाना पा लिया।)

हँसि ओठनु बिच कर उचै कियैं निचौं है नैन।
खरैं अरैं पिय कैं प्रिया लगी बिरी मुख दैन ॥३४८॥

अन्वय--ओठनु बिच हँसि, कर उचै, नैन निचौंहैं कियैं, प्रिया खरैं अरैं पिय कैं मुख बिरी दैन लगी।

उचै = ऊँचा कर। निचौंहैं = नीचे की ओर। खरे = अत्यन्त। अरे = हठ किये (अड़े) हुए। बिरी = पान का बीड़ा। दैन लगी = देने लगी।

(प्रीतम ने प्यारी के हाथों से पान खाने का हठ किया, इस पर) ओठों के बीच में हँसकर—कुछ मुस्कुराकर—हाथ ऊँचा कर और आँखें नीची किये प्यारी अत्यन्त हठ किये हुए प्रीतम के मुख में पान का बीड़ा देने लगी।

नाक मोरि नाहीं ककै नारि निहोरैं लेइ।
छुवत ओंठ बिय आँगुरिनु बिरी बदन प्यौ देइ ॥३४९॥

अन्वय—नाक मोरि नाहीं ककै नारि निहोरैं लेइ आँगुरिनु बिय ओंठ प्यौ बदन बिरी देइ।

नाक मोरि = नाक सिकोड़कर। ककै = करके। नारि = स्त्री, नायिका। निहोरे = आग्रह या अनुनय-विनय करने पर। बिय = दोनों। बिरी = पान का बीड़ा। बदन = मुख। प्यौ = प्रीतम, नायक।

नाक सिकोड़कर नहीं-नहीं करके नायिका निहोरा करने पर

(बीड़ा) लेती है, और नायक अँगुलियों से दोनों ओंठ छूते हुए नायिका के मुख में पान का बीड़ा देता है।

नोट—दोनों नजाकत से भरे हैं। नायिका लेते समय नहीं-नहीं करती है, तो नायक देते समय उसके कोमल गुलाबी ओंठ को ही छू लेता है।

सरस सुमिल चित तुरँग की करि-करि अमित उठान।
गोइ निबाहैं जीतियै प्रेम-खेलि-चौगान ॥३५०॥

अन्वय—सरस सुमिल चित तुरँग की अमित उठान करि करि गोइ निबाहैं प्रेम खेलि चौगान जीतियै।

सरस = 'प्रेम' के अर्थ में 'रसयुक्त' और 'घोड़े' के अर्थ में 'पुष्ट'। समिल = (१) मिलनसार (२) जो सवार के इच्छानुसार दौड़े। अमित = अनेक। उठान = धावा। गोइ निबाहैं = (१) छिपाकर निबाहने से (२) छिपाकर 'गोल' (लक्ष्य) तक ले जाने से। चौगान-खेल = घोड़े पर चढ़कर गेंद खेलना।

रसयुक्त (पुष्ट) और मिलनसार चित्त-रूपी घोड़े के अनेक अनेक धावे कर-करके छिप-छिपाकर निर्वाह करने ('गोल' लक्ष्य तक ले जाने) से ही प्रेम-रूपी चौगान के खेल में जीत सकोगे।

दृग मिहचत मृगलोचनी भऱ्यौ उलटि भुज बाथ।
जानि गई तिय नाथ के हाथ परस ही हाथ ॥३५१॥

अन्वय—दृग मिहचत मृगलोचनी भुज उलटि बाथ भऱ्यौ हाथ परस ही तिय जानि गई नाथ के हाथ।

दृग = आँख। मिहचत = मूँदना। मृगलोचनी = वह स्त्री जिसके नेत्र मृग के नेत्र-से बड़े-बड़े हों। बाथ = अँकवार। परस = स्पर्श।

आँखें मूँदते ही—ज्यों ही प्रीतम ने पीछे से आकर उसकी आँखें बन्द कीं—त्यों ही उस मृगलोचनी ने (अपनी) भुजाएँ उलट

कर उसे (निस्संकोच) अँकवार में भर लिया। (क्योंकि) हाथों के स्पर्श होते ही युवती जान गई कि (ये) प्रीतम के ही हाथ हैं।

प्रीतम दृग मिहचत प्रिया पानि-परस सुखु पाइ।
जानि पिछानि अजान लौं नैंकु न होति जनाइ ॥३५२॥

अन्वय—प्रिया दृग मिहचत पानि परस सुखु पाइ प्रीतम जानि पिछानि अजान लौं नैंकु न जनाइ होति।

पानि-परस = पाणि-स्पर्श = हाथ का स्पर्श। पिछानि = पहचान कर। अजान = अज्ञ, अनभिज्ञ। लौं = समान। नैंकु = जरा, तनिक। न होति जनाइ = प्रकट नहीं करता, परिचय नहीं बतलाता।

प्रिया (नायिका) द्वारा आँखों के बन्द किये जाने पर (उसके कोमल) हाथों के स्पर्श का सुख पाकर प्रीतम (उसे भली भाँति) जान और पहचानकर भी अजान के समान तनिक प्रकट नहीं होता (यह प्रकट नहीं करता कि तू कौन है, क्योंकि कर-स्पर्श-जन्य सुख मिल रहा है।)

कर मुँदरी की आरसी प्रतिबिम्बित प्यौ पाइ।
पीठ दियैं निधरक लखै इकटक डीठि लगाइ ॥३५३॥

अन्वय—कर मुँदरी की आरसी प्यौ प्रतिबिम्बित पाइ पीठ दियैं इकटक डीठि लगाइ निधरक लखै।

मुँदरी = अँगूठी। आरसी = दर्पण, नगीना। प्यौ = पिया, प्रीतम। पीठ दियैं = मुँह फेरकर बैठी हुई। निधरक = बेधड़क, स्वच्छन्दता से।

अपने हाथ की अँगूठी के (उज्वल) नगीने में प्रीतम का प्रतिबिम्ब देख (वह नायिका, प्रीतम की ओर) पीठ करके एकटक दृष्टि लगाकर (उस नगीने में झलकती हुई प्रीतम-छवि को) बेधड़क

देख रही है—नगीने में प्रतिबिम्बित प्रीतम की मूर्त्ति देखकर ही प्रिय-दर्शन का आनन्द लूट रही है।

नोट—नायिका बैठी थी, नायक चुपचाप आकर उसके पीछे खड़ा हो गया। उसी समय का वर्णन है। 'रामचरित-मानस' में भी इसी प्रकार का एक वर्णन है—

निज-पानि-मनि महँ देखि प्रति-मूरति सु कृपानिधान की।
चालति न भुज-बल्ली-विलोकनि विरह-बस-भइ जानकी॥

मैं मिसहा सोयौ समुझि मुँहु चूम्यौ ढिग जाइ।
हँस्यौ खिस्यानी गल रह्यौ रही गरैं लपटाइ॥३५४॥

अन्वय—मैं मिसहा सोयो समुझि ढिग जाइ मुँहु चूम्यौ. हँस्यौ खिस्यानी गल गह्यौ, गरै लपटाइ रही।

मिसहा = मिस करनेवाला, बहानेबाज, छली। ढिग = निकट। खिस्यानी = लज्जित हो गई। गल गह्यौ = गलबहियाँ डाल दी। गरैं = गले से।

मैंने उस छलिये को सोया हुआ जान निकट जाकर उसका मुँह चूमा। (इतने ही में वह जगा होने के कारण) हँस पड़ा, मैं लज्जित हो गई, उसने गलबाहीं डाल दी। (तो हार-दाँव में भी) उसके गले से लिपट गई।

मुँहु उघारि पिउ लखि रह्यौ रह्यौ न गौ मिस-सैन।
फरके ओठ उठे पुलक गए उघरि जुरि नैन॥३५५॥

अन्वय—मुँहु उघारि पिउ लखि रह्यौ, मिस-सैन रह्यौ न गौ। ओठ फरके, पुलक उठै, नैन उघरि जुरि गए।

उघारि = खोलकर। मिस-सैन = बहानेबाजी की नींद, बनावटी सोना (शयन)। पुलक = रोमांच। जुरि = मिलना।

मुँह उघारकर—मुँह पर से आँचल हटाकर—प्रीतम देख रहा था, अतः उस (नायिका) से झूठ-मूठ सोया न गया—आँखें मूँद कर जो सोने का बहाना किये हुए थी, सो वैसी न रह सकी। (पहले) ओठ फड़कने लगे (फिर) रोमांच उठ आये (और अन्त में) आँखें खुलकर (नायक की आँखों से) मिल गईं।

बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करैं भौंहनु हँसै दैन कहैं नटि जाइ ॥३५६॥

अन्वय—बतरस-लालच लाल की मुरली लुकाइ धरी। सौंह करै, भौंहनु हँसै, दैन कहै, नटि जाइ।

बतरस = बातचीत का आनन्द। लुकाइ धरी = छिपाकर रक्खा। सौंह = शपथ। नटि जाइ = नाहीं (इनकार) कर देती है।

बातचीत का मजा लेने के लोभ से श्रीकृष्ण की मुरली छिपा कर रख दी। (अब श्रीकृष्ण के माँगने पर) शपथ खाती है, भौंहों से हँसती है (भौहों को नचा-नचाकर प्रसन्नता जताती है), देने को कहती है (देने पर तैयार होती है, और पुनः) नाहीं कर देती है।

नैंकु उतै उठि बैठियै कहा रहे गहि गेहु।
छुटी जाति नहँ दो छिनकु महँदी सूकन देहु ॥३५७॥

अन्वय—नैंकु उतै उठि बैठियै, कहा गेहु गहि रहे ? नहँ दी छुटी जाति छिनकु महँदी सूकन देहु।

उतै = उधर। गहि = पकड़े। छुटी जाति = घुली या धुली जाती है। नँह दो = नखों में दी या लगाई हुई। छिनकु = एक क्षण।

जरा उधर (अलग) उठकर बैठो। क्या घर को पकड़े रहते हो—क्या सदा घर में बैठे (घुसे) रहते हो ? (देखो, तुम्हारे निकट रहने से प्रेमावेश के पसीने के कारण इसके) नँह में लगाई

गई (मेहँदी) छुटी जाती है, एक क्षण के लिये भी तो इस मेहँदी को सूखने दो।

बाम तमासो करि रही बिबस बारुनी सेइ।
झुकति हँसति हँसिहँसि झुकति झुकिझुकिहँसिहँसि देइ॥

अन्वय—बारुनी सेइ बिबस बाम तमासो करि रही। झुकति हँसति हँसि हँसि झुकति झुकिझुकि हँसिहँसि देइ।

बाम = युवती स्त्री। तमासो = तमाशा, भावभंगी। बारुनी = मदिरा। सेइ = सेवन कर, पीकर। झुकि-झुकि = लचक के साथ गिर-गिरकर।

शराब पीकर बेबस हो वह युवती तमाशा कर रही है—विचित्र हावभाव दिखा रही है। (नशे के झोंक में) झुकती (लड़खड़ाकर गिरती) है, हँसती है, (फिर) हँस-हँसकर झुकती और झुक-झुककर हँस-हँस (खिलखिला) पड़ती है।

हँसि-हँसि हेरति नवल तिय मद के मद उमदाति।
बलकि-बलकि बोलति बचन ललकि ललकि लपटाति॥

अन्वय—मद के मद उमदाति नवल तिय हँसिहँसि हेरति, बलकि बलकि बचन बोलति, ललकि ललकि लपटाति।

हेरति = देखती है। मद के मद = शराब के नशे में। उमदाति = झूमती दिखाती है। बलकि-बलकि=उबल-उबलकर, उत्तेजित हो-होकर।

शराब के नशे में वह उन्मादिनी (मस्तानी) नवयुवती हँस-हँस कर देखती है। उमंग से भर-भरकर (अंटसंट) बातें करती है, और ललक-ललककर (उत्कंठापूर्वक) लिपट जाती है।

खलित बचन अधखुलित दृग ललित स्वेद-कन जोति।
अरुन बदन छबि मदन की खरी छबीली होति॥३६०॥

अन्वय—खलित बचन अधखुलित दृग स्वेदकन जोति ललित बदन अरुन मदन की छवि खरी छबीली होति।

खलित = स्खलित, स्फुट, अस्पष्ट। स्वेद-कन = पसीने की बूँदें। अरुन = लाल। खरी = अत्यन्त। मद छकी = शराब के नशे में चूर।

अस्पष्ट बातें, अधखुली आँखें, (शरीर में) पसीनों के सुन्दर कणों की ज्योति और गुलाला चेहरे की शोभा—(इन लक्षणों से युक्त वह नायिका) कामदेव की-सी शोभा वाली अत्यन्त सुन्दरी हो जाती है।

निपट लजीली नवल तिय बहकि बारुनी सेइ।
त्यौं-त्यौं अति मीठी लगति ज्यौं-ज्यौं ढीठ्यो देइ ॥३६१॥

अन्वय—निपट लजीली नवल तिय बहकि बारुनी सेइ ज्यौं-ज्यौं ढीठ्यौ देइ त्यौं-त्यौं अति मीठी लगति।

निपट = अत्यन्त। नवल तिय = नवयुवती। बहकि = बहकावे (भुलावे) में आकर। मीठी = भली, प्यारी, लुभावनी, सुस्वादु। ढीठ्यौ देइ = ढिठाई दिखाती है।

अत्यन्त लज्जावती उस नवयुवती ने भुलावे में आकर शराब पी ली—नायक ने शर्बत आदि के बहाने उसे शराब पिला दी सो (नशे के कारण) ज्यों-ज्यों वह (लज्जा छोड़कर) धृष्टता (शोखी) दिखलाती है, त्यों-त्यों अत्यन्त मीठी (मनभावनी) लगती है।

बढ़त निकसि कुच-कोर-रुचि कढ़त गौर-भुज-मूल।
मनु लुटिगौ लोटनु चढ़त चोंटत ऊँचे फूल ॥३६२॥

अन्वय—ऊँचे फूल चोंटत कुच-कोर-रुचि निकसि बढ़त, गौर भुज-मूल कढ़त, लोटनु चढ़त मनु लुटि गो।

कुच = स्तन। कोर = घेरा, किनारा, मंडल। रुचि = शोभा।

भुजमूल = बाँह का मूल-स्थान, पखौरा। लोटनु = त्रिवली, पेटी। चोंटत= चुनते (तोड़ते) समय। ऊँचे फूल=ऊँची डाल के फूल।

ऊँची डाल से फूल तोड़ते समय (हाथ ऊँचा करने के कारण) उसके कुचमण्डल की शोभा (कंचुकी से) निकलकर बढ़ रही है, तथा (सुन्दर) गोरे पखौरे भी (कपड़े हट जाने से) बाहर निकल गये हैं। (इन शोभाओं को देखकर तो मन मुग्ध था ही की उसकी) त्रिवली (की तीन सीढ़ियों) पर चढ़कर मन लुट गया।

नोट—ऊँचे फूल को तोड़ते समय स्वभावतः, पीन कुच की कोर कंचुकी से बाहर देख पड़ेगी, और खिंचाव के कारण वस्त्र हट जाने से पखौरे और त्रिवली के भी दर्शन हो जाँयगे। सप्तम शतक का ६०८ वाँ दोहा देखिये।

घाम घरीक निवारियै कलित ललित अलि-पुंज।
जमुना-तीर तमाल-तरु मिलित मालती-कुंज ॥३६३॥

अन्वय—जमुना-तीर-तमाल-तरु मिलित ललित अलिपुंज-कलित मालती-कुंज घरीक घाम निवारियै।

घाम = धूप। घरीक = एक घड़ी। निवारिये = गँवाइये, बिताइये। तमाल = एक प्रकार का सुहावना श्यामल वृक्ष। मालती कुंज = मालती-लता-मण्डप।

यमुना के तीर पर, तमाल तरु से मिलकर बनी हुई सुन्दर भौंरों से सुशोभित मालती-कुंज में, एक घड़ी धूप गँवा लीजिये।

चलित ललित स्रम स्वेदकन कलित अरुन मुख तैं न।
बन-बिहार थाकी तरुनि खरे थकाए नैन ॥३६४॥

अन्वय—चलित ललित स्रम स्वेदकन अरुन मुख तैं कलित, वन बिहार थाकी तरुन नैन खरे न थकाए।

चलित=चंचल। ललित = सुन्दर। स्रम = परिश्रम। स्वेद कन-कलित = पसीने की बूँदों से शोभित। अरुन = ललाई, अत्यन्त लाल। वन विहार = वन में किये गये आमोद-प्रमोद। तरुनि = तरुणी, युवती।

चंचल और सुन्दर श्रम (स्वच्छन्द वन-विहार-जनित श्रान्ति) के पसीने की बूँदों वाले (गुप्त रूप से) वन में आमोद-प्रमोद करने से थकी हुई उस युवती के लाल मुखड़े से नायक की आँखें नहीं थकतीं (उसकी वह शोभा देखते-देखते नायक के नेत्र नहीं थकते)।

नोट—कविवर 'शीतल' ने श्रम-विन्दु पर क्या खूब कहा है—"मुख-सरदचंद पर स्रम-सीकर जगमगै नखत गन-जोती से, कै दल-गुलाब पर शवनम के हैं कनके रूप-उदोती से; हीरे की कनियाँ मन्द लगैं हैं सुधा किरन के गोती-से, आया है मदन आरती को धर कनक-थार में मोती-से।"

अपनैं कर गुहि आपु हठि हिय पहिराई लाल।
नौलसिरी औरै चढ़ी बौलसिरी की माल ॥३६५॥

अन्वय—लाल अपनैं कर बौलसिरी की माल गुहि हठि आपु हिय पहिराई, औरै नौलसिरी चढ़ी।

गुहि = गूँथकर। आपु = आपही, स्वयमेव। हिय = हृदय। नौल-सिरी = नवलश्री = नवीन शोभा। औरै = विलक्षण, विचित्र, निराली। बौलसिरी = मौलिश्री, मनसरी का फूल।

लाल (नायक) ने अपने ही हाथों से मौलसिरी की माला गूँथ-कर और हठ करके स्वयं ही उस (नायिका) के गले में पहनाई। (फिर तो नायक द्वारा पहनाई गई उस मौलसिरी की माला से नायिका के सुन्दर शरीर पर) और ही तरह की (अपूर्व) नवीन शोभा चढ़ (छा) गई।

लै चुभकी चलि जाति जित-जित जलकेलि अधीर।
कीजत केसरि-नीर से तित-तित के सरि-नीर ॥३६६॥

अन्वय—जलकेलि अधीर चुभकी लै जित-जित चलि जाति तित-तित के सरि-नीर केसरि-नीर से कीजत।

लै चुभकी = डुबकी लगाकर। जित = जहाँ। जल-केलि = जलक्रीड़ा। केसरि-नीर = केसर-मिश्रित जल। सरि-नीर = नदी का पानी।

जल-विहार में चंचल बनी नायिका डुबकी मारकर जहाँ-जहाँ चली जाती है, वहाँ-वहाँ की नदी के (स्वच्छ) जल को (अपने केसरिया रंग के शरीर की पीली प्रभा से) केसर मिश्रित जल के समान (पीला) कर देती है।

नोट—कविवर पद्माकर की त्रिवेणी-विधायिका नायिका का जल-संतरण वा जल-विहार भी देखिये—"जाहिरे जागति-सी जमुना जब बूड़ै-बहै-उमहै उहि वेनी, त्यों पदमाकर हीरो के हारनि गंग-तरंगन-सी सुखदेनी; पायन के रँग सो रँगि जात सो भाँति ही भाँति सरस्वती-सेनी, तैरे जहाँ-ई-जहाँ वह वाल तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिवेनी।"

छिरके नाह नवोढ़-दृग कर-पिचकी जल जोर।
रोचन रँग लाली भई बिय तिय लोचन-कोर ॥३६७॥

अन्वय—नाह नवोढ़-दृग कर-पिचकी जोर जल छिरके, बिय तिय लोचन-कोर रोचन-रँग लाली भई।

नाह = नाथ, प्रीतम। नवोढ़ = नवयौवना। कर-पिचकी = दोनों हाथों को एक साथ जल में दबाकर पिचकारी की तरह जल की धार उछलना। रोचन = रोली। बिय = दूसरी। तिय = स्त्री।

प्रीतम ने उस नवयुवती की आँखों में हाथ की पिचकी से जोर से जल छिड़का। (यह देखकर) दूसरी स्त्री (सौतिन)

की आँखों की कोर में रोली के रंग की लाली छा गई—क्रोध से आँखें लाल-लाल हो गईं।

हेरि हिंडोर-गगन तैं परी परी-सी टूटि।
धरी धाय पिय बीच हीं करी खरी रस-लूटि ॥३६८॥

अन्वय—हेरि हिंडोरे गगन तैं परी-सौं टूटि परी, पिय धाइ बीच हीं धरी, खरी रस लूटि करी।

हेरि = देखकर। परी = अप्सरा। टूटि परी = लपककर कूद पड़ी। खरी = खूब ही, अच्छी तरह। रस लूटि = रस की लूट।

(प्रीतम को) देखते ही (प्रेमावेश में बेसुध वह सुन्दरी नायिका) झूला-रूपी आकाश से परी के समान टूट पड़ी—जैसे स्वर्गीय अप्सरा आकाश से नीचे गिरे, वैसे ही वह हिंडोले से गिर पड़ी; (किन्तु उसे गिरते देख) प्रीतम ने दौड़कर बीच ही में पकड़ लिया (गेंद की तरह ऊपर-ही-ऊपर लोक लिया)—पृथ्वी पर नहीं गिरने दिया—और यों खूब ही रस की लूट की।

नोट—सखियों के साथ नायिका झूला झूल रही थी। इतने में नायक आ पहुँचा। उसको देखकर नायिका लज्जावश भागने के निमित्त हिंडोले से कूद पड़ी। नायक ने बीच ही लोककर आलिंगन का सुख लूट लिया।

बरजैं दूनी हठि चढ़ै ना सकुचै न सकाइ।
टूटत कटि दुमची मचक लचकि लचकि बचि जाइ ॥३६९॥

अन्वय—बरजैं दूनी हठि चढ़ै न सकुचै न सकाइ। दुमची कटि मचक टूटत लचकि-लचकि बचि जाइ।

बरजैं = मना करने पर। सकुचै = लजाना। सकाइ = डरना। दुमची = पतली डाल। मचक टूटते = लचकर या धक्का लगकर टूटने से।

मना करने से (उसे) दूना हठ चढ़ जाता है—न लजाती है

न डरती है। पतली शाखा के समान (उसकी) कमर मचककर टूटने से लचक-लचककर बच जाती है।

नोट—झोंके से झूले पर झूलती हुई नायिका का वर्णन।

दोऊ चोर-मिहीचनी खेलु न खेलि अघात।
दुरत हियैं लपटाइ कै छुवत हियैं लपटात ॥३७०॥

अन्वय—दोऊ चोर-मिहीचनी खेलु खेलि न अघात। हियैं लपटाइ कै दुरत, छुवत हियैं लपटात।

चोर मिहीचनी = चोरिया-नुकिया नामक खल, जिसमें एक छिपता है और दूसरा उसको ढूँढ़ता है लुका-छिपी का खेल। अघात = तृप्त होते हैं, भरपूर आनन्द लूटते हैं। दुरत = छिपना। हियैं = हृदय।

(नायक-नायिका) दोनों चोरिया-नुकिया खेल खेलकर नह अघाते! परस्पर हृदय से लिपटकर छिपते हैं और पुनः छूने के समय परस्पर हृदय से लिपट जाते हैं।

लखि लखि अँखियनु अधखुलिनु आँगु मोरि अँगिराइ।
आधिक उठि लेटति लटकि आलस भरी जम्हाइ ॥३७१॥

अन्वय—अधखुलिनु अँखियनु लखि लखि आँगु मोरि अँगिराइ। आधिक उठि लटकि लेटति आलस भरी जम्हाइ।

आँगु = अँग, शरीर। मोरि = मरोड़कर। अँगिराइ = अँगराती है। लटकि = लटपटा या लड़खड़ाकर। आधिक = आधा।

(भर-रात प्रीतम से विहार करने के कारण प्रातः काल) अधखुली आँखों से (इधर-उधर) देख-देखकर शरीर को मरोड़ कर अँगराई लेती है। (फिर बिछावन से) आधी उठ (फिर तुरत) लटपटाकर लेट जाती है और आलस से भरी हुई जम्हाई लेती है।

नीठि नीठि उठि बैठि हूँ प्यौ प्यारी परभात।
दोऊ नींद भरैं खरैं गरैं लागि गिर जात ॥३७२॥

अन्वय—प्यौ प्यारी परभात नीठि नीठि उठि बैठि हूँ दोऊ खरैं नींद भरैं गरैं लागि गिर जात।

नीठि नीठि = बड़ी मुश्किल से। प्यौ = पिय, प्रीतम। परभात = प्रभात, प्रातः। खरैं = अत्यन्त। गरैं लागि = गले से लिपटकर।

प्रीतम और प्यारी (दोनों) प्रातःकाल बड़ी-बड़ी मुश्किल से उठ बैठते भी हैं। (और पुनः) दोनों अत्यन्त नींद में भरे होने के कारण (परस्पर) गले से लिपटकर (सेज पर) गिर जाते हैं।

नोट—नेवाज कवि भी एक ऐसे ही सुरति-श्रान्त दम्पति का वर्णन करते हैं—"छतिया छतिया सों लगाये दोऊ दोऊ जी में दूहूँ के समाने रहैं, गई बीत निसा पै निसा न गई नये नेह में दोऊ विकाने रहैं; पट खोलि 'नेवाज' न भोर भये लखि घोस को दोऊ सकाने रहैं, उठि जैवे को दोऊ डराने रहैं लपटाने रहैं पट ताने रहैं।"

लाज गरब आलस उमग भरे नैन मुसुकात।
राति रमी रति देति कहि औरै प्रभा प्रभात ॥३७३॥

अन्वय—लाज गरब आलस उमग भरे नैन मुसकात, प्रभात औरै प्रभा, राति रमी रति कहि देति।

गरब = अभिमान। उमग = उत्साह। राति रमी रति = रात में किया गया समागम। औरै = और ही, विचित्र, अनोखा। प्रभा = छवि-छटा।

लज्जा, अभिमान, आलस्य और उमंग से भरे (तुम्हारे) नेत्र मुसकुरा रहे हैं। प्रातःकाल की (तुम्हारी) यह अनोखी छटा रात में किया गया समागम (स्पष्ट) कहे देती है।

कुंज-भवनु तजि भवनु कौं चलियै नंदकिसोर।
फूलति कली गुलाब की चटकाहट चहुँ ओर ॥३७४॥

अन्वय—नन्दकिसोर कुंज-भवनु तजि भवनु कौं चलिबै, गुलाब की कली फूलति चटकाहट चहुँ ओर।

कुंज-भवन = वृन्दावन का केलि-मंदिर। चटकाहट = चटक + आहट = कलियों के चिटखने का शब्द। चहुँओर = चारों तरफ।

हे नंदकिशोर (श्रीकृष्ण जी)! कुंजभवन को छोड़कर अब घर चलिये. (क्योंकि) गुलाब की कली खिल रही है (और उसकी) चटक चारों ओर सुन पड़ रही है—(अर्थात् अब प्रातःकाल हुआ, रास-विलास छोड़िये।)

नटि न सीस साबित भई : लुटी सुखनु की मोट।
चुप करि ए चारी करति सारी परी सरोट ॥३७५॥

अन्वय—नटि न सीस साबित भई सुखनु की मोट लुटी। चुप करि ए सारी परी सरोट चारी करति।

नटि = नहीं-नहीं करना। सीस सावित भई = तेरे ऊपर प्रमाणित हो गई। मोट = मोटरी, गठरी। चारी = चुगली। सारी = साड़ी, चुनरी। सरोट = सिकुड़न, शिकन।

नहीं-नहीं मत कर। अब तेरे मत्थे यह बात साबित हो गई कि तूने सुखों की मोटरी लूटी है। चुप हो जा, तेरी साड़ी में पड़ी हुई सिकुड़न ही चुगली कर रही है (कि यह किसी के द्वारा रौंदी गई है—क्योंकि रति-काल में स्वभावतः साड़ी मसल जाती है।)

मो सौं मिलवति चातुरी तूँ नहिं भानति भेउ।
कहे देत यह प्रगट हीं प्रगट्यौ पूस पसेउ ॥३७६॥

अन्वय—मो सौं तू चातुरी मिलवति भेउ नहिं भानति। पूस पसेउ प्रगट्यौ यह प्रगट हीं कहे देत।

मो सौं = मुझसे। मिलवति चातुरी = चतुराई भिड़ा रही है, चालाकी कर रही है। भानति= (संस्कृत 'भन्' = कहना) = कहती है। भेउ= भेद, रहस्य। पसेउ=पसीना। प्रगट हीं = स्पष्ट, प्रत्यक्ष।

मुझसे तू चतुराई की बातें कर रही है, भेद नहीं बतलाती। किन्तु (कड़ाके का जाड़ा पड़नेवाले इस) पूस महीने में पसीना प्रकट होकर यह स्पष्ट कहे देता है (कि तू किसीके साथ समागम कर आई है।)

सही रँगीलैं रतजगैं जगी पगी सुख चैन।
अलसौंहैं सौंहैं कियैं कहैं हँसौंहैं नैन ॥३७७॥

अन्वय—रँगीलैं सही रतजगैं जागी सुख चैन पगी हँसौंहैं नैन अलसौंहैं सौंहैं कियैं कहैं।

रतजगैं = किसी व्रत में रात-भर जगना। अलसौंहैं = अलसाये हुए। सौंहैं = शपथ, कसम। हँसौंहैं = हँसीले।

अरी रँगीली! (तेरा कहना) सही है। (तू व्रत के) रतजगे में ही जागी है (तभी तो) सुख और चैन में पगी है—आनन्द और उत्साह में मस्त है। (और, तेरे ये) हँसीले नेत्र भी, आलस में मस्त बने, शपथ खाकर यही कह रहे हैं।

नोट—नायिका गत रात्रि के अपने समागम की बात छिपाती है, इस पर सखी चुटकी लेती है।

यौं दलमलियतु निरदई दई कुसुम-सौं गातु।
करु धरि देखौ धरधरा उरकौ अजौं न जातु ॥३७८

अन्वय—दई निरदई कुसुम-सौं गातु यौं दलमलियतु, करु धरि देखौ अजौं उरकौ धरधरा न जात।

दलमलियत = मसलना, रौंदना। दई = दैव। करु = हाथ। धरधरा = धड़कना। अजौं = अभी तक। उर = हृदय।

हायरे दई! उस निर्दई (नायक) ने इसके फूल के ऐसे शरीर को यों मसल दिया है कि हाथ धर के देखो, अभी तक इसके हृदय से धड़कन नहीं जाती—अभी तक भय और पीड़ा से इसकी छाती धड़क रही है।

छिनकु उघारति छिनु छुवति राखति छिनकु छिपाइ।
सबु दिनु पिय-खंडित अधर दरपन देखत जाइ ॥३७९॥

अन्वय— छिनकु उघारति छिनु छुवति छिनकु छिपाइ राखति, सबु दिनु पिय खंडित अधर दरपन देखत जाइ।

छिनकु = छिन + एकु = क्षण। अधर = ओठ। दरपन = दर्पण, आईना।

क्षण में उघारती है, क्षण में छूती है और पुनः क्षण में छिपा रखती है (कि कोई देख न ले।) यों उसका सारा दिन प्रीतम द्वारा खंडित किये गये अधर को दर्पण में देखने ही में बीतता है।

नोट— प्रीतम ने रति रण-रंग-रस-मत्त होकर चुम्बन करते समय सुकोमल अधर पर दाँत गड़ा दिये थे, जिससे वह खंडित (रदच्छत) हो गया था।

औरै ओप कनीनिकनु गनी घनी सिरताज।
मनी धनी के नेह की बनीं छनीं पट लाज ॥३८०॥

अन्वय—कनीनिकनु ओप औरै घनी सिरताज गनी लाज पट छनीं धनी के नेह की मनी बनीं।

ओप = कान्ति। कनीनिकनु = आँखों की पुतलियाँ। गनी = गिनी

है, मानी है। घनी=सबों में, बहुतेरों में। मनि = मणि, तेजस्विता। धनी= प्रीतम, नायक। पट = वस्त्र।

(तुम्हारी आँखों की) पुतलियों में आज कुछ दूसरी ही कान्ति है, (इसीलिये तो मैंने इन्हें) सबों में सिरताज माना है। लाज-रूपी वस्त्र से छनकर ये प्रीतम के (निर्मल) नेह की मणि बनी हुई है—यद्यपि लज्जा से ढँकी हुई है, तो भी इनसे, नायक का प्रेम, कपड़े से ढकी हुई (दिव्य) मणि की (उज्ज्वल) आभा के समान, प्रकट हो (झलक) रहा है।

कियौ जु चिबुक उठाइ कै कम्पित कर भरतार।
टढ़ीयै टेढ़ी फिरति टेढ़ै तिलक लिलार ॥३८१॥

अन्वय—कम्पित कर भरतार चिबुक उठाइ कै जु कियौ लिलार टेढ़ैं तिलक टेढ़ीयै टेढ़ी फिरति।

चिबुक = ठुड्डी। कर = हाथ। भरतार = पति। तिलक = टीका। टेढ़ीयै टेढ़ी फिरति = ऐंठती हुई ही घूमती फिरती है। लिलार = ललाट।

(प्रेमावेश से) काँपते हुए हाथों से पति ने जो ठुड्डी उठाकर (टीका) कर दिया, सो ललाट में उस टेढ़ी टीका को ही लगाये हुए वह टेढ़ी-ही-टेढ़ी बनी फिरती है—घमंड में ऐंठती हुई चलती है।

वेई गड़ि गाड़ैं परीं उपट्यौ हारु हियैं न।
आन्यौ मोरि मतंगु-मनु मारि गुरेरनु मैन ॥३८२॥

अन्वय—मैन गुरेरनु मारि मतंगु-मनु मोरि आन्यौ, वेई गड़ि गाड़ैं परीं, हारु हियैं न उपट्यौ।

गड़ि = गड़कर, गड़ने से। गाड़ैं = गड्ढे। उपट्यौ = गड़कर गहरा दाग उखड़ आना। आन्यौ मोरि = मोड़ लाया। मतंगु = मतवाला हाथी। मनु = मन। गुरेरनु = गुलेल, गुलेती। मैन = कामदेव।

कामदेव गुलेलों से मार-मारकर तुम्हारे मन-रूपी मतवाले हाथी को इस ओर मोड़ (फेर) लाया है, उन्हीं (गुलेल की गोलियों) के गड़ने से ये गड्ढे पड़ गये हैं। (दूसरी स्त्री के साथ समागम करते समय) उसका हार तुम्हारे हृदय में नहीं उपटा है—(ये गड्ढे हार की मणियों के गड़ने से नहीं बने हैं।)

नोट—नायक दूसरी स्त्री के साथ विहार करके आया है। नायिका उपालम्भ देती है। अगले कई दोहों में ऐसे उपालम्भ मिलेंगे।

पलनु पीक अंजनु अधर धरे महावरु भाल।
आजु मिले सु भली करी भले बने हौ लाल ॥३८३॥

अन्वय—पलनु पीक अधर अंजनु भाल महावरु धरे; आजु मिले सु भली करी लाल बने हौ।

पलनु = पलकों में। अधर = ओठ। भाल=ललाट।

पलकों में (पान की) पीक है—भर-रात कहीं दूसरी स्त्री के साथ जगे हो, उसीकी लाली है। अधरों पर अंजन लगा है—किसी मृगनैनी के कजरारे नयनों को चूमा है, उन्हीं का अंजन लग गया है और, ललाट पर महावर धारण किये हुए हो—किसी मानिनी को पैरों पड़कर मनाया है, उसीका महावर लग गया है। आज (इस बाने से) मिले हो, सो अच्छा ही किया है (क्योंकि) हे लाल! (आज तुम) बड़े अच्छे बने हो—आज का तुम्हारा यह रूप बहुत- बढ़िया दीख पड़ता है!

गहकि गाँसु औरै गहै रहै अधकहै बैन।
देखि खिसौंहैं पिय नयन किए रिसौंहैं नैन ॥३८४॥

अन्वय—गहकि औरै गाँसु गहै अधकहै बैन रहै, पिय खिसौंहैं नयन देखि नैन रिसौंहैं किए।

गहकि=क्रोधित होकर। गाँसु=वैमनस्य, अनख। अधकहे बैन=अधूरे वचन। खिसौहैं=लज्जित। रिसौहैं=रोषयुक्त।

क्रोधित होकर अधिक शत्रुता पकड़ ली—खूब उत्तेजित हो गई। आधे कहे हुए वचन मुख में ही रह गये। प्रीतम की लज्जित आँखें देखकर (उन्हें भर-रात दूसरी स्त्री के संग रहा समझकर, नायिका ने) अपनी आँखें रोषयुक्त कर लीं।

तेह तरेरौ त्यौरु करि कत करियत दृग लोल।
लीक नहीं यह पीक की स्रुति-मन-झलक कपोल ॥३८५॥

अन्वय—तेह त्यौरु तरेरौ करि दृग कत लोल करियत? कपोल यह पीक की लीक नहीं, स्रुति-मनि-झलक।

तेह=क्रोध। तरेरौ त्यौरु करि=त्यौरियाँ चढ़ाकर। लोल=चंचल। लीक=रेखा। स्रुति-मणि=कर्णभूषण की मणि। कपोल=गाल।

क्रोध से त्यौरियाँ चढ़ाकर आँखें क्यों चंचल कर रही हो? गालों पर यह पीक की रेखा नहीं है—किसी दूसरे ने चुम्बन किया है, उसके अधरों की लाली नहीं है (वरन्) कर्ण-भूषण की मणि की (लाल) झलक (प्रतिबिम्ब) है। (दर्पणोज्ज्वल कपोलों में कर्ण-फूल- मणि की अरुण आभा प्रतिफलित हो रही है)

बाल, कहा लाली भई लोइन कोइनु माह।
लाल तुम्हारे दृगनु की परी दृगनु मैं छाँह ॥३८६॥

अन्वय—बाल लोइन कोइनु माँह लाली कहा भई, लाल तुम्हारे दृगनु की छाँह दृगनु मैं परी।

लोइन=आँखें। कोइनु=आँखों के भीतर का उजला हिस्सा। माँह=में। दृगनु=आँखें। छाँह=छाया।

हे बाले! तुम्हारी आँखों के कोयों में लाली क्यों छा गई है?

हे लाल ! तुम्हारी आँखों की छाया ही मेरी आँखों में पड़ गई है-
(तुम जो रात-भर किसी कामिनी के पास जगकर अपनी आँखें लाल-लाल बना लाये हो, उन्हींकी छाया मेरी आँखों में पड़ी है !)

नोट—नायिका ने पर-स्त्री संगी नायक को देखते ही क्रुद्ध होकर आँखें लाल कर ली हैं। नायक इसका कारण पूछता है। नायिका माकूल जवाब देती है। बड़ी अनोखी सूझ है।

तरुन कोकनद बरन बर भए अरुन निसि जागि।
वाही कैं अनुराग दृग रहे मनो अनुरागि ॥३८७॥

अन्वय—निसि जागि तरुन कोकनद बर बरन अरुन भए। मनो वाही कैं अनुराग दृग अनुरागि रहे।

तरुन = नवीन, विकसित। कोकनद = लाल कमल। बरन = रंग। अरुन = लाल। अनुराग = प्रेम। अनुरागि रहे = रँग रहे।

रात-भर जगने से नये लाल कमल के सुन्दर रंग के समान नेत्र लाल हो गये हैं। मानों उसी (अन्य स्त्री) के प्रेम में आपके नेत्र अनुरंजित हो रहे हैं—रँग गये हैं।

केसर केसरि-कुसुम के रहे अंग लपटाइ।
लगे जानि नख अनखुली कत बोलति अनखाइ ॥३८८॥

अन्वय— केसरि-कुसुम के केसर अंग लपटाइ रहे, अधखुली नख लगे जानि कत अनखाइ बोलति।

केसर = पराग-तन्तु (जो लाल पतले डोरे के समान होता है), किंजल्क। अनखुली = अनखानेवाली, क्रोधिता।

केसर के फूल के पराग तन्तु (नायक के) शरीर से लिपट रहे हैं। अरी क्रोधिता ! उसे (दूसरी स्त्री के) नख लगा जान

कर— पर-स्त्री-समागम के समय का नख-क्षत समझकर—तू क्यों अनखा [क्रोध से झुँझला] कर बोल रही है ?

सदन सदन के फिरन की सद न छुटै हरिराइ ।
रुचै तितै बिहरत फिरौ कत बिहरत उरु आइ ॥३८९॥

अन्वय—हरिराय सदन सदन के फिरन की सद न छुटै । रुचि तितै बिहरत फिरौ आइ उरु कत बिहरत ।

सदन = घर । सद = आदत । हरिराय = श्रीकृष्णचन्द्र । रुचै = भावे, नीक लगे, अच्छा जँचे । तितै=वहाँ । बिहरत फिरौ = मौज करते फिरो । बिहरत = विदीर्ण करते हो । उरु = हृदय । आइ = आकर ।

हे कृष्णचन्द्र, (तुम्हारी) घर-घर फिरने की आदत नहीं छूटती ? खैर, जहाँ मन भावे, वहाँ विहरते फिरो । (किन्तु मेरे पास) आकर [मेरी] छाती क्यों विदीर्ण करते हो ? (तुम्हें देख और तुम्हारी करतूत याद कर मेरी छाती फटने लगती है ।)

पट कै ढिग कत ढाँपियत सोभित सुभग सुबेखु ।
हद रद-छद छबि देत यह सद रदछद की रेखु ॥३९०॥

अन्वय—पट ढिग कै कत ढाँपियत सुभग सुबेखु सोभित । सद रद छद की रेखु यह रदछद हद छबि देत ।

पट = कपड़ा । कै = करके । ढिग=निकट । सुबेखु = सुन्दर रूप से । रद-छद = ओंठ । छबि = सोभा । सद = सद्यः काल का, तुरत का । रद-छद = ओठों पर दाँत का घाव । रेख = रेखा, लकीर ।

कपड़े निकट करके क्यों ढक रहे हो ? सुभग और सुन्दर रूप से तो शोभ रहा है ! दाँतों के घाव की ताजी रेखा से यह अधर बेहद शोभा दे रहा है—तुरत ही किसी स्त्री ने तुम्हारे अधर का

चुम्बन करते समय दाँत गड़ाये हैं, जिसका चिह्न अत्यन्त शोभ रहा है।

मोहूँ सौं बातनु लगैं लगी जीभ जिहि नाँइ।
सोई लै उर लाइयै लाल लागियतु पाँइ ॥३९१॥

अन्वय—मोहूँ सौं बातनु लगैं जीभ जिहि नाँइ लगी, सोई लै उर लाइयै लाल पाँइ लागियतु।

मोहूँ सौं=मुझसे भी। नाँइ=नाम। उदर=हृदय।

मुझसे भी बातें करते समय (तुम्हारी) जीभ जिसके नाम पर लगी है—अकस्मात् जिसका नाम तुम्हारे मुख से निकल गया है—उसीको लेकर हृदय से लगाओ। हे लाल! मैं तुम्हारे पाँव लगती हूँ—पैरों पड़ती हूँ।

लालन लहि पाएँ दुरै चोरी सौंह करैं न।
सीस चढ़े पनिहा प्रगट कहैं पुकारैं नैन ॥३९२॥

अन्वय—लालन पाएँ लहि सौंह करैं चोरी न दुरै नैन पनिहा सीस चढ़े पुकारैं प्रगट कहैं।

लहि पाएँ=पकड़े जाने पर। दुरैं=छिपै। सौंह=शपथ। पनिहा=चोर पकड़नेवाले तांत्रिक। सीस चढ़े पुकारे=विना पूछे ही आप-से-आप बता रहे हैं।

हे लाल! पकड़े जाने पर शपथ करने से भी चोरी नहीं छिपती। ये तुम्हारे नेत्र पनिहा के समान सिर चढ़कर पुकार-पुकार स्पष्ट कर रहे हैं—तुम्हारे अलसाये हुए नेत्र देखने से ही सब बातें प्रकट हो जाती हैं (कि तुम कहीं रात-भर रमे हो)।

तुरत सुरत कैसैं दुरत मुरत नैन जुरि नीठि।
डौंड़ी दै गुन रावरे कहति कनौड़ी डीठि ॥३९३॥

अन्वय—तुरत सुरत कैसैं दुरत नैन नीठि जुरि मुरत कनौड़ी डीठि डौंड़ी दै रावरे गुन कहति।

सुरत = समागम, मैथुन। मुरत = मुड़ते हैं। नीठि = मुश्किल से। डौंड़ी दै = ढोल बजाकर। रावरे = आपके। कनौड़ी = लज्जित। डीठि = दृष्टि।

तुरत किया हुआ समागम कैसे छिप सकता है? (प्रणाम लीजिये—आपके अलसाये हुए) नेत्र मुश्किल से (मेरे नेत्रों से) जुड़ते हैं, और (फिर तुरत ही) मुड़ जाते हैं—मेरे सामने मुश्किल से आपकी आँखें बराबर होती हैं। आपकी यह लज्जित दृष्टि ही ढोल बजा-बजाकर आपके गुणों को कह रही है।

मरकत-भाजन-सलिल गत इन्दु-कला कैं बेख।
झीन झगा मैं झलमलत स्यामगात नख रेख॥३६४॥

अन्वय—स्यामगात नखरेख मरकत-भाजन-सलिल गत इन्दु-कला कैं बेख झीन झगा मैं झलमलत।

मरकत = नीलमणि। भाजन = बर्तन। सलिल = जल। गत = में, अंदर। वेख = वेष = रूप, यहाँ समानता-सूचक है। झीन = महीन, बारीक। झगा = जामा, अंगरखा। नख-रेख = नख की रेखा, नख की खरौंट।

(श्रीकृष्ण के) साँवले शरीर में (समागम के समय राधा द्वारा दी गई) नख की रेखा नीलमणि के बर्तन में भरे हुए जल में द्वितीया के चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब के समान, महीन जामे के भीतर से झलमला रही है।

नोट—श्यामसुन्दर का श्याम शरीर नीलमणि का पात्र है। बारीक श्वेत वस्त्र का जामा उस (मणि-पात्र) में रक्खा गया (स्वच्छ) जल है और नख की रेखा दूज का चाँद है।

वैसीयै जानी परति झगा ऊजरे माँह।
मृगनैनी लपटी जु हिय बेनी उपटी बाँह ॥३९५॥

अन्वय—मृगनैनी हियै लपटी जु बाँह बेनी उपटी ऊजरे झगा माँह वैसीयै जानी परति।

बेनी = लम्बी चोटी। उपटी = दबकर दाग पड़ गया।

मृगनैनी (नायिका) के हृदय में लिपटने से बाँह में जो (उसकी) वेणी का निशान पड़ गया है, सो उज्ज्वल जामे के अन्दर से वैसा ही स्पष्ट जान पड़ता है—दीख पड़ता है।

वाही की चित चटपटी धरत अटपटे पाइ।
लपट बुझावत बिरह की कपट भरेऊ आइ ॥३९६॥

अन्वय—चित वाही की चटपटी पाइ अटपटे धरत, कपट भरेऊ आइ बिरह की लपट बुझावत।

चटपटी = चाह। अटपटे = उलटे-सीधे। लपट = ज्वाला।

चित्त में तो उसी (अन्य स्त्री) की चाह लगी है। अतएव, पैर अटपटे पड़ते हैं—यथास्थान ठीक नहीं पड़ते। यों कपट से भरा हुआ भी—(यद्यपि मन दूसरी स्त्री से लगा है, तो भी केवल तसल्ली देने के लिये ही)—आकर (वह नायक) विरह की ज्वाला बुझा जाता है।

कत बेकाज चलाइयति चतुराई की चाल।
कहे देति यह रावरे सब गुन निरगुन माल ॥३९७॥

अन्वय—कत बेकाज चतुराई की चाल चलाइयति, निरगुन माल यह रावरे सब गुन कहे देति।

कत = क्यों। बेकाज = व्यर्थ। निरगुन माल = बिना डोरे की माला। चतुराई की चाल चलाइयति = चालाकी-भरी बातें करते हो।

क्यों व्यर्थ चतुराई की बातें करते हैं ? यह बिना डोरे की माला ही आपके सब गुणों को कहे देती है (कि आपने किसी अन्य स्त्री का गाढ़ालिंगन किया है, जिससे उसकी छाती की माला का निशान बिना डोरी की माला के ऐसा आपकी छाती में पड़ गया है ।)

पावक सो नयननु लगै जावक लाग्यौ भाल ।
मुकुरु होहुगे नैंकु मैं मुकुरु बिलोकौ लाल ॥३६८॥

अन्वय—भाल जावक लाग्यौ नयननु पावक सो लगै । लाल मुकुरु बिलोकौ नैंकु मैं मुकुरु होहुगे ।

पावक = आग । जावक = महावर । मुकुरु होहुगे = मुकर (नठ) जाओगे । नैंकु = जरा, तुरत, एक क्षण में । मुकुरु = आईना ।

आपके मस्तक में लगा हुआ (किसी दूसरी स्त्री के पैर का) महावर (मेरे) नेत्रों में आग के समान (लाल) मालूम पड़ता है । एक क्षण में ही तुम मुकर (इन्कार कर) जाओगे, अतएव हे लाल ! आईने में देख लो ।

रही पकरि पाटी सु रिस भरै भौंह चितु नैन ।
लखि सपने पिय आन-रति जगतहुँ लगत हियैं न ॥३६९॥

अन्वय—पाटी पकरि रही भौंह चितु नैन सु रिस भरे, सपने पिय आन-रति लखि जगतहुँ हियैं न लगत ।

रिस = क्रोध । आन-रति = पर-स्त्री-प्रसंग करते हुए । हियैं = हृदय से ।

पलँग की पाटी पकड़कर रह गई । भौंह, मन और नेत्र क्रोध से भर गये—भौंहें तिरछी हुईं, मन रोषयुक्त हुआ और आँखें लाल हो गईं । स्वप्न में प्रीतम को दूसरी स्त्री से समागम करते देख

जगने पर भी (निकट ही सोये हुए प्रीतम के) हृदय से नहीं लगती।

रह्यौ चकित चहुँधा चितै चितु मेरौ मति भूलि।
सूर उयै आए रही दृगनु साँझ सी फूलि ॥४००॥

अन्वय—चकित चहुँधा चितै रह्यौ मेरो मति भूलि, सूर उयै आए दृगनु साँझ-सी फूलि रही।

चहुँधा = चारो ओर। सूर = सूर्य। दृगनु = आँखें।

ये (नायक) चकित होकर चारो ओर देख रहे हैं—भेद खुलने के भय से इधर-उधर ताक-झाँक कर रहे हैं। हे मेरे चित्त! तुम मत भूलो। देखो, ये सूर्योदय के समय तो आये हैं, किन्तु इनकी आँखें संध्या-सी फूल रही हैं—लाल-लाल हो रही हैं। (अतएव, निस्संदेह रात-भर कहीं जगे हैं।)

पंचम शतक

अनत बसे निसि की रिसनु उर बरि रही बिसेखि।
तऊ लाज आई झुकत खरे लजौंहैं देखि ॥४०१॥

अन्वय—निसि अनत बसे की रिसनु उर बिसेखि बरि रही—तऊ खरे लजौंहैं झुकत देखि लाज आई।

अनत = दूसरी जगह। रिसनु = क्रोध से। बरि रही = जल रही। झुकत = झुकते, पैरों पड़ते। खरे लजौंहैं=अत्यन्त लज्जित।

रात में दूसरी जगह रहने के कारण क्रोध से (नायिका का) हृदय विशेष रूप से जल रहा था। किन्तु (प्रीतम को इसके

लिये) अत्यन्त लज्जित और पैरों पड़ते देखकर (उसके हृदय में भी) लाज उमड़ आई—वह भी लज्जित हो गई।

सुरँग महावरु सौति पग निरखि रही अनखाइ।
पिय अँगुरिनु लाली लखैं खरी उठी लगि लाइ ॥४०२॥

अन्वय—सौति पग सुरँग महावरु अनखाइ निरखि रही। पिय अँगरिनु लाली लखैं खरी लाइ लगि उठी।

सुरँग = लाल। अनखाइ = अनखाकर, अनमनी होकर। खरी = अत्यन्त। लगि लाइ उठी = आग-सी लग उठी = जल उठी। लाइ = आग।

सौतिन के पैर का लाल महावर अनखा (अनमनी हो) कर देख रही थी। (इतने में) प्रीतम की अँगुलियों में लाली देखकर वह अत्यन्त जल उठी (इसलिये कि सौतिन के पैर में इन्हींने महावर लगाया है)।

कत सकुचत निरधक फिरौ रतियौ खोरि तुम्हैं न।
कहा करौ जो जाइ ए लगैं लगौंहैं मैन ॥४०३॥

अन्वय—सकुचत कत निधरक फिरौ तुम्हैं रतियौ खोरि न, जो ए लगौंहैं नैन लगैं जाइ कहा करौ।

कत = क्यों। रतियौ = रत्ती-भर भी। खोरि = दोष। कहा = क्या। लगौंहैं = लगनेवाले, लगीले, फँसनेवाले, लगन-भरे।

सकुचाते क्यों हो? बेधड़क घूमो। तुम्हारा तनिक भी दोष नहीं है। यदि ये लगीले नेत्र जाकर (किसी अन्य स्त्री से) लग जाते हैं, तो तुम क्या करोगे—तुम्हारा इसमें क्या दोष है? (दोष तो है आँखों का!)

प्रानप्रिया हिय मैं बसै नख-रेखा-ससि भाल।
भलौ दिखायौ आइ यह हरिहर रूप रसाल ॥४०४॥

अन्वय—प्रानप्रिया हिय मैं बसै नख-रेखा ससि भाल। यह हरिहर रसाल रूप आइ भलौ दिखायौ।

ससि = चन्द्रमा। भाल = मस्तक। रसाल = रसीला, सुन्दर। हरि-हर = विष्णु और शंकर।

(विष्णु के हृदय में बसी हुई लक्ष्मी के समान) तुम्हारी प्रियतमा तुम्हारे हृदय में बस रही है, और (शिव के ललाट पर शोभित चंद्ररेखा के समान) उस प्रियतमा के नख की रेखा-रूपी (द्वितीया का) चन्द्रमा शीश पर है। यह हरि-हर का सुन्दर (संयुक्त) रूप लाकर (प्रातःकाल ही) अच्छा दिखलाया!

नोट—भर-रात किसी दूसरी स्त्री के साथ विहार कर प्रातःकाल नायिका के पास आया है। उसके सिर पर उस स्त्री के नख की खरोंट है। इसपर नायिका व्यंग्य और उपालम्भ सुनाती है।

ह्याँ न चलै बलि रावरी चतुराई की चाल।
सनख हिय खिनखिन नटत अनख बढ़ावत लाल ॥४०५॥

अन्वय—रावरी चतुराई की चाल बलि ह्याँ न चलै, सनख हियैं खिनखिन नटत लाल अनख बढ़ावत।

ह्याँ = यहाँ। बलि = बलिहारी। रावरी = आपकी। सनख = नख-सहित। खिन-खिन = क्षण-क्षण। नटत = नहीं (इन्कार) करना। अनख = क्रोध। लाल = प्रीतम।

आपकी चतुराई की चाल, बलिहारी है, यहाँ न चलेगी। नख-रेखायुक्त वक्षस्थल होने पर भी—छाती पर किसी दूसरी स्त्री के नख की खरोंट होने पर भी क्षण-क्षण में इन्कार करके, हे लाल! क्यों अनख बढ़ा रहे हो—मुझे क्रोधित बना रहे हो?

न करु न डरु सबु जगु कहतु कत बिनु काज लजात।
सौंहैं कीजै नैन जौ साँची सौंहैं खात ॥४०६॥

अन्वय—न करु न डरु सबु जगु कहतु बिनु काज कत लजात, जो साँची सौंहै खात नैन सौंहैं कीजै।

कत = क्यों। बेकाज = व्यर्थ। सौंहैं = सम्मुख, सामने। कीजै = कीजिये। सौंहैं = शपथ, कसम।

"न करो, तो न डरो"—सारा संसार यही कहता है। (फिर) आप व्यर्थ क्यों लजाते हैं? (यदि) आप सच्ची कसम खाते हैं—यदि आप सचमुच आज रात को किसी दूसरी स्त्री के पास नहीं गये थे, तो आँखें सामने (बराबर) कीजिये—ढीठ होकर इधर ताकिये।

कत कहियत दुखु देन कौं रचि-रचि बचन अलीक।
सबै कहाउ रह्यौ लखैं भाल महाउर लीक ॥४०७॥

अन्वय—दुखु देन कौं रचि-रचि अलीक बचन कत कहियत। भाल महाउर लीक लखे सबै कहाउ रह्यौ।

कत = क्यों। रचि-रचि = बना-बनाकर, गढ़-गढ़कर। अलीक = झूठ। कहाउ = कहना, कथन। भाल = मस्तक। लीक = रेखा।

दुःख देने के लिये रच-रचकर झूठी बातें क्यों कह रहे हो? तुम्हारे मस्तक पर (किसी दूसरी स्त्री के पैर के) महावर की रेखा देखने से ही सब कहना (यों ही) रह जाता है—सब कहना झूठ साबित हो जाता है।

नख रेखा सोहैं नई अलसौंहैं सब गात।
सौंहैं होत न नैन ए तुम सौंहैं कत खात ॥४०८॥

अन्वय—नख नई रेखा सोहैं, सब गात अलसौंहैं, ए नैन सौंहैं न होत, तुम कत सौंहैं खात।

नख रेखा = नख की खरोंट, नख-क्षत। सोहैं = शोभतो है। अरसौंहैं = अलसाया हुआ। सौंहैं = सामने। सौंहैं = शपथ। कत = क्यों।

(हृदय पर किसी दूसरी स्त्री द्वारा दी गई) नख की नई रेखा शोभा दे रही है। (संभोग करने के कारण) सारा शरीर अलसाया हुआ है। (लज्जा से तुम्हारी) ये आँखें भी सामने नहीं होतीं। फर तुम क्यों (व्यर्थ) शपथ खा रहे हो? (कि मैं किसी दूसरी स्त्री के पास नहीं गया था।)

लाल सलोने अरु रहे अति सनेह सौं पागि।
तनक कचाई देत दुख सूरन लौं मुँह लागि ॥४०६॥

अन्वय—लाल सलोने अरु अति सनेह सौं पागि रहे, तनक कचाई सूरन लौं मुँह लागि दुख देत।

सलोने = (१) लावण्ययुक्त (२) लवण-युक्त। सनेह सौं पागि=(१) प्रेम में शराबोर (२) तेल में तला हुआ। कचाई = (१) बात का हल्कापन (२) कच्चापन। सूरन = एक प्रकार की तरकारी, ओल, जिसकी बड़ी-बड़ी गोल-मटोल गाँठें जमीन के अन्दर पैदा होती हैं; वह नमक और तेल में तला हुआ होने पर भी जरा-सा कच्चा रह जाने पर मुँह में सुरसुराहट और खाज-सी पैदा करता है। लौं = समान। मुँह लागि = (१) मुँह से लगकर, जबान पर आकर। (२) मुँह में खुजलाहट पैदा कर।

हे लाल! आप लावण्ययुक्त हैं, और स्नेह में अत्यन्त शराबोर भी हैं। किन्तु आपकी जरा-सी कच्चाई भी सूरन के समान मुख से लगकर दुःख देती है।

कत लपटइयतु मो गरैं सो न जु ही निसि सैन।
जिहिं चपकबरनी किए गुल्लाला रंग नैन ॥४१०॥

अन्वय—मो गरैं कत लपटइयतु सो न जु निसि सैन ही, जिहिं चंपकबरनी नैन गुल्लाला रँग किये।

सो = वह। जु = जो। ही = थी। सैन = शयन। जिहि = जिस। चम्पकबरनी = चम्पे के फूल के समान सुनहली देहवाली। गुल्लाला = एक प्रकार का लाल फूल।

मेरे गले से क्यों लिपटते हो? मैं वह नहीं हूँ, जो रात में साथ सोई थी, और जिस चम्पकवर्णी ने तुम्हारी आँखों को गुल्लाला के रंग का कर दिया था —रात-भर जगाकर लाल कर दिया था।

पल सोहैं पगि पीक रँग छल सोहैं सब बैन।
बल सौंहैं कत कीजियत ए अलसौंहैं नैन ॥४११॥

अन्वय—पल पीक रँग पगि सोहैं, सब बैन छल सोहैं। ए अलसौंहैं नैन बल सौंहैं कत कीजियत।

पल = पलक। सोहैं=शोभते हैं। पगि = पगकर, शराबोर होकर। पीक रँग=लाल रँग। छल सोहैं=छल से भरी हैं। बल = जबर्दस्ती। सौंहैं = सामने। अलसौंहैं = अलसाये हुए।

तुम्हारी पलकें पीक के रंग से शराबोर होकर शोभ रही हैं—रात-भर जगने से आँखें लाल हो गई हैं और, तुम्हारी सारी बातें छल से (भरी) हैं। फिर, इन अलसाई हुई आँखों को जबर्दस्ती सामने (करने की चेष्टा) क्यों कर रहे हो?

भये बटाऊ नेहु तजि बादि बकति बेकाज।
अब अलि देत उराहनौ अति उपजति उर लाज ॥४१२॥

अन्वय—नेहु तजि बटाऊ भये बेकाज बादि बकति। अलि अब उराहनो देत उर अति लाज उपजति।

बटाऊ = बटोही, रमता जोगी, विरागी। बादि = व्यर्थ, बेकार। बेकाज = बेमतलब, निष्प्रयोजन। अलि = सखी। उराहनौ = उलहना।

प्रेम छोड़कर ये बटोही हो गये, फिर व्यर्थ क्यों निष्प्रयोजन बकती हो? अरी सखी! अब इन्हें उलहना देने में भी हृदय में अत्यन्त लाज उपजती है—बड़ी लज्जा होती है।

नोट—बटोही से भी कोई करता है प्रीत।
मसल है कि जोगी हुए किसके मीत॥—मीर हसन

सुभर भर्यौ तुव गुन कननु पकयौ कपट कुचाल।
क्यौंधौं दार्यौं ज्यौं हियौ दरकतु नाहिंन लाल॥४१३॥

अन्वय—तुव गुन-कननु सुभर भर्यौ कपट कुचाल पकयौ, लाल क्यौं धौं दार्यौं ज्यौं हियौ नाहिन दरकतु।

सुभर भर्यौ = अच्छी तरह भर गया है। कननु = दानों से। पकयौ = पका दिया है। दार्यौं = दाड़िम = अनार। दरकतु = फटता है।

तुम्हारे गुण-रूपी दानों से अच्छी तरह भर गया है, और तुम्हारे कपट और कुचाल ने उसे पका भी दिया है; तो भी हे लाल! न मालूम क्यों अनार के समान मेरा हृदय फट नहीं जाता?

नोट—दाने भर जाने और अच्छी तरह पक जाने पर अनार आपसे आप फट जाता है। हृदय पकने का भाव यह है कि कपट-कुचाल सहते-सहते नाकों दम हो गया है। असह्य कष्ट के अर्थ में 'छाती पक जाना' मुहावरा भी है।

मैं तपाइ त्रय-ताप सौं राख्यौ हियौ-हमामु।
मति कबहूँ आवै यहाँ पुलकि पसीजै स्यामु॥४१४॥

अन्वय—मैं हियौ हमामु त्रयताप सौं तपाइ राख्यौ, मति कबहूँ पुलकि पसीजै स्यामु यहाँ आवै।

तपाइ = गर्म करके। त्रयताप = तीन ताप—कामाग्नि, विरहाग्नि और उद्दीपन-ज्वाला। हमामु = हम्माम, स्नानागार। मति=संभावना सूचक शब्द, शायद। पुलकि पसीजै = रोमांचित और पसीने से भीजे हुए।

मैंने अपने हृदय-रूपी स्नानागार को तीन तापों से तपाकर (इसलिये) रक्खा है कि शायद कभी (किसी दूसरी प्रेमिका से समागम करने के पश्चात्) रोमांचित और पसीने से तर होकर कृष्णचन्द्र यहाँ आ जावें (तो स्नान करके थकावट मिटा लें)।

नोट—कृष्ण के प्रति राधा का उपालम्भ। जिस तरह हम्माम में तीन ओर से (छत से, नीचे से तथा दीवारों से) पानी में गर्मी पहुँचाई जाती है, उसी प्रकार मैंने भी अपने हृदय को उक्त तीन तापों से गर्म कर रक्खा है।

आज कछू औरै भए छए नए ठिकठैन।
चित के हित के चुगुल ए नित के होहिं न नैन ॥४१५॥

अन्वय—नए ठिकठैन छए आज कछू औरै भए, चित के हित के चुगल ए नैन नित के न होहिं।

नए ठिकठैन छए=नये ठीकठाक से ठये, नवीन सजधज से सजे। चित के हित के=हृदय के प्रेम के। चुगुल = चुगलखोर। नित = नित्य।

नवीन सजधज से सजे आज ये कुछ और ही हो गये हैं। चित्त के प्रेम की चुगली करनेवाले ये नेत्र नित्य के-से नहीं हैं—जैसे अन्य दिन थे, वैसे आज नहीं हैं। (निस्संदेह आज किसीसे उलझ आये हैं।)

फिरत जु अटकत कटनि बिनु रसिक सुरस न खियाल।
अनत-अनत नित-नित हितनु चित सकुचत कत लाल ४१६

अन्वय—बिनु कटनि जु अटकत फिरत रसिक सुरस खियाल न, नित-नित अनत हितन लाल चित कत सकुचत।

अटकत फिरत = समय गँवाते फिरते हो। कटनि = आसक्ति। खियाल = विचार, तमीज़। अनत-अनत = अन्यत्र, दूसरी-दूसरी जगहों में। सकुचत = लजाते हो।

विना आसक्ति के ही जो अटकते फिरते हो—जिस-तिस से उलझते फिरते हो—सो, हे रसिक! क्या तुम्हें रस का कुछ विचार नहीं है? नित्य ही जहाँ-तहाँ प्रेम करके, हे लाल! तुम मन में क्यों लजा रहे हो? (तुम्हारी यह घर-घर प्रीति करते चलने की आदत देखकर मुझे भी लज्जा आती है।)

जो तिय तुम मनभावती राखी हियै बसाइ।
मोहि झुकावति दृगनु ह्वै वहिई उझकति आइ ॥४१७॥

अन्वय—जो तिय तुम मनभावती हियै बसाइ राखी, वहई दृगनु ह्वै आइ उझकति मोहि झुकावति।

तुम = तुम्हारी। मनभावती = प्रियतमा। झुकावति = चिढ़ाती है। दृगनु ह्वै = आँखों की राह से। वहिई = वही। उझकति = झाँकती है।

जो स्त्री तुम्हारी परम प्यारी है (और जिसे तुमने) हृदय में बसा रक्खा है, वही (तुम्हारी) आँखों की राह आ (मेरी तरफ) झाँक-झाँककर मुझे चिढ़ाती है।

नोट—नायिका अपनी ही सुन्दर मूर्त्ति को नायक की उज्ज्वल आँखों में प्रतिबिम्बित देख और उसे नायक के हृदय में बसी हुई अपनी सौत समझ कर ऐसा कहती है।

मोहि करत कत बावरी करैं दुराउ दुरै न।
कहे देत रँग राति के रँग निचुरत-से नैन ॥४१८॥

अन्वय—मोहि कत बावरी करत, दुराउ करै दुरै न, रँग निचुरत-से नैन राति के रँग कहे देत।

बावरी = पगली। दुराव = छिपाव। दुरै न = नहीं छिपता। रात्रि के रंग = गत रात्रि में किये गये भोग-विलास।

मुझे क्यों पगली बना रहे हो? छिपाने से तो छिप नहीं सकता। ये तुम्हारे रंग-निचुड़ते-हुए-से नेत्र—लाल रंग में शराबोर नेत्र—रात के (सारे) रंग कहे देते हैं (कि कहीं रात-भर जगकर तुमने केलि-रंग-किया है।)

पट सौं पोंछि परी करौ खरी भयानक भेख।
नागिनि ह्वै लागति दृगनु नागबेलि रंग रेख ॥४१९॥

अन्वय—पट सौं पोंछि परी करौ भेख खरी भयानक। नागबेलि रंग रेख दृगनु नागिनि ह्वै लागति।

पट = कपड़ा। परी करौ = दूर करो। खरी = अत्यन्त। भेख = वेष=रूप। दृगनु = आँखों में। नागबेलि = नाग-बल्ली, पान। रेख = लकीर।

कपड़े से पोंछकर दूर करो—मिटाओ। इसका वेष अत्यन्त भयावना है। (तुम्हारे नेत्रों में लगी हुई) पान की लकीर मेरी आँखों में नागिन के समान लग रही है (नागिन-सी डँस रही है।)

नोट—पर स्त्री के साथ रात-भर जगने से नायक की आँखें लाल-लाल हो रही हैं। इसलिये क्रुद्ध होकर नायिका व्यंग्यबाण छोड़ रही है।

ससि-बदनी मोकौ कहत हौं समुझी निजु बात।
नैन-नलिन प्यौ रावरे न्याव निरखि नै जात ॥४२०॥

अन्वय—प्यौ निजु बात हौं समुझी, मोकौ ससिबदनी कहत रावरे नैन-नलिन न्याव निरखि नै जात।

ससिबदनी = चन्द्रमुखी। मोको=मुझको। निजु=निजगुत, ठीक-ठीक। नलिन=कमल। प्यौ = पिय। नै जात=नम जाते हैं, झुक जाते हैं।

हे प्रीतम ! सच्ची बात मैंने आज समझी। मुझे आप चन्द्र-वदनी कहते हैं (इसी लिये) आपके नेत्र (अपने को) कमल न्याय समझकर (मेरे मुखचन्द्र के सामने) झुक (संकुचित हो) जाते हैं।

नोट—रात-भर नायक दूसरी स्त्री के पास रहा है। प्रातःकाल लज्जा वश नायिका के सामने उसकी आँखें नहीं उठतीं—झँपती हैं। चन्द्रमा के सामने कमल की आँखें बराबर न कर सकना हा न्याय है।

दुरैं न निघरघट्यौ दियैं ए रावरी कुचाल।
बिषु-सी लागति है बुरी हँसी खिसी की लाल ॥४२१॥

अन्वय—निघरघट्यौ दियैं रावरी ए कुचाल न दुरैं। लाल, खिसी की हँसी बिषु-सी बुरी लागति है।

निघरघट्यौ = सफाई देना। कुचाल = दुश्चरित्रता। रावरी = आपकी। खिसी की हँसी = खिसियानपन की हँसी, बेहयाई की हँसी।

सफाई देने पर भी आपकी यह कुचाल नहीं छिप सकती। हे लाल, (आपकी) यह बेहयाई की हँसी (मुझे) विष के समान बुरी लगती है।

जिहिं भामिनि भूषनु रच्यौ चरन-महाउर भाल।
उहीं मनौ अँखियाँ रँगो ओठनु कै रंग लाल ॥४२२॥

अन्वय—जिहिं भामिनि चरनमहाउर भाल भूषन रच्यौ, लाल मनौ उहीं ओठनु कै रँग अँखियाँ रँगीं।

जिहिं=जिसने। भामिनी = स्त्री। भाल = मस्तक। मनौ = मानों।

जिस स्त्री ने (अपने) पैरों के महावर से (तुम्हारे) मस्तक में भूषण रचा है—तुम्हारे मस्तक को भूषित किया है—हे लाल ! मानों उसीने अपने होठों के (लाल) रंग में तुम्हारी आँखें भी रंग दी हैं। (जिस मानिनी स्त्री के पैरों पड़कर तुमने मनाया है,

उसी ने रात-भर जगा-जगाकर तुम्हारी आँखें लाल-लाल कर दी हैं।)

नोट—"ओठनु के रँग अँखिआँ रँगी" में सहृदय-संवेद्य सरसता है।

चितवनि रूखे दृगनु की हाँसी बिनु मुसकानि।
मानु जनायौ मानिनी जानि लियौ पिय जानि ॥४२३॥

अन्वय—रूखे दृगनु की चितवनि, बिनु हाँसी मुसकानि, मानिनी मानु जनायौ, जानि पिय जानि लियौ।

रूखे = प्रेमरसहीन। दृगनु = आँखें। जानि = ज्ञानी, प्रवीण।

रूखी आँखों की चितवन और बिना हँसी की मुस्कुराहट से मानिनी ने अपना मान जताया और प्रवीण प्रीतम ने जान लिया—इन लक्षणों को देखकर नायिका का मान परख लिया।

बिलखी लखै खरी-खरी भरी अनख, बैराग।
मृगनैनी सैन न भजै लखि बेनी के दाग ॥४२४॥

अन्वय—मृगनैनी अनख बैराग भरी खरी-खरी बिलखी लखै, बेनी के दाग लखि सैन न भजै।

बिलखी = व्याकुलता से। अनख = क्रोध। बैराग = उदासीनता। सैन न भजै = शयन नहीं करती, शय्या पर नहीं जाती।

वह मृगनैनी क्रोध और उदासीनता से भरी खड़ी-खड़ी व्याकुलता के साथ देख रही है। (सुकोमल शय्या पर) वेणी का दाग देखकर शयन करने के लिये नहीं जाती—(यह समझकर कि इस पलंग पर प्रीतम ने किसी दूसरी स्त्री के साथ विहार किया है)

हँसि हँसाइ उर लाइ उठि कहि न रुखौंहैं बैन।
जकित थकित ह्वै तकि रहे तकत तिलौंछे नैन ॥४२५॥

अन्वय—हँसि हँसाइ उठि उर लाइ रुखौंहैं बैन न कहि तिलौंछे नैन तकत जकित थकित ह्वै तकि रहे।

लाइ = लगाओ। रुखौंहैं=नीरस। जकित = स्तम्भित। तिलौंछे = तिरछे।

हँसाकर हँसो और उठकर छाती मे लगा लो, यों रूखी बातें न कहो। (देखो) तुम्हारे तिरछी आँखों से देखते ही ये (प्रीतम) स्तम्भित और शिथिल-से हो रहे हैं।

रस की-सी रुख ससिमुखी हँसि हँसि बोलत बैन।
गूढ़ मानु मन क्यौं रहै भए बूढ़-रँग नैन ॥४२६॥

अन्वय—ससिमुखी रस कीसी रुख हँसि-हँसि बैन बोलति मन मानु गूढ़ क्यौं रहै नैन बूढ़-रँग भए।

रस = प्रेम। रुख = चेष्टा। गूढ़ = गुप्त, छिपा हुआ। बूढ़ = बीर-बहूटी, एक लाल बरसाती कीड़ा।

वह चन्द्रवदनी प्रेम की-सी चेष्टा से हँस-हँसकर बातें करती है, उसके हृदय का मान गुप्त कैसे रह सकता है, (फलतः) आँखें बीरबहूटी के रंग की (लाल-लाल) हो उठी हैं।

मुँह मिठासु दृग चीकने भौंहैं सरल सुभाइ।
तऊ करैं आदर खरौ खिन-खिन हियौ सकाइ ॥४२७॥

अन्वय—मुँह मिठासु दृग चीकने भौंहैं सुभाइ सरल, तऊ खरैं आदर खिन-खिन हियै खरौ सकाइ।

सुभाइ = स्वभावतः। तऊ = तेरी। खरैं-खरौ = अत्यन्त। खिन-खिन = क्षण-क्षण। सकाइ = शंकित होता है।

मुँह में मिठास है—बातें मीठी हैं, आँखें चिकनी हैं—स्नेह-स्निग्ध हैं, और भौंहें भी स्वभावतः सीधी हैं; तो भी तुम्हें अत्यन्त

आदर करते देखकर क्षण-क्षण (मेरा) हृदय बहुत डरता है (कि कहीं तुम रुष्ट तो नहीं हो—यह आदर-भाव बनावटी तो नहीं है)!

पति रितु औगुन गुन बढ़तु मानु माह कौ सीत।
जातु कठिन ह्वै अति मृदौ रवनी मन-नवनीतु ॥४२८॥

अन्वय—मानु माह कौ सीत पति औगुन रितु गुन बढ़तु। अति मृदौ रवनी-मन-नवनीतु कठिन ह्वै जातु।

माह = माघ। मृदौ = कोमल भी। नवनीत = घी, नैनू, मक्खन।

मान और माघ के जाड़े में (पूरी समता है)। (मान में) पति का अवगुण बढ़ता है—पति के दोष दिखलाई पड़ते हैं (और माघ के जाड़े में) ऋतु का गुण बढ़ता है—शीत का वेग बढ़ता है। (मान में) अत्यन्त कोमल रमणी का चित्त भी कठोर हो जाता है, (और माघ में) अत्यन्त कोमल मक्खन भी कठोर हो जाता है।

नोट—पति अवगुन रितु के गुनन, बढ़त मान अरु सीत।
होत मान तें मन कठिन, सीत कठिन नवनीत ॥—लल्लूलाल

कपट सतर भौंहैं करीं मुख अनखौंहैं बैन।
सहज हँसौंहैं जानिकै सौंहैं करति न नैन ॥४२९॥

अन्वय—कपट भौंहैं सतर-करीं मुख अनखौंहैं बैन, नैन सहज हँसौंहैं जानि कै सौंहैं न करति।

सतर = तिरछा। अनखौंहैं = क्रोधयुक्त। सहज = स्वभावतः। हँसौंहैं = हँसोड़, विनोदशील, चिर-प्रसन्न, प्रफुल्ल। सौंहैं = सामने।

छल से भौंहों को तिरछा कर लिया, और मुख से क्रोधयुक्त

वचन (कहने लगी); किन्तु अपने नेत्रों को स्वभावतः हँसोड़ जान कर (नायक के) सम्मुख नहीं करती। (इस शंका से कि कहीं ये आँखें हँसकर यह बनावटी मान बिगाड़ न दें !)

सोवत लखि मन मानु धरि ढिग सोयौ प्यौ आइ।
रही सुपन की मिलनि मिलि तिय हिय सौं लपटाइ ॥४३०॥

अन्वय—मन मानु धरि सोवति लखि प्यौ ढिग आइ सोयौ, तिय हिय सौं लपटाइ सुपन की मिलनि मिलि रही !

मन में मान धारण कर प्रियतमा को सोया देख प्रीतम (चुपचाप) उसके निकट आकर सो रहा। (इधर) प्रियतमा भी (अंग-स्पर्श से कामोद्दीपन होने के कारण) उसके हृदय से लिपटकर स्वप्न का मिलन मिलने लगी।

नोट—नायक पर नायिका क्रुद्ध थी। झूठमूठ सोने का बहाना किये पड़ी थी। नायक रहस्य समझ गया। चुपचाप उसके पास सटकर सो रहा। अब वह अपने प्रेमावेश को रोक न सकी, किन्तु खुलकर मिलने में अपनी हेठी समझ नींद की बेखबरी में ही नायक के गले से यों लिपट गई, मानों स्वप्न में मिल रही हो। स्त्रियों की तरल प्रकृति का यह फोटो है।

दोऊ अधिकाई भरे एकै गौं गहराइ।
कौनु मनावै को मनै मानै मन ठहराइ ॥४३१॥

अन्वय—दोऊ अधिकाई भरे एकै गौं गहराइ, कौनु मनावै को मनै माने मन ठहराइ।

गौं = घात। गहराइ = अड़ना, डटना। मानै = मान ही में।

दोनों ही अधिकाई से भरे हैं—एक दूसरे से बढ़े-चढ़े हैं (और दोनों) एक ही घात पर अड़े हुए हैं—(वे सोचते हैं कि

वह मनावेगी, और यह सोचती है कि वे मनावेंगे)। फिर कौन किसको मनावे और कौन किससे माने ? (शायद) मान ही में दोनों की मति ठहरती है—दोनों को मान ही पसन्द है।

लग्यो सुमनु ह्वैहै सुफलु आतप-रोसु निवारि।
बारी बारो आपनो सींचि सुहृदता-बारि ॥४३२॥

अन्वय—सुमनु लग्यो सुफल ह्वैहै आतप-रोसु निवारि आपनी बारी बारी सुहृदता-बारि सींचि।

सुमन = (१) सुन्दर मन (२) फूल। सुफल = (१) सफलता (२) सुन्दर फल। आतप = धूप, घाम। रोस-रोष = क्रोध। बारी = (१) अनुभव हीन बालिका (२) मँजराई हुई। बारी = (१) पारी, भाँज (२) वाटिका, फुलवारी। सुहृदता = प्रेम, सहृदयता। बारि = पानी।

(जब) सुन्दर मन (रूपी फूल) लगा है, (तब) सफलता (रूपी सुन्दर फल) होगी ही। अतः क्रोध-रूपी धूप को निवारण कर अपनी इस मँजराई हुई वाटिका में प्रेम-रूपी जल छिड़क—अथवा, अपनी पारी आने पर दिल खोलकर नायक से मिल।

गह्यौ अबोलौ बोलि प्यौ आपुहिं पठैं बसीठि।
दीठि चुराई दुहुँनु की लखि सकुचौंही दीठि ॥४३३॥

अन्वय—आपुहिं बसीठि पठै प्यो बोलि अबोलौ गह्यौ, दुहुँनु की सकुचौंहीं दीठि लखि दीठि चुराई।

आपुहिं = स्वयं ही। गह्यौ अबोलौ = मौन धारण कर लिया। बोलि = बुलाकर। बसीठि = दूती। दीठि = नजर। सकुचौंहीं = लजीली।

स्वयं दूती भेज प्रीतम को बुलाकर (उनके आने पर) मौन धारण कर लिया। (दूती और प्रीतम) दोनों की लजीली आँखों को देखकर (यह समझ कि दोनों ने मिलकर रतिक्रीड़ा की है,

क्रोध में आ) उसने, अपनी नजर चुरा ली—नायक से आँखें तक न मिलाईं ।

मानु करत बरजति न हौं उलटि दिवावति सौंह ।
करी रिसौंहीं जाहिगी सहज हँसौंहीं भौंह ॥४३४॥

अन्वय—मानु करत हौं न बरजति उलटि सौंह दिवावति । सहज हँसौंहीं भौंह रिसौंहीं करी जाहिगी ।

बरजति=बरजना, मना करना । सौंह = शपथ । रिसौंहीं=रोषयुक्त, टेढ़ी । सहज = स्वाभाविक । हँसौंहीं=हँसोड़, विकसित, प्रसन्नता-सूचक ।

मान करने से मैं मना नहीं करती, (वरन्) उलटे मैं शपथ दिलाती हूँ (कि तू अवश्य मान कर; किन्तु कृपाकर यह तो बता कि क्या तुझसे) ये स्वाभाविक हँसोड़ भौंहें रोषयुक्त (बंक) की जा सकेंगी ?

खरी पातरी कान की कौनु बहाऊ बानि ।
आक-कली न रली करै अली अली जिय जानि ॥४३५॥

अन्वय—कान की खरी पातरी कौनु बहाऊ बानि । अली जिय जानि अली आक-कली रली न करै ।

खरी=अत्यन्त । बहाऊ=बहा ले जानेवाली, बहकाऊ । आक= अकवन । रली करै = विहार करै । अली = सखी । अली = भौंरा ।

तुम कान की अत्यन्त पतली हो—जो कोई चुगली कर देता है, सुन लेती हो । यह कौन-सी बहकाऊ आदत है ? सखी ! यह बात हृदय से जान लो कि भौंरा अकवन की कली के साथ विहार नहीं करता—(तुम-सी तन्वंगी तरुणी को छोड़कर अन्य काली-कलूटी के पास वह रसिक नायक नहीं जा सकता ।)

रुख रूखी मिस रोष मुख कहति रुखौंहैं बैन।
रूखे कैसैं होत ए नेह चीकने नैन ॥४३६॥

अन्वय—रूखी रुख रोष मिस मुख रुखौंहैं बैन कहति, नेह चीकने नैन ए कैसै रूखै होत।

रुख = चेष्टा। मिस = बहाना। रुखौंहैं = रूखी-सूखी, कर्कश। नेह-चीकने = (१) स्नेह-स्निग्ध, प्रेम-रस में पगे (२) तेल से चीकने बने।

रूखी चेष्टा से क्रोध का बहाना कर मुख से रूखी बातें कहती है। किन्तु प्रेम से पगे ये नैन कैसे रूखे हों?

सौंहैं हूँ हेर्‌यौ न तैं केतो द्याई सौंह।
ए हो क्यौं बैठो किए ऐंठी-ग्वैंठी भौंह ॥४३७॥

अन्वय—केती सौंह द्याई तैं सौंहैंहूँ न हेर्‌यौ एहो ऐंठी-ग्वैंठी भौंह किए क्यों बैठी?

सौंहैं = सम्मुख। हेर्‌यौ = देखा। द्याई = दिलाई। सौंह = शपथ, कसम। एहो = अरी। ऐंठी-ग्वैंठी = टेढ़ी-मेढ़ी, वंकिम।

कितनी भी कसम दिलाई; किन्तु तूने सामने न देखा—मेरी ओर न ताका। अरी, यों भौंहों को टेढ़ी-मेढ़ी करके क्यों बैठी है?

एरी यह तेरी दई क्यौं हूँ प्रकृति न जाइ।
नेह भरे ही राखियै तउ रूखियै लखाइ ॥४३८॥

अन्वय—एरी दई यह तेरी प्रकृति क्यौं हूँ न जाइ, नेह भरे राखियै ही तउ रूखियै लखाइ।

प्रकृति = स्वभाव। लखाइ = दीख पड़ना। नेह=(१) प्रेम (२) तेल।

अरी! हायरी दई! यह तेरा स्वभाव किसी प्रकार नहीं बदलता। नेह से भरे (हृदय में) रखने पर भी तू रूखी ही दीख पड़ती है—नीरस (क्रुद्ध) ही मालूम पड़ती है।

बिधि बिधि कौन करै टरै नहीं परैं हूँ पान।
चितै कितै तैं लै धर्‌यौ इतौ इतैं तनु मान ॥४३९॥

अन्वय—पान परैंहूँ नहीं टरै बिधि कौन बिधि करै, चितै इतैं तनु इतौ मान कितै तैं लै धर्‌यो ?

विधि = ब्रह्मा। टरै = निकले, दूर हो। पान = पैरों। चितै = देखो। कितै = कहाँ से। इतौ = इतना। इतैं = इतने।

पैरों पड़ने से भी (तेरा मान) दूर नहीं होता। (अब) हे विधाता, किस विधान से यह दूर होगा ? देख, इतने-से (छोटे) शरीर में तूने इतना (बड़ा) मान कहाँ से लेकर रख लिया है ?

तो रस राँच्यौ आन-बस कहैं कुटिल-मति कूर।
जीभ निबौरी क्यौं लगै बौरी चाखि अँगूर ॥४४०॥

अन्वय—तो रस राँच्यौ आन-बस कहैं कुटिल मति कूर, बौरी जीभ अँगूर चाखि निबौरी क्यौं लगै ?

रस = प्रेम। राच्यौ = अनुरक्त है। आन-बस = परवश। कूर = क्रूर, निर्दय। निबौरी = नीम। लगै = आसक्त हो। बौरी = पगली।

(प्रीतम तो) तुम्हारे ही प्रेम में पगा है। (जो उसे) दूसरे के वश में बतलाते हैं, वे कुटिल-बुद्धि और निर्दय हैं। अरी पगली ! जीभ अंगूर चखकर नीम पर किस प्रकार अनुरक्त होगी—(तुम्हारे इस सुन्दर रूप के आगे उसे अन्य स्त्री कैसे पसंद आयेगी ?)

हाहा बदनु उघारि दृग सुफल करैं सबु कोइ।
रोज सरोजनु के परै हँसी ससी की होइ ॥४४१॥

अन्वय—हा हा बदनु उघारि सबु कोइ दृग सुफल करैं, सरोजनु के रोज परै ससी की हँसी होइ।

वदन उघारि = घूँघट उठा दो। रोज परै = रोना पड़े। हँसी = निंदा।

अहाहा! जरा अपना मुख उघार दो, ताकि सब कोई नेत्र सफल कर लें, कमलों को रोना पड़े, और चन्द्रमा की हँसी हो।

गहिली गरबु न कीजियै समै सुहागहिं पाइ।
जिय को जोवनि जेठ सो माह न छाँह सुहाइ ॥४४२॥

अन्वय—गहिली समै सुहागहि पाइ गरबु न कीजिये, जो छाँह जेठ जिय की जीवनि सो माह न सुहाइ।

गहिली = (सं० ग्रहिली) पगली। माह = माघ। छाँह = छाया।

अरी बावली! यह जवानी का समय और प्रीतम के प्रेम का सौभाग्य पाकर अभिमान न कर। देख, जो जेठ (जवानी) में प्राणों का प्राण है, वही छाया (स्त्री) माघ में (जवानी ढलने पर) नहीं सुहाती—अच्छी नहीं लगती।

कहा लेहुगे खेल पैं तजौ अटपटी बात।
नैकु हँसौंहीं हैं भई भौंहैं सौंहैं खात ॥४४३॥

अन्वय—खेल कहा पैं लेहुगे, अटपटी बात तजौ, सौंहैं खात भौंहैं नेकु हँसौंहीं भई हैं।

कहा = क्या। लेहुगे = लोगे, पाओगे। खेल पैं = विनोद से। अटपटी = बे-सिर-पैर की। हँसौंही = हँसीली। सौंहैं = सौगन्द।

इस खेल में क्या पा जाओगे? अटपटी बातों को छोड़ो। कितनी सौगन्दें खाने पर इसकी भौंहें जरा हँसीली हुई हैं—तुम्हारी निर्दोषिता के विषय में कितनी सौंगन्दें खाकर मैंने इसे कुछ-कुछ मनाया है। (फिर अंटसंट बोलकर इसे क्यों चिढ़ा रहे हो?)

सकुचि न रहियै स्याम सुनि ए सतरौंहैं बैन।
देत रचौंहैं चित कहे नेह नचौंहैं नैन ॥४४४॥

अन्वय—ए सतरौंहैं बैन सुनि स्याम सकुचि न रहियै, नेह नचौंहैं नैन रचौं-हैं चित कहे देत।

सकुचि = संकोच करके। सतरौंहैं = क्रोधपूर्ण। बैन = वचन। रचौंहैं = प्रेम में शराबोर, राँचे हुए। नचौंहैं = नाचते हुए, चंचल।

इन क्रोधपूर्ण बातों को सुनकर, हे श्याम, संकोच करके न रह जाइये। उसकी प्रेम से चंचल हुई आँखें ही अनुराग पूर्ण चित्त को बताये देती हैं—प्रेम से चंचल हुए नेत्र देखकर प्रकट होता है कि उसका हृदय प्रेम से शराबोर है।

चलौ चलैं छुटि जाइगौ हठु रावरैं संकोच।
खरे चढ़ाए हे ति अब आए लोचन लोच ॥४४५॥

अन्वय—चला चलैं रावरैं सँकोच हठ छुटि जाइगौ, हे ति, अब खरे चढ़ाए ही लोचन लोच आए।

चलैं = चलने पर। रावरैं = आपके, तुम्हारे। सँकोच = मुरौवत, मुलाइजा, लिहाज। खरे चढ़ाए = खूब चढ़े हुए, क्रुद्ध।

चलो, चलने पर तुम्हारे संकोच में पड़कर उसका हठ (मान) छूट जायगा—वह मान जायगी, क्योंकि जो नेत्र तब खूब चढ़े हुए (क्रुद्ध) थे, उनमें अब लोच (कोमलता) आ गई है—उसकी चढ़ी हुई आँखें अब नम्र हो गई हैं।

अनरस हूँ रस पाइयतु रसिक रसीली पास।
जैसैं साँठे की कठिन गाँठ्यौ भरी मिठास ॥४४६॥

अन्वय—रसिक रसीली पास अनरस हूँ रस पायतु, जैसैं साँठे की कठिन गाँठ्यौ भरी मिठास।

साँठे = ऊँख, ईख। गाँठ्यौ = गाँठ (गिरह) में भी।

ऐ रसिया! रसीली (नायिका) के पास अनरस (क्रोध और मान में भी रस (आनंद) मिलता है, जिस प्रकार ऊख की कठिन गाँठ में भी भरी हुई मिठास रहती है।

क्यौंहूँ सह मात न लगै थाके भेद उपाइ।
हठ दृढ़-गढ़ गढवै सु चलि लीजै सुरंग लगाइ ॥४४७॥

अन्वय—क्यौंहूँ सह मात न लगै भेद उपाइ थाके, सु चलि हठ-दृग-गढ़ गढ़वै सुरंग लगाइ लीजै।

सह = (१) शह = शतरंज की एक चाल, जिससे शह की मात होती है (२) युक्ति। मात न लगे = (१) मात (परास्त) नहीं होती (२) नहीं मानती। गढ़वै = किलेदार, गढ़पति। सुरंग = (१) जमीन के अन्दर ही अंदर खोदकर बना हुआ बन्द रास्ता, (२) सुन्दर प्रेम। कहीं-कहीं 'सह मात' के स्थान पर 'सहबात' भी पाठ है, जिसका अर्थ है मेल की 'बातचीत।'

किसी प्रकार शह देने से भी मात नहीं होती—किसी भी युक्ति से नहीं मानती। भेद (फूट) के सारे उपाय थक गये—मैं समझा-बुझा (फोड़) कर हार गई। (अतएव) अब आपही चल कर उस हठ-रूपी दृढ़ गढ़ की किलेदारिन को सुरंग लगाकर—सुन्दर प्रेम जताकर—(जीत) लीजिये।

वाही निसि तैं ना मिटौ मान कलह कौ मूल।
भलैं पधारैं पाहुने ह्वै गुड़हर कौ फूल ॥४४८॥

अन्वय—कलह कौ मूल मान वाही निसि तैं ना मिटौ, पाहुने गुड़हर कौ फूल ह्वै भलैं पधारैं।

कलह = झगड़ा। मूल = जड़। पाहुने = अतिथि, मेहमान। गुड़हर कौ फूल = अड़हुल का फूल।

हे झगड़े का मूल मान! तुम उसी रात से नहीं मिटे—उस

रात से अब तक तुम वर्त्तमान हो। ऐ पाहुने! अड़हुल का फूल होकर तुम अच्छे आये!

नोट—भाव यह है कि मान कभी-कभी पाहुने की तरह आता और कुछ काल तक ठहरता है और, स्त्रियों का विश्वास है कि जिस घर में अड़हुल का फूल होगा, वहाँ स्त्री-पुरुष में न पटेगी। इसलिये यहाँ 'पाहुने' और 'अड़हुल का फूल' कहा है।

आए आपु भली करी मेटन मान-मरोर।
दूरि करौ यह देखिहै छला छिगुनिया छोर ॥४४९॥

अन्वय—मान-मरोर मेटन आए आपु भली करी। छिगुनिया छोर छला दूरि करौ यह देखिहै।

छला = अँगूठी। छिगुनिया = कनिष्ठा अँगुली। छोर = अन्त।

मान का मरोड़ (ऐंठ) मेटने को—समझा-बुझाकर (इस नायिका को) मनाने के लिये—आये, सो तो आपने अच्छा ही किया। किन्तु छिगुनी के छोर में पहनी गई इस अँगूठी को—(जो निस्संदेह किसी अन्य युवती की है, क्योंकि छोटी—पतली उँगलियों में पहनी जाने वाली—होने के कारण आपकी अँगुली के छोर पर ही अटकी हुई है)—दूर कीजिये, (नहीं तो) यह देख लेगी (तो फिर मनाना कठिन हो जायगा!)

हम हारीं कै कै हहा पाइनु पास्यो प्यौरु।
लेहु कहा अजहूँ किए तेह तरेस्यौ त्यौरु ॥४५०॥

अन्वय—हहा कै कै हम हारीं अरु प्यौ पाइनु पास्यौ, अजहूँ त्यौरु तेह तरेस्यौ किए कहा लेहु।

कैकै हहा = हाय-हाय या दौड़-धूप और कोशिश-पैरवी करके। पास्यौ=

डाल दिया। प्यौरु = प्यौ+अरु = अरु प्यौ = और प्रीतम को। अजहूँ = अब भी, इतने पर भी। तेह-तरेरयौ त्यौरु = क्रोध से त्यौरियाँ चढ़ाये।

हाय-हाय करके मैं हार गई, और प्रीतम को भी तुम्हारे पैरों पर लाकर डाल (गिरा) दिया—(मैं भी समझा-बुझाकर थक गई और नायक भी मेरे कहने से तुम्हारे पैरों पड़ा)—इतने पर भी क्रोध से त्योरियाँ चढ़ाकर क्या पाओगी ?

लखि गुरुजन बिच कमल सौं सीसु छुवायौ स्याम।
हरि सनमुख करि आरसी हियैं लगाई बाम ॥४५१॥

अन्वय—गुरुजन बिच लखि स्याम सीसु कमल छुवायौ, बाम हरि सनमुख आरसी करि हियैं लगाई।

गुरुजन = श्रेष्ठ पुरुष, माता-पिता आदि। सौं = से। आरसी = आईना। बाम = वामा = युवती स्त्री।

(उसे) गुरुजनों के बीच में देखकर श्रीकृष्ण ने अपना सिर कमल से छुलाया (अर्थात्—हे कमलनयने ! अभिवादन करता हूँ) इसपर उस स्त्री (राधिका) ने दर्पण को श्रीकृष्ण के सम्मुख करके हृदय से लगाया (अर्थात्—इसी दर्पण के समान मेरे निर्मल हृदय में भी तुम्हारा प्रतिबिम्ब विराज रहा है)।

मनु न मनावन कौं करै देतु रुठाइ रुठाइ।
कौतुक लाग्यौ प्यौ प्रिया खिझहूँ रिझवति जाइ ॥४५२॥

अन्वय—मनावन कौं मनु न करै रुठाइ रुठाइ देतु, प्यौ कौतुक लाग्यौ प्रिया खिझहूँ रिझवति जाइ।

कौतुक = विनोद, मनोरंजन। लागै = निमित्त। खिझहूँ = खीझ (झुँझला) कर ही। रिझवति जाइ = प्रसन्न करती जाती है।

(प्रियतमा के रूठने की भावभंगी पर मुग्ध होने के कारण

प्रीतम को प्रिया के) मनाने का मन नहीं करता, (अतएव) वह बार-बार उसे रुठा देता है। (इधर) प्रीतम के कौतुक के लिये प्रियतमा भी (झूठमूठ अधिकाधिक) खीझकर ही उसे रिझाती जाती है।

सकत न तुव ताते बचन मो रस कौ रस खोइ।
खिनखिन औटे खीर लौं खरौ सवादिलु होइ ॥४५३॥

अन्वय—तुव ताते बचन मो रस कौ रस खोइ न सकत, खिनखिन औटे खीर लौं खरौ सवादिलु होइ।

ताते=(१) जली-कटी (२) गरम। रस=प्रेम। रस=(१) स्वाद (२) पानी। खिन-खिन=क्षण-क्षण। खीर लौं=(क्षीर) दूध की तरह।

तुम्हारी जली-कटी बातें मेरे प्रेम के रस को खो (सोख या सुखा) नहीं सकतीं—नष्ट नहीं कर सकतीं। (वह तो इन तप्त वचनों से) क्षण-क्षण (अधिकाधिक) औंटे हुए दूध के समान और भी अधिक स्वादिष्ठ होता जाता है।

खरैं अदब इठलाहटी उर उपजावति त्रासु।
दुसह संक विष कौ करै जैसैं सोंठि मिठासु ॥४५४॥

अन्वय—खरैं अदब इठलाहटी उर त्रासु उपजावति, जैसैं सोंठि मिठासु विष कौ दुसह संक करै।

खरैं=अत्यंत। अदब=शिष्टता। इठलाहटी=ऐंठ भी। त्रास=डर। दुसह=कठोर। सोंठि मिठासु=सोंठ में मिठास आ जाने पर वह विषैली हो जाती है, खाने से दस्त-कै और सिर-दर्द होने लगता है।

(प्यारी का) अदब के साथ इठलाना भी हृदय में भय उत्पन्न करता है। जिस प्रकार सोंठ की मिठास (सोंठ का स्वाभाविक

स्वाद तीता है, अतएव उसकी मिठास) विष की कठिन शंका पैदा करती है ।

राति द्यौस हौंसै रहति मान न ठिकु ठहराइ ।
जेतौ औगुन ढूँढ़ियै गुनै हाथ परि जाइ ॥४५५॥

अन्वय—राति द्यौस हौंसे रहति, मान ठिकु न ठहराइ, जेतौ औगुन ढूँढ़ियै गुनै हाथ परि जाइ ।

हौसैं रहति = हौसला ही बना रहता है । ठिकु न ठहराइ = ठीक नहीं जँचता । हाथ परि जाइ = हाथ लग (मिल) जाते हैं ।

रात-दिन उत्सुकता बनी रहती है (कि मान करूँ), किन्तु मान ठीक नहीं जँचता । (क्योंकि मान करने के बहाने के लिये) जितने ही अवगुण उसमें ढूँढ़ती हूँ, उतने ही गुणों (पर) हाथ पड़ जाते हैं ।

नोट— कविवर 'रहीम' की नायिका कहती है—"करत न हिय अपरधवा सपने पीय, मान करन की बेरियाँ रहि गइ हीय ।"

सतर भौंह रूखे बचन करति कठिनु मनु नीठि ।
कहा करौं ह्वै जाति हरि हेरि हँसौंहीं डीठि ॥४५६॥

अन्वय—नीठि भौंह सतर बचन रूखे मनु कठिनु करति, कहा करौं हरि हेरि डीठि हँसौंहीं ह्वै जाति ।

सतर = तिरछी । नीठि = मुश्किल से । कहा = क्या । हेरि = देखकर । हँसौंहीं = हँसीयुक्त, प्रफुल्ल ।

(मान करने की गरज से) मुश्किल से भौंहें तिरछी, वचन रूखे और मन कठोर करती हूँ, (किन्तु) क्या करूँ, श्रीकृष्ण को देखते ही दृष्टि विकसित हो जाती है—आँखें हँस पड़ती हैं ! (फिर मान कैसे हो ?)

मो ही कौ छुटि मान गौ देखत ही ब्रजराज।
रही घटिक लौं मान-सी मान करे की लाज ॥४५७॥

अन्वय—ब्रजराज देखत ही मो ही कौ मान छुटि गौ, मान-सी मान करे की लाज घरिक लौं रही।

मो = मेरे। ही = हृदय। छुटि गो = छूट गया। ब्रजराज = श्रीकृष्ण। घरिक = घड़ी + एक = एक घड़ी। मान-सी = मान के समान।

श्रीकृष्ण को देखते ही मेरे हृदय का मान छूट गया। हाँ, उस मान के समान मान करने की लाज एक घड़ी तक अवश्य रही—(एक घड़ी तक इस लाज में ठिठकी रही कि ऐसा मान नाहक क्यों किया, जो निभ न सका।)

दहैं निगोड़े नैन ए गहैं न चेत अचेत।
हौं कसुकै रिसहे करौं ए निसिखे हँसि देत ॥४५८॥

अन्वय—ए निगोड़े नैन दहैं, अचेत चेत न गहैं, हौं कसु कै रिसहे करौं ए निसिखे हँसि देत।

चेत न गहैं = होश नहीं सँभालते। अचेत = बेहोश। कसु कै = कसकर, चेष्टा करके। रिसहे = रोषयुक्त। निसखे = अशिक्षित, मूर्ख।

ये निगोड़े नैन जल जायँ। ये बेहोश कुछ भी होश नहीं सम्भालते। मैं कसकर—बड़ी चेष्टा से—इन्हें रोषयुक्त बनाती हूँ, और ये मूर्ख हँस देते हैं।

तुहूँ कहति हौं आपु हूँ समुझति सबै सयानु।
लखि मोहनु जौ मनु रहै तौ मन राखौं मानु ॥४५९॥

अन्वय—तुहूँ कहति हौं आपुहूँ सबै सयानु समुझति, मोहनु लखि जौ मनु रहै तौ मन मानु राखौं।

आपुहूँ = स्वयं भी। सयानु = चतुराई की बातें, चातुरी।

तू भी कहती है और मैं स्वयं भी सब चातुरी समझती हूँ। किन्तु मोहन को देखकर जो मन स्थिर रह सके, तभी तो मन में मान रक्खूँ ? (उन्हें देखकर मन ही नहीं स्थिर रहता, फिर मान कैसे करूँ ?)।

मोहिं लजावत निलज ए हुलसि मिलत सब गात।
भानु उदै की ओस लौं मानु न जानति जात ॥४६०॥

अन्वय—ए निलज सब गात हुलसि मिलत मोहिं लजावत, भानुउदै की ओस लौं मानु जानति न जात।

हुलसि = लालसा से भरकर। भानु = सूर्य। मानु = मान, गर्व।

(मेरे मान करने पर भी) ये सारे निर्लज्ज अंग (भुजाएँ, हृदय, आँखें, कपोल आदि) ललककर (उन्हें देखते ही) मिल जाते हैं, और मुझे लज्जित कर देते हैं। (सो क्या कहूँ) सूर्योदय (के बाद) की ओस के समान नहीं जान पड़ता। (समझ में नहीं आता, कैसे गायब हो जाता है।)

खिचैं मान अपराध हूँ चलि गै बढैं अचैन।
जुरत दीठि तजि रिस खिसी हँसे दुहुन के नैन ॥४६१॥

अन्वय—दुहुँन के नैन मान अपराध हूँ खिचैं, अचैन बढ़ चलि गै, दीठि जुरत रिस खिसी तजि हँसे।

अचैन = बेचैनी। जुरत = जुड़ते। दीठि = नजर। खिसी = लाज।

दोनों के नेत्र पहले मान और अपराध के कारण (नायिका के मान और नायक के अपराध के कारण) ही खिंचे रहे—तने रहे। किन्तु बेचैनी बढ़ते ही (एक दूसरे से मिलने को) चल दिये और नजर जुड़ते (आँखें चार होते) ही क्रोध एवं लाज छोड़कर दोनों के नेत्र हँस पड़े (खिल उठे)।

नभ लाली चाली निसा चटकाली धुनि कीन।
रति पाली आली अनत आए बनमाली न ॥४६२॥

अन्वय—नभ लाली चाली निसा चटकाली धुनि कीन, बनमाली न आए, आली अनत रति पाली।

नभ = आकाश। चटकाली = पक्षियों का समूह। रति पाली = प्रेम का पालन किया, समागम या विहार किया। आली = सखी। अनत = अन्यत्र।

आकाश में लाली छा गई, रात बीत गई, पक्षि-समूह चहचहाने लगा, (किन्तु) कृष्णजी न आये। हे सखि! (मालूम पड़ता है कि) उन्होंने कहीं अन्यत्र प्रेम का पालन किया (विहार किया।)

दच्छिन पिय ह्वै बाम बस बिसराँई तिय-आन।
एकै बासरि कैं बिरह लागी बरष बिहान ॥४६३॥

अन्वय—दच्छिन पिय ह्वै बाम बस तिय-आन बिसराँई, एकै बासरि कैं बिरह बरष बिहान लागी।

दच्छिन = दक्षिण = चतुर, दक्ष। वाम = कुटिला (स्त्री)। बासरि = दिन। तिय-आन = स्त्रियों की आन (टेक)। बिहान लागी = बीतने लगी।

चतुर नायक होकर भी तुमने कुटिला के वश में पड़कर प्रेमिका की आन भुला दी—प्रेमिका अपने प्रीतम को दूसरी स्त्री के वश में नहीं देख सकती, यह बात भुला दी। (चलकर अपनी प्यारी को तो देखो कि) एक ही दिन का विरह उसे वर्ष के समान बीत रहा है।

आपु दियौ मन फेरि लै पलट दोनी पीठि।
कौन चाल यह रावरी लाल लुकावत डीठि ॥४६४॥

अन्वय—आपु दियौ मन फेरि लै पलटैं पीठि दीनीं, लाल रावरी यह कौन चाल डीठि लुकावत।

मन फेरि लै=मन फेर लिया, उदासीन बन गये। पलटे=बदले में। पीठी दीनी=पीठ दी=विमुख बन गये। डीठि लुकावत=नजर चुराते हो=शर्माते हो।

अपना दिया हुआ मन वापस लेकर बदले में पीठ दे दी! यहाँ तक तो अच्छा था, क्योंकि एक चीज फेर ली, तो उसके बदले में दूसरी दे दी—मन फेर लिया और पीठ दे दी!) किन्तु हे लाल, आपकी यह कौन-सी चाल है कि अब नजर चुरा रहे हो? (चुराना तो चोर का काम है!)

नोट—"मन फेर लेना, पीठ देना, आँखें चुराना"—इन तीन मुहावरों द्वारा इस दोहे में कवि ने जान डाल दी है। सिवा उर्दू-कवियों के कोई भी हिन्दी-कवि इस प्रकार मुहावरे की करामात नहीं दिखा सका है। हाँ, 'रसलीन' ने अच्छी मुहावरे-बन्दी की है।

मोहि दयौ मेरौ भयौ रहतु जु मिलि जिय साथ।
सो मनु बाँधि न सौंपियै पिय सौतिन कैं हाथ ॥४६५॥

अन्वय—मोहि दयौ मेरौ भयो, जु जिय साथ मिलि रहतु सो मनु बाँधि पिय सौतिन कैं हाथ न सौंपियै।

जिय=जीव, प्राण। सो=वह। सौंपिये=जिम्मे कीजिये।

आपने मुझे दिया, (फलतः) वह मेरा हो गया, और अब वह मेरे प्राणों के साथ मिलकर रहता है। उस मन को (जबर्दस्ती) बाँधकर, हे प्रीतम, सौतिन के हाथ मत सौंपिये। (एक तो उस पर मेरा अधिकार, दूसरे वह मुझसे राजी, फिर कानूनन उसे दूसरे को देना आपको उचित नहीं!)

मार्यौ मनुहारिनु भरी गार्यो खरी मिठाहिं ।
वाकौ अति अनखाहटौ मुसक्याहट बिनु नाहिं ॥४६६॥

अन्वय—मार्यौ मनुहारिनु भरी गार्यौ खरी मिठाहिं, वाकौ अति अनखाहटौ बिनु मुसक्याहट नाहिं ।

मार्यौ = मार भी। मनुहारिनु = मनुहारों, प्यारों । गार्यौ=गाली भी । खरी = अत्यन्त । मिठाहिं = मीठी । अनखाहटौ = क्रोध भी ।

उसकी मार भी प्यारों से भरी है, और गाली भी अत्यन्त मीठी है। उसका अत्यन्त क्रोध भी बिना मुस्कुराहट के नहीं होता । (नायक के हृदय में नायिका के प्रतिकूल कुछ नहीं सूझता !)

नोट—इसी प्रकार संस्कृत के एक कवि कहते हैं—"लम्बकुचा-लिंगनतो लिकुचकुचायाः पादताडनं श्रेयः"—"लम्बे कुचवाली के आलिंगन से छोटे कुचवाली का पद-प्रहार भी अच्छा" । मसल मशहूर है—'दुधैल गाय की लात ही भली !'

तुम सौतिन देखत दई अपनैं हिय तैं लाल ।
फिरत डहडही सबनु मैं वहै मरगजी माल ॥४६७॥

अन्वय—लाल तुम सौतिन देखत अपनैं हिय तैं दई, वहै मरगजी माल सबन मैं डहडही फिरति ।

देखत = देखते रहने पर । डहडही=हरी-भरी, फूली-फली,आनन्दित । सबनु मैं=सब लोगों या सखियों के बीच में । मरगजी=मलिन, मुरझाई हुई ।

हे लाल, तुमने सौतिन के देखते रहने पर भी अपने हृदय से (माला उतारकर) उसे दी, सो उसे मुरझाई हुई (मलिन) माला को पहने वह सब (सहेलियों) में आनन्दित बनी फिरती है।

बालमु बारैं सौति कैं सुनि पर-नारि-बिहार ।
भो रसु अनरसु रिस रली रीझि खीझि इकबार ॥४६८॥

अन्वय—सौति कैं बारै बालम पर-नारि-बिहार सुनि रसु अनरसु रिस रली रीझि खीझि इकबार भो।

बालम = वल्लभ = पति। बारै = पारी, भाँज। विहार = सम्भोग। रसु = सुख। अनुरसु = दुःख। रिस = क्रोध। रली = क्रीड़ा, मजाक। रीझि = प्रसन्नता। खीझि = अप्रसन्नता।

सौतिन की पारी में अपने पति का दूसरी स्त्री के साथ विहार करने की बात सुनकर नायिका के मन में सुख और दुःख, क्रोध और मजाक, रीझ और खीझ (ये परस्पर-विरोधी भाव) एक ही समय हुए।

नोट—सुख, मजाक और रीझ इसलिये कि अच्छा हुआ, सौतिन को दुःख हुआ; और दुःख, क्रोध तथा खीझ इसलिये कि कहीं मेरी पारी में भी ऐसा ही न हो।

सुघर-सौति-बस पिउ सुनत दुलहिनि दुगुन हुलास।
लखी सखी-तन दीठि करि सगरब सलज सहास॥४६६॥

अन्वय—पिउ सुघर सौति-बस सुनत दुलहिनि हुलास दुगुन, दीठि सगरब सलज सहास करि सखी तन लखी।

सुघर = सुन्दर गढ़न की, सुडौल। दुलहिनि = नई बहू, नवोढ़ा। हुलास = आनन्द। सखी-तन = सखी की ओर। दीठि = नजर।

अपने पति को सुन्दरी सौतिन के वश में सुनकर नई बहू का आनन्द दुगुना हो गया। उसने गर्वीली, लजीली और हँसीली नजरों से सखी की ओर देखा।

नोट—आनन्दित होकर सखी की ओर देखने का भाव यह है कि हे सखी, घबराओ मत, यदि वे वस्तुतः सौन्दर्य्य के प्रेमी हैं, तो एक-न-एक दिन अवश्य मेरी ओर आकृष्ट होंगे। सौन्दर्यगर्विता !!

हठि हितु करि प्रीतम लियौ कियौ जु सौति सिंगारु।
अपन कर मोतिनु गुह्यौ भयौ हरा पर-हारु ॥४७०॥

अन्वय-अपने कर मोतिनु गुह्यौ हठि हित करि प्रीतम लियौ जु सौति सिंगारु कियौ हरा हर-हारु भयौ।

हित=प्रेम। सिंगारु=शृंगार। गुह्यौ=गूँथकर। हरा=हार, माला। हर-हारु=शिव की माला, सर्प की माला।

अपने हाथों से मोतियों की माला गूँथकर हठ और प्रेम करके प्रीतम के हृदय का जो सौतिन ने शृङ्गार किया—प्रीतम के हृदय को उस मोती की माला से आभूषित किया—सो (वह मोती की माला) नायिका के लिये सर्प की माला (सी दुःखदायी) हुई।

बिथुर्‌यौ जावकु सौति पग निरखि हँसी गहि गाँसु।
सलज हँसौंहीं लखि लियौ आधी हँसी उसाँसु ॥४७१॥

अन्वय—सौति पग बिथुर्‌यौ जावकु निरखि गाँसु गहि हँसी, सलज हँसौंहीं लखि आधी हँसी उसाँसु लियौ।

बिथुर्‌यौ=पसरा हुआ। जावकु=महावर। गाँसु गहि=ईर्षा से पकड़कर, डाह से। उसाँसु=ऊँची साँस, उच्छ्वास, दीर्घनिःश्वास।

(अपनी) सौतिन के पैरों में पसरा हुआ महावर देख (उसे फूहड़ समझ) ईर्षा से हँसने लगी। (किन्तु अपनी इस हँसी के कारण) सौतिन को लजीली होकर हँसते देख (यह समझा कि यह बेढंगा महावर नायक ने लगाया है) आधी हँसी में ही (दुःख से) लम्बी साँस लेने लगी।

बाढ़तु तो उर उरज-भरु भरि तरुनई बिकास।
बोझनु सौतिनु कैं हियैं आवति रूँधि उसास ॥४७२॥

अन्वय—तरुनई बिकास भरि उरज-भरु बाढ़तु तो उर, बोझनु रुँधी उसास आवति सौतिनु कै हियैं।

उर = छाती। उरज-भरु = कुचों का भार। तरुनई = जवानी। विकास = खिलना। बोझनु = बोझ से। हियैं = हृदय में। उसास = उच्छ्वास, गर्म आह, लम्बी साँस, दुःख-भरी साँस।

जवानी के विकास से भरकर कुचों का भार बढ़ता जाता है तुम्हारी छाती पर, और उसके बोझ से रुँधी हुई उसासें आती हैं सौतिन के हृदय में। (कैसा आश्चर्य है!)

ढीठि परोसिनि ईठि ह्वै कहे जु गहे सयानु।
सबै सँदेसे कहि कह्यौ मुसुकाहट में मानु ॥४७३॥

अन्वय—ढीठि परोसिनि ईठि ह्वै जु सयानु गहे कहे स सँदेसे कहि कह्यौ मुसुकाहट में मानु?

ढीठि = ढिठाई से भरी, धृष्ट, शोख। ईठि = इष्ट-मित्र, सुहृद। सयानु गहैं=चतुराई के साथ।

धृष्ट परोसिन ने मित्र बनकर जो कुछ कहने थे सो चतुराई के साथ कहे (और अन्त में कहा कि) इन सब सन्देशों को कह कर (अन्त में तुम्हारे प्रीतम ने) कहा है कि केवल मुस्कुराहट में मान कैसा?

नोट—कृष्ण कवि की सवैया से इसका भाव स्पष्ट हो जाता है—"जाहिं परोसिन के दुख पीसों झुकी ललना रिस जी में ढिठाई। सोही परोसिन ढीठ यहाँ लगि ईठ ह्वै याहि मनावन आई। प्रीतम के जे सँदेस हुते वे कहे सबही करि के चतुराई। येते पै मान कह्यौ मुसुकाय यहै कहि प्यारी खरी कै रिसाई।"

चलत देत आभारु सुनि उहीं परोसिहिं नाह।
लसी तमासे की दृगनु हाँसी आँसुनु माँह ॥४७४॥

अन्वय—चलत नाह उहीं परोसिहिं आभारु देत सुनि, दृगनु आँसुनु माँह तमासे की हाँसी लसी।

आभारु = घर की देख-भाल का भार। नाह = नाथ, पति। लसी= शोभित हुई। तमाशे की हँसी = कौतुक की हँसी। दृगनु = आँखों में। आँसुनु माँह = आँसुओं के बीच।

चलते समय अपने पति को उसी पड़ोसी (अपने गुप्त प्रेमी) को घर की देख-भाल का भार देते सुनकर उसकी आँखों में आँसुओं के बीच कौतुक की हँसी शोभित हुई।

नोट—यद्यपि आँसू ढालकर ऊपर से वह दिखला रही है कि पति के (विदेश) जाने से वह दुःखित है; किन्तु यह देखकर कि घर की देख-रेख का भार उन्होंने पड़ोसी ही को सौंपा है, अतएव अब इस (अपने गुप्त प्रेमी) से खुलकर खेलने में कोई अड़चन न होगी, वह मन-ही-मन आनंदित भी हो रही है।

छला परोसिनि हाथ तैं छलु करि लियौ पिछानि।
पियहिं दिखायौ लखि बिलखि रिस-सूचक मुसुकानि॥

अन्वय—छला पिछानि परोसिनि हाथ तैं छल करि लियौ बिलखि रिस-सूचक मुसुकानि लखि पियहिं दिखायौ।

छला = अँगूठी। छल करि = चालाकी या चालबाजी से। पिछानि = पहचानकर। लखि = देखती हुई। बिलखि = व्याकुल होकर।

उस अँगूठी को पहचान कर पड़ोसिन के हाथ से छल करके ले लिया और फिर व्याकुल होकर क्रोध-सूचक मुस्कुराहट के साथ

(प्रीतम की ओर) देखती हुई प्रीतम को उसे दिखलाया (कि देखिये, यह आपकी अँगूठी उसकी अँगुली में कैसे गई !)

रहिहैं चंचल प्रान ए कहि कौन की अगोट।
ललन चलन की चित धरी कल न पलनु की ओट ॥४७६

अन्वय—कहि कौन की अगोट ए चंचल प्रान रहिहैं, ललन चलन की चित धरी पलनु की ओट कल न।

कहि = कहो। अगोट = अग्र + ओट = आड़। ललन = प्रीतम। चित धरी = इरादा किया है, निश्चय किया है। पलनु = पलकें, आँखें।

कहो, किसकी आड़ में ये चंचल प्राण (टिक) रहेंगे—कौन इन प्राणों को निकलने से रोक सकेगा ? प्रीतम ने (विदेश) चलने की बात चित्त में धरी है और यहाँ आँखों की ओट होते ही कल नहीं पड़ती—(उन्हें देखे विना क्षण-भर शान्ति नहीं मिलती)।

पूस मास सुनि सखिन पैं साँई चलत सवारु।
गहि कर बीन प्रबीन तिय राग्यौ रागु मलारु ॥४७७॥

अन्वय—पूस मास सखिन पैं सुनि साँई सवारु छलत प्रबीन तिय कर बीन गहि मलारु रागु राग्यौ।

साँई = स्वामी, पति। सवारु = सवेरे। राग्यौ = गाया, अलापा।

पूस के महीने में, सखियों से (यह) सुनकर कि कल प्रातःकाल प्रीतम (परदेश) जायँगे, वह सुचतुरा स्त्री हाथ में वीणा लेकर मलार-राग गाने लगी (ताकि मेघ बरसे और प्रीतम का परदेश जाना रुक जाय; क्योंकि वर्षा से रास्ते बन्द हो जायँगे)।

नोट—संगीत-शास्त्र के अनुसार मलार-राग गाने से मेघ बरसता है और सुखद बरसात में रसिक पति परदेश नहीं जाते।

ललन चलनु सुनि चुपु रही बोली आपु न ईठि।
राख्यौ गहि गाढ़ैं गरैं मनौ गलगली डीठि ॥४७८॥

अन्वय—ईठि ललन चलनु सुनि चुपु रही आपु न बोली, मानौं गलगली डीठि गरैं गाढ़ैं गहि राख्यौ।

ललन = प्रीतम। ईठि = प्यारी सखी। गाढ़ैं गहि = जोर से पकड़कर। गरैं = गला। गलगली = आँसुओं से डबडबाई हुई। डीठि = आँख।

हे सखी, प्रीतम का (परदेश) चलना सुनकर वह चुप हो रही, स्वयं कुछ नहीं बोली, मनों डबडबाई हुई आँखों ने उसके गले को जोर से पकड़ रक्खा हो—(अश्रुगद्गद् कंठ रुद्ध हो गया हो)।

बिलखी डभकौंहैं चखनु तिय लखि गवनु बराइ।
पिय गहबरि आएँ गरैं राखी गरैं लगाइ ॥४७९॥

अन्वय—बिलखी डभकौंहैं चखनु तिय लखि गवनु बराइ, पिय गहबरि आएँ गरैं लगाइ राखी।

बिलखी = व्याकुल। डभकौंहैं = डबडबाई हुई। गवनु बराइ = जाना रोककर। गहबरि आएँ गरैं = भर आये हुए गले से, गद्गद् कंठ से।

व्याकुल और डबडबाई हुई आँखों से, नायिका को देख (परदेश) जाना रोककर प्रीतम ने गद्गद् कंठ से उसे गले लगा रक्खा।

चलत चलत लौं ले चलैं सब सुख संग लगाइ।
ग्रीषम-बासर सिसिर-निसि प्यौ मो पास बसाइ ॥३८०॥

अन्वय—चलत चलत लौं सब सुख संग लगाइ लै चलैं, ग्रीषम-बासर-सिसिर निसि प्यौ मो पास बसाइ।

ग्रीषम-बासर = गरमी के दिन। सिसिर-निसि = जाड़े की रात।

(परदेश) चलते-ही-चलते सब सुखों को संग लगाकर ले

चले—जाते-ही-जाते सब सुखों को साथ ले गये। हाँ, ग्रीष्म के (तपते हुए बड़े-बड़े) दिन और शिशिर की (ठिठुरानेवाली लम्बी-लम्बी) रातें (इन्हीं दो को) प्रीतम ने मेरे पास बसा दीं—रख छोड़ीं। (रात-दिन इतने बड़े-बड़े और भयंकर मालूम होते हैं कि काटे नहीं कटते—जाड़े के रात और गरमी के दिन बहुत बड़े होते भी हैं)

अजौं न आए सहज रँग बिरह-दूबरैं गात।
अबहीं कहा चलाइतु ललन चलनु की बात ॥४८१॥

अन्वय—बिरह दूबरैं गात अजौं सहज रँग न आए, ललन चलनु की बात अबहीं कहा चलाइयतु।

अजौं=अभी तक। सहज=स्वाभाविक। रंग=कान्ति, छटा।

विरह से दुबली हुई (नायिका की) देह में अबतक स्वाभाविक कान्ति भी नहीं आई है, (फिर) हे ललन, (परदेश) चलने की बात अभी क्यों चला रहे हैं?

ललन चलनु सुनि पलनु में अँसुवा झलके आइ।
भई लखाइ न सखिनु हूँ झूठैं हीं जमुहाइ ॥४८२॥

अन्वय—ललन चलनु सुनि पलनु में अँसुवा आइ झलके, झूठैं हीं जमुहाइ सखिनु हूँ लखाइ न भई।

पलनु में=पलकों (आँखों) में। अँसुवा आइ झलके=चमकीले आँसू छलक आये। लखाई न भई=मालूम नहीं हुई।

प्रीतम के परदेश चलने की बात सुनकर पलकों में आँसू आ झलके—आँखें डबडबा आईं। किन्तु नायिका के झूठी जम्हाई लेने के कारण (पास की) सखियों को भी (यथार्थ बात) नहीं मालूम हुई—(सखियों ने समझा कि ये आँसू अँगड़ाई लेने के कारण निकल आये हैं।)

चाह भरीं अति रस-भरीं बिरह-भरीं सब बात।
कोरि सँदेसे दुहुनु के चले पौरि लौं जात ॥४८३॥

अन्वय—सब बात चाह-भरीं अति रस-भरीं बिरह-भरीं, पौरि लौं जात दुहुनु के कोरि सँदेसे चले।

चाह = प्रेम। पौरि = दरवाजा, ड्योढ़ी। लौं = तक।

(नायक के परदेश चलने के समय नायक और नायिका—दोनों—की) सभी बातें प्रेमपूर्ण, अत्यन्त रसीली और विरह से भरी थीं। यों दरवाजे (ड्योढ़ी) तक जाते-जाते दोनों के (परस्पर) करोड़ों सन्देश आये-गये। (प्रेम, रस और विरह से भरी बातें होती चली गईं।)

मिलिचलि चलिमिलि मिलि चलत आँगन अथयौ भानु।
भयो महूरत भोर कौ पौरिहिं प्रथम मिलानु ॥४८४॥

अन्वय—मिलिमिलि चलिचलि मिलि चलत आँगन भानु अथयौ, भोर कौ महूरत पौरिहि प्रथम मिलानु भयौ।

अथयौ = डूब गया। भानु = सूर्य। महूरत = शुभ समय, यात्रा का समय। भोर = तड़के, प्रातः। पौरिहि = दरवाजा। मिलानु = मुकाम, डेरा।

मिलमिलकर, चलचलकर, पुनः मिलकर फिर चलते हैं (यों इस मिलने-चलने में) आँगन ही में सूर्य डूब गया। प्रातःकाल ही का यात्रा-समय होने पर भी दरवाजे में ही पहला मुकाम हुआ—यद्यपि भोर ही यात्रा करके चले, तोभी इस मिलने-मिलाने से संध्या होने के कारण दरवाजे पर ही पहला डेरा जमाना पड़ा।

दुसह बिरह दारुन दसा रह्यौ न और उपाइ।
जात-जात ज्यौ राखियतु प्यौ कौ नाउँ सुनाइ ॥

अन्वय—बिरह दुसह दसा दारुन और उपाइ रह्यौ न, प्यारौ नाउँ सुनाइ जात जात ज्यौ राखियतु।

दुसह = असह्य। दारुन = भयंकर। और = अन्य। जात-जात = जाते जाते, गमनोन्मुख। ज्यौ = प्राण। प्रिय=प्रीतम।

विरह असह्य है, अवस्था भयंकर है। (इस दशा से छुटकारा दिलाने का) कोई अन्य उपाय नहीं रह गया। प्रीतम का नाम सुना-सुनाकर ही उसके गमनोन्मुख प्राणों की रक्षा की जाती है।

प्रजर्‌यौ आगि बियोग की बह्यौ बिलोचन नीर।
आठौं जाम हियौ रहै उड़्यौ उसास-समीर।४८६॥

अन्वय—बियोग की आगि प्रजर्‌यौ बिलोचन नीर बह्यौ, हियौ आठौ जाम उसास-समीर उड़्यौ रहै।

प्रजर्‌यौ = पजरना, प्रज्वलित होना। बिलोचन = आँखों से। जाम = पहर। उसास = लम्बो साँस, शोकोच्छ्वास। समीर = पवन।

विरह की आग प्रज्वलित हो गई है, आँखों से आँसू बह रहे हैं—आँसुओं की झड़ी लग गई है—और हृदय में आठो पहर उच्छ्वास का पवन (बवंडर) उठ रहा है। (यों वह अबला एक ही साथ जल भी रही है, डूब भी रही है और बवंडर में उड़ भी रही है!)

नोट—विधवाओं की दशा पर एक ने लिखा है—"आह की अगिन में तड़पती है जलती है, लांछन की लहरी डुबोती प्राण लेती है, विरह-बवंडर में ब्याकुल बनी है बाला, आह री नियति! यह कैसो तेरी चित्रशाला!"

पलनु प्रगटि बरुनीनु बढ़ि छिनु कपोल ठहरात।
अंसुवा परि छतिया छिनकु छनछनाइ छिपि जात॥४८७॥

अन्वय—पलनु प्रगटि बरुनीनु बढ़ि छिनु कपोल ठहरात, अँसुवा छतिया परि छिनकु छनछनाइ छिपि जात।

पलनु = पलकें, आँखों में। बरुनीनु = पपनी या पलक के बालों में। कपोल = गाल। छिनकु = छिन + एकु = एक क्षण। छिपि जात = लुप्त हो जाते हैं।

पलकों में प्रकट होते हैं—पलक ही उनकी जन्मभूमि है, बरुनियों में बढ़ते हैं—बरुनी ही उनकी क्रीड़ाभूमि है, (और वहाँ से बढ़कर) क्षण-भर के लिये (चिकने) गालों पर ठहरते हैं—यों गाल उनकी प्रवास-भूमि या कर्म-भूमि हैं। फिर आँसू (उस नायिका की विरह-विदग्ध) छाती पर पड़ के एक ही क्षण में छनछनाकर लुप्त हो जाते हैं—अतएव छाती ही उनकी श्मशानभूमि हुई!

नोट—बिहारी ने इस एक ही दोहे में आँसुओं के बहाने मनुष्यों के जीवन की एक तस्वीर-सी खींच दी है। जन्म, बचपन, प्रवास या कर्म-साधना और मृत्यु—ये चार ही मनुष्य-जीवन के खेल हैं। उर्दू-कवि अकबर ने भी एक ही शेर में वर्त्तमान शिक्षितों के जीवन की बड़ी ही अच्छी तस्वीर खींची है—"हम क्या कहें अकबर की क्या कारे नुमायाँ कर गये। बी० ए० हुए, डिपटी बने पेन्शन मिली फिर मर गये!"

करि राख्यौ निरधारु यह मैं लखि नारी-ज्ञानु।
वहै बैदु ओषधि वहै वहई जु रोग निदानु ॥४८८॥

अन्वय—मैं नारी-ज्ञानु लखि यह निरधारु करि राख्यौ। वहै बैदु वहै ओषधि जु वहई रोग निदानु।

निरधारु = निश्चय। नारी ज्ञानु = (१) नाड़ी का ज्ञान (२) स्त्री की चेष्टा। बैदु = वैद्य। निदान = उपचार, व्यवस्था।

मैंने नाड़ी का ज्ञान देखकर (इस नारी की चेष्टा देखकर)

यह निश्चय कर रक्खा है कि वही वैद्य है, वही औषध है, और जो रोग है वही निदान भी है। (प्रेम की बीमारी है, प्रेम ही उपचार है, प्रेम ही वै बनेगा, और दवा भी प्रेम ही की होगी।)

नोट—इस दोहे में भी बिहारी ने वैद्यक के सभी उपकरणों का अच्छा विवरण दिया है। रोग, निदान, औषध और वैद्य—बस ये चार ही वैद्यक के उपकरण—साधन) हैं। प्रेम की बीमारी पर कबीरदास कहते हैं—"कबिरा वैद बुलाइया पकड़ के देखी बाँह, वैद न वेदन जानई कसक कलेजे माँह। जाहु वैद घर आपने तेरा किया न होय, जिन यह वेदन निर्मई भला करेगा सोय"। कैसे अनूठे दोहे हैं!

मरिबे कौ साहसु ककै बढ़ै बिरह की पीर।
दौरति ह्वै समुहैं ससी सरसिज सुरभि-समीर ॥४८९।

अन्य—बिरह की पीर बढ़ै मरिबै को साहस ककै ससी सरसिज सुरभि समीर समुहैं ह्वै दौरति।

मरिबे कौ=मरने का। ककै=करके। समुहैं=सम्मुख। ससी=शशि=चन्द्रमा। सरसिज=कमल। सुरभि-समीर=सुगंधित पवन।

विरह की पीड़ा बढ़ने पर मरने का साहस करके (वह उन्मादिनी बाला) चन्द्रमा, कमल और पवन के सम्मुख होकर दौड़ती है। (यद्यपि चन्द्रमा, कमल और पवन शीतलता देनेवाले हैं, तथापि विरह में उसे अत्यन्त तापपूर्ण जान पड़ते हैं, जिससे वह उनके सम्मुख दौड़ती है कि वे मुझे जला डालें।)

ध्यान आनि ढिग प्रान-पति रहति मुदित दिन-राति।
पलकु कँपति पुलकति पलकु पलकु पसीजति जाति ॥४९०॥

अन्वय—प्रानपति ध्यान ढिग आनि दिन राति मुदित रहति पलकु कँपति पलकु पुलकति पलकु पसीजति जाति।

आनि = लाकर। ढिग = निकट। मुदित=प्रसन्न। पलकु=पल+एकु= एक पल या क्षण में।

(परदेश गये हुए) प्राणपति को ध्यान द्वारा निकट लाकर-ध्यान में उन्हें अपने निकट बैठा समझकर (वह बाला) दिन-रात प्रसन्न रहती है। क्षण में काँपती है, क्षण में पुलकित होती है, और क्षण में पसीने से तर हो जाती है।

सकै सताइ न बिरहु-तमु निसि-दिन सरस सनेह।
रहै बहै लागी दृगनु दीप-सिखा-सी देह ॥४९१॥

अन्वय—बिरहु-तमु न सताइ सकै निसि दिन सनेह सरस, दीप-सिखा-सी देह बहै दृगनु लागी रहै।

बिरह-तम = बिरह-रूपी अंधकार। सरस सनेह = (१) प्रेम से शराबोर (२) तेल से भरा हुआ। दीप-सखा = दीये की लौ।

बिरह-रूपी अंधकार (नायक को) नहीं सता सकता, क्योंकि रात-दिन स्नेह से सरस (तेल से परिपूर्ण) दीपक की लौ के समान (उस नायिका की) देह उसकी आँखों से लगी रहती है—उसकी आँखों में बसी रहती है। (जहाँ दीपक की लौ, वहाँ अंधकार कहाँ!)

नोट—जो लोग हिन्दी में 'पुरुष विरह-वर्णन' का अभाव देखकर दुःखित होते है उन्हें यह दोहा याद रखना चाहिये।

बिरह-जरी लखि जीगननु कह्यौ न डहि कै बार।
अरी आउ भजि भीतरी बरसत आजु अँगार।४९२।

अन्वय—बिरह-जरी जीगननु लखि डहि कै बार न कह्यौ अरी भीतरी भजि आउ, आजु अँगार बरसत।

विरहजरी=विरह ज्वाल से जली हुई। जीगननु=जुगनुओं, भगजोगनियों। भजि=भागकर। अँगार=आग, चिनगारी।

विरह से जली हुई उस (नायिका) ने भगजोगनियों को देखकर और जलकर सखियों से न जाने कितनी बार कहा (अर्थात् बहुत बार कहा) कि अरी! भीतर भाग आ, आज (आकाश से) चिनगारी की वर्षा हो रही है (जल जावेगी!)।

नोट—विरह में व्याकुल बाला को वर्षा-ऋतु में दीख पड़नेवाली भगजोगनी चिनगारी के समान दाहक मालूम पड़ती है।

अरैं परै न करै हियौ खरैं जरैं पर जार।
लावति घोरि गुलाब सौं मलै मलै घनसार ॥४९३॥

अन्वय—अरैं न परैं करै हियौ खरैं जरैं पर जार, मलै घनसार मलैं गुलाब-सौं घोरि लावति।

अरैं न परै=अलग नहीं करती। खरैं=अत्यन्त। मलैं=मलयज चंदन, श्रीखंड। घनसार=कर्पूर।

अरी सखी! हठ में मत पड़, अत्यन्त जले हुए हृदय को क्यों जला रही है? श्रीखंड और कर्पूर को मिलाकर (और उन्हें) गुलाब-जल में घोलकर (हृदय पर) क्यों लगा रही है? (इससे तो ज्वाला और भी बढ़ती है!)

नोट—विरहिणी नायिका को श्रीखंड, कर्पूर, गुलाब-जल आदि परम शीतल पदार्थ भी अत्यन्त तापदायक प्रतीत होते हैं।

कहे जु बचन बियोगिनी बिरह-विकल बिललाइ।
किए न को अँसुवा सहित सुआ ति बोल सुनाइ ॥४९४॥

अन्वय—बिरह-विकल बियोगिनी जु बिललाइ बचन कहे, सुआ ति बोल सुनाइ को अँसुवा सहित न किए।

जु = जो। बिललाइ = अंटसंट बककर। सुआ = सुग्गा। ति = वह।

विरह से व्याकुल होकर उस वियोगिनी ने जो बिललाकर वचन कहे, सुग्गे ने उस वियोगिनी के ही वचन सुनाकर किस की आँखों को आँसू-सहित न कर दिया—किसको रुला न दिया?

नोट—नायिका के पास एक सुग्गा (तोता) था। उसने नायिका के प्रलापों को सुनते-सुनते याद कर लिया था। वह प्रायः उन प्रलापों को उसी मर्मस्पर्शी स्वर में कहा था, जिसे सुनकर लोग करुणावश रो पड़ते थे।

सीरैं जतननु सिसिर रितु सहि बिरहिनि तन-तापु।
बसिबे कौं ग्रीषम दिननु पर्‍यौ परोसिनि पापु ॥४६५॥

अन्वय—सिसिर रितु सीरैं जतननु बिरहिनि तन तापु सहि ग्रीषम दिननु बसिबे कौं परोसिनि पापु पर्‍यौ।

सीरैं जतननु = शीतल उपचारों (खस की टट्टी, बरफ़ आदि) से। सिसिर-ऋतु = पूस-माघ। तन-तापु = शरीर की ज्वाला। बसिबे कौं = रहने को। पापु परयौ = पाप पड़ गया = अत्यन्त कठिन हो गया, महादुःखदायक हो गया।

(पड़ोसियों ने अत्यन्त शीतल) शिशिर-ऋतु में शीतल उपचारों से विरहिणी नायिका के शरीर की ज्वाला को (किसी तरह) सहन किया। किन्तु (जलते हुए) ग्रीष्म के दिनों में (उस विरहिणी के पड़ोस में) रहना पड़ोसियों के लिये अत्यन्त कठिन हो गया।

पिय प्राननु की पाहरू करति जतन अति आपु।
जाकी दुसह दसा पर्‍यौ सौतिनि हूँ संतापु ॥४६६॥

अन्वय—पिय प्रानन की पाहरू आपु अति जतन करति। जाकी दुसह दसा सौतिनि हूँ संतापु पर्‍यौ।

पाहरू = पहरुआ, रक्षक। दुसह = असह्य। संताप = पीड़ा।

(नायिका को) प्रीतम के प्राणों की रक्षिका समझकर उसकी रक्षा के लिये (सौतें) स्वयं भी अत्यन्त यत्न करती हैं (क्योंकि उसके विना नायक नहीं जी सकता)। (आह ! उसके दुःख का क्या पूछना !) जिसकी असहनीय अवस्था देखकर (स्वभावतः जलनेवाली) सौतों को भी दुःख होता है।

आड़े दै आले बसन जाड़े हूँ की राति।
साहसु ककै सनेह-बस सखी सबै ढिग जाति ॥४६७॥

अन्वय—जाड़े की राति हूँ आले बसन आड़े दै साहस ककै सनेह-बस सबै सखी ढिग जाति।

आड़े दै = ओट देकर, ओट करके। आले = भींगे हुए, ओढ़े। साहस = हिम्मत। सखी सबै = सभी सखियाँ। ढिग = निकट।

जाड़े की (ठंढी) रात में भी, गीले कपड़े की ओटकर, बड़े साहस से, प्रेमवश सभी सखियाँ (उस विरहिणी नायिका के) निकट जाती हैं ! (क्योंकि उसके शरीर में ऐसी प्रचण्ड विरह-ज्वाला है कि आँच सही नहीं जाती !)

सुनत पथिक मुँह माह-निसि लुवैं चलति उहिं गाम।
बिनु बूझैं बिनुही कहैं जियति बिचारी बाम ॥४६८॥

अन्वय—पथिक मुँह सुनत माह-निसि उहिं गाम लुवैं चलति, बिनु बूझैं बिनुही कहै बिचारी बाम जियति।

पथिक = राही, यात्री, मुसाफिर। लुवैं = लू। उहिं गाम = उस ग्राम (गाँव) में। विचारी = समझा। जियति = जीती है।

बटोही के मुँह से यह सुनकर कि माघ की रात में भी उस गाँव में लू चलती है, विना पूछे और विना कहे-सुने ही (नायक

ने) समझ लिया कि नायिका (अभी) जीती है (और निस्संदेह उसीकी विरह-ज्वाला से मेरे गाँव में ऐसी हालत है ।)

इत आवति चलि जाति उत चली छ-सातक हाथ ।
चढ़ी हिंडोर-सैं रहै लगी उसासनु साथ ॥४९९॥

अन्वय—उसासनु साथ लगी हिंडोरैं-चढ़ी-सैं रहै, चली छ-सातक हाथ इत आवति उत चलि जाति ।

इत = इधर । उत = उधर । चली = चलायमान या विचलित होकर या झोंके में पड़कर = खिंचकर । उसासनु=दुःख के कारण निकली हुई आह-भरी लम्बी साँस, जिसे दीर्घ निःश्वास, शोकोच्छ्वास, ऊर्ध्वश्वास आदि भी कहते हैं ।

(विरह-वश अत्यन्त दुर्बल होने के कारण) लम्बी साँसों के साथ लगी हुई (नायिका मानों) झूले पर चढ़ी-सी रहती है । (झूला झूलने के समान लम्बी साँसों के झोंक से झूलती रहती है) फलतः वह (ऊँची साँसों के साथ) विचलित न होकर (कभी) छः-सात हाथ इधर आ जाती है (और कभी छः-सात हाथ) उधर चली जाती है (उसका विरह-जर्जर कृश शरीर उसी की लम्बी साँस के प्रबल झोंके से दोलायमान हो रहा है ।)

(सो०)—बिरह सुकाई देह, नेहु कियौ अति डहडहौ ।
जैसैं बरसैं मेह, जरै जवासौ जौ जमै ॥५००॥

अन्य—बिरह देह सुकाई नेह अति डहडहौ कियौ, जैसैं मेह बरसैं जवासौ जरै जौ जमै ।

जवासौ = एक प्रकार का मेड़, जो वर्षा होने से सूख जाता है । जैसे—अर्क जवास पात बिनु भयऊ—तुलसीदास । डहडहौ = हरा-भरा । मेह = मेघ । जौ = जीव, जड़, जपा, गुड़हर ।

विरह ने देह को सुखा दिया और प्रेम को अत्यन्त हरा-भरा कर दिया, जैसे मेह के बरसने से जवासा जल जाता है, और गुड़हर पुष्ट होता है।

—***—

षष्ठ शतक

(सो०)–आठौ जाम अछेह, दृग जु बरत बरसत रहत।
स्यौं बिजुरी ज्यौं मेह, आनि यहाँ बिरहा धर्‍यौ ॥५०१॥

अन्वय—आठौ जाम अछेह दृग जु बरत बरसत रहत, ज्यौं बिजुरी स्यौं मेह बिरहा यहाँ आनि धर्‍यौ।

जाम = पहर। अछेह = निरंतर, सदा। जु = जो। बरत = जलती है। स्यौं = सहित। ज्यौं = जैसे, मानों। मेह = मेघ। आनि धर्‍यौ = ला रक्खा।

आठों पहर सदा आँखें जो जलती और बरसती रहती हैं—व्याकुल बनी रहती और आँसुओं की झड़ी लगाये रहती हैं, (सो ऐसा मालूम होता है कि) मानों बिजली-सहित मेघ को विरह ने यहाँ (आँखों में) ला रक्खा है।

नोट—एक उर्दू-कवि ने भी मेघ और बिजली को इकट्ठा कर रक्खा है—"मुसकुराते जाते हैं कुछ मुँह से फरमाने के बाद, बिजलियाँ चमका रहे हैं मेह बरसाने के बाद।" किन्तु सोरठे की सुष्ठुता और सरसता कुछ और ही है।

बिरह-बिपति-दिनु परत हीं तजे सुखनु सब अंग।
रहि अब लौंऽब दुखौ भए चलाचली जिय संग ॥५०२॥

अन्वय—बिरह-बिपति-दिनु परत हीं सुखनु सब अंग तजे, अब लौं रहि ऽब दुखौ संग जिय चलाचली भए।

रहि अबलौंऽब = रहि अब लौं अब = अब तक रहकर अब। दुखौ = दुःख भी। चलाचली भए = चलने को तैयार हुए।

विरह-रूपी विपत्ति के दिन आते ही सब सुखों ने मेरे शरीर को छोड़ दिया था। (बचा था केवल दुःख, सो) अब तक रहकर, अब दुःख भी जीवन के साथ-ही-साथ चलने की तैयारी करने लगा।

नोट—एक उर्दू-कवि ने विपत्ति के दिन के विषय में कहा है—"कौन होता है बुरे वक्त की हालत का शरीक। मरते दम आँख को देखा है कि फिर जाती है॥"

नयैं बिरह बढ़ती बिथा खरी बिकल जिय बाल।
बिलखी देखि परोसिन्यौ हरखि हँसी तिहिं-काल॥५०३॥

अन्वय—नयैं बिरह बढ़ती बिथा बाल जिय खरी बिकल, परोसिन्यौ बिलखी देखि तिहि-काल हरखि हँसी।

बिथा = व्यथा, पीड़ा। बिलखी = व्याकुल हुई।

नये वियोग की बढ़ती हुई व्यथा से उस बाला का हृदय अत्यन्त विकल था। किन्तु इतने में पड़ोसिन को भी व्याकुल देख (यह समझकर कि इसे भी मेरे पति से गुप्त प्रेम था, अतएव अब यह भी दुःख भोगेगी, ईर्षा से वह) तत्काल ही हर्षित होकर हँसने लगी।

छतौ नेहु कागद-हियैं भई लखाइ न टाँकु।
बिरह तचैं उघर्यौ सु अब सेहुँड़ कैसो आँकु॥

अन्वय—कागद हियैं नेहु छतौ टाँकु लखाइ न भई, सु अब सेहुँड़ क आँकु-सो बिरह तचैं उघर्यौ।

छतौ = अछतौ = था। लखाइ न भई = दीख नहीं पड़ी। टाँकु =

लिखावट। तचैं = तपाये जाने पर। सेंहुड़ कै-सो आँकु = सेंहुड़ के दूध से लिखे गये अक्षर के समान, जो कि आग पर तपाये विना दीख नहीं पड़ते।

कागज-रूपी हृदय पर प्रेम (लिखा हुआ) था, किन्तु उसकी लिखावट दिखाई नहीं पड़ती थी, सो अब सेंहुड़ के दूध से लिखे हुए अक्षर के समान वह विरह (रूपी आग) से तपाये जाने पर (स्पष्ट) प्रकट हो गया।

करके मीड़े कुसुम लौं गई बिरह कुम्हिलाइ।
सदा समीपिनि सखिनु हूँ नीठि पिछानी जाइ ॥५०५॥

अन्वय—करके मीड़े कुसुम लौं बिरह कुम्हिलाइ गई, सदा समीपिनि सखिनु हूँ नीठि जाइ पिछानी।

मीड़े = मसले या मीजे हुए। कुसुम = कोमल फूल। समीपिनि = निकट रहनेवाली। नीठि = मुश्किल से। पिछानी = पहचानी।

हाथ से मसले हुए फूल के समान विरह से कुम्हला गई है। सदा निकट रहनेवाली सखियों से भी मुश्किल से पहचानी जाती है। (अत्यंत दुर्बलता के कारण चिरसंगिनी सखियाँ भी नहीं पहचानतीं!)

लाल तुम्हारे बिरह की अगिनि अनूप अपार।
सरसै बरसै नीर हूँ झर हूँ मिटै न झार ॥५०६॥

अन्वय—लाल तुम्हारे बिरह की अगिनि अनूप अपार। नीर बरसै हूँ सरसै झरहूँ झार न मिटै।

अनूप = जिसकी उपमा (बराबरी) न हो, अनुपम। अपार = जिसका पार (अन्त) न हो। सरसै = सरसता है, प्रज्वलित होता है। झर = झड़ी लगना। झार = ज्वाला।

हे लाल! तुम्हारे विरह की आग अनुपम और अपरम्पार है।

पानी बरसने पर (वर्षा होने पर) भी प्रज्वलित होती है, और झड़ी लगने पर (आँसुओं के गिरने पर) भी उसकी ज्वाला नहीं मिटती ।

नोट— विरहिणी बेचारी को वर्षा से अधिक कष्ट होता है ।

याकैं उर औरै कछू लगी बिरह की लाइ ।
पजरै नीर गुलाब कैं पिय की बात बुझाइ ॥५०७॥

अन्वय—याकैं उर कछू औरै बिरह की लाइ लगी, गुलाब कैं नीर पजरै, पिय की बात बुझाइ ।

औरै कछू = कुछ विचित्र ही । लाइ = आग । पजरै = प्रज्वलित होना । बात = (१) वचन (२) हवा, अथवा मुँह की सुगंधित साँस ।

इसके हृदय में कुछ विचित्र विरह की आग लग गई है, जो गुलाब के पानी से तो प्रज्वलित हो जाती है, और प्रीतम की 'बात' से बुझ जाती है ।

नोट—पानी से जलना और हवा से बुझ जाना निस्संदेह विचित्रता है ।

मरी डरी कि टरी बिथा कहा खरी चलि चाहि ।
रही कराहि-कराहि अति अब मुँहु आहि न आहि ॥५०८॥

अन्वय—कहा खरी चलि चाहि मरी डरी कि बिथा टरी, अति कराहि-कराहि रही अब मुँहु आहि न आहि ।

खरी = खड़ी । चाहि = देखो । आहि = आह । न आहि = नहीं है ।

(हे सखी !) क्या खड़ी हो, चलकर देखो तो कि वह मर गई है कि डर गई है कि उसकी पीड़ा टल गई (जो वह चुप हो रही है) । अब तक तो वह अत्यन्त कराह रही थी, किन्तु अब मुख में आह भी नहीं है—आह भी नहीं सुन पड़ती है ।

कहा भयौ जो बीछुरे मो मनु तो मनु साथ।
उड़ी जाउ कितहूँ गुड़ी तऊ उड़ाइक हाथ ॥५०९॥

अन्वय—जो बीछुरे कहा भयौ मो मनु तो मनु साथ। गुड़ी कितहूँ उड़ी जाउ तऊ उड़ाइक हाथ।

बिछुरे = बिछुड़ गये। मो = मेरा। तो = तेरा। कितहूँ = कहीं भी। गुड़ी = गुड्डी, पतंग। तऊ = तो भी। उड़ाइक = उड़नेवाला, खेलाड़ी।

यदि बिछुड़ ही गये, तो क्या हुआ? मेरा मन तो तुम्हारे मन के साथ है। गुड्डी कहीं भी उड़कर जाती है, किन्तु तो भी वह उड़ानेवाले (खेलाड़ी) ही के हाथ में रहती है—जब उड़ानेवाला चाहता है, उसकी डोर खींचकर निकट ले आता है। (उसी प्रकार तुम्हें भी मैं, जब चाहूँगी, अपनी प्रेम-डोर से अपनी ओर खींच लूँगी।)

नोट—"कर छटकाये जात हो, निबल जानि कै मोहि।
हिरदै से जब जाइगे मरद बखानौं तोहि॥"—सूरदास

जब जब वै सुधि कीजियै तब सबही सुधि जाहिं।
आँखिनु आँखि लगी रहै आँखैं लागति नाहिं ॥५१०॥

अन्वय—जब जब वै सुधि कीजियै तब सबही सुधि जाहिं, आँखि आँखिनु लगी रहै, आँखैं नाहिं लागति।

आँखैं लागति नाहिं = आँखें नहीं लगतीं = नींद नहीं आती।

जब-जब उन बातों की याद आती है, तब तब सभी सुधि जाती रहती है—बिसर जाती है। उनकी आँखें मेरी आँखों से लगी रहती हैं, इसलिये मेरी आँखें भी नहीं लगतीं—मुझे नींद भी नहीं आती।

नोट—"तनक काँकरी के परै होत महा बेचैन।
वे बपुरे कैसे जियें जिन नैनन में नैन॥"

कौन सुनै कासौं कहौं सुरति बिसारी नाह।
बदाबदी ज्यौ लेत हैं ए बदरा बदराह॥५११॥

अन्वय—कौन सुनै कासौं कहौं नाह सुरति बिसारी। ए बदराह बदरा बदाबदी ज्यौ लेत हैं।

सुरति = स्मृति, याद, सुधि। बदाबदी = शर्त बाँधकर। ज्यौ लेत हैं = जान मारते हैं। बदरा = बादल। बदराह = कुमार्गी, बदमाश।

कौन सुनता है, किससे कहूँ। प्रीतम ने सुधि भुला दी। ये बदमाश बादल बाजी लगाकर जान ले रहे हैं—शर्त लगाकर प्राण लेने पर तुले हैं (इनसे रक्षा कौन करे?)

औरै भाँति भए ऽब ए चौसरु चंदनु चंदु।
पति बिनु अति पारतु बिपति मारतु मारुतु मंदु॥५१२॥

अन्वय—चौसरु चंदनु चंदु ए ऽब औरै भाँति भए। पति बिनु अति बिपति पारतु मन्दु मारुतु मारतु।

भएऽब = भये अब, अब हुए। चौसरु=चार लड़ियों की मोती-माला। चंदनु = श्रीखण्ड। बिपति पारतु = दुःख देते हैं। मारुतु = हवा।

मोती की चौलरी, चंदन और चन्द्रमा, ये सब अब और ही भाँति के हो गये—कुछ विचित्र-से हो गये। प्रीतम के विना ये सब अत्यन्त दुःख देते हैं और, मंद-मंद हवा तो मारे ही डालती है।

नैंकु न झुरसी बिरह-झर नेह-लता कुम्हिलाति।
नित-नित होति हरी-हरी खरी झालरति जाति॥५१३॥

अन्वय—नेह-लता बिरह झर झुरसी नैंकु न कुम्हिलाति। नित-नित हरी-हरी होति खरी झालरति जाति।

नैंकु = जरा, तनिक। झुरसी = झुलसकर। झर = ज्वाला, लपट। खरी = अधिक, खूब। झालरति = फैलती या सघन पल्लवों से भरी जाती है।

प्रेम रूपी लतिका विरह की ज्वाला से झुलसकर तनिक भी नहीं कुम्हलाती, वरन् नित्य-प्रति हरी-भरी होती और खूब फैलती-फूलती जाती है।

यह बिनसतु नगु राखि कै जगत बड़ौ जसु लेहु।
जरी बिषम जुर ज्याइयैं आइ सुदरसनु देहु ॥५१४॥

अन्वय—यह बिनसतु नगु राखि कै जगत बड़ौ जसु लेहु, बिषम जुर जरी आइ सुदरसनु देहु ज्याइयैं।

नगु = रत्न। बिषम जुर = (१) कठिन ज्वाला (२) विषम ज्वर, तपेदिक की बीमारी। सुदरसनु = (१) सुन्दर दर्शन (२) सुदर्शन का अर्क।

इस नष्ट होते हुए रत्न की रक्षा कर (अनमोल नायिका को मरने से बचाकर) संसार में खूब यश लूटो—यह कठिन विरह-ज्वाला (विषम-ज्वर) में जल रही है, अतः आकर सुन्दर दर्शन (सुदर्शन-रस) देकर इसे जिला दीजिये।

नोट—वैद्यक के अनुसार सुदर्शन-रस से विषम-ज्वर छूटता है।

नित संसौ हंसौ बचतु मनौ सु इहिं अनुमानु।
बिरह-अगिनि-लपटनु सकतु झपटि न मीचु-सचानु ॥११५

अन्वय—हंसौ बचतु नित संसौ सु इहि अनुमान मनौ बिरह-अगिनि-लपटनु मीचु-सचान न झपटि सकतु।

संसौ = संशय = संदेह । हंसौ = (१) प्राण को (२) हंस को । मीचु = मृत्यु । सचान = श्येन = 'बाज' नामक शिकारी पक्षी ।

उसके प्राण (रूपी हंस) को बचते देख नित्य संदेह होता है (कि वह कैसे बचा ?) यह अनुमान होता है कि मानों विरह-रूपी आग की लपटों के कारण मृत्यु-रूपी बाज उसपर झपट नहीं सकता ।

करी बिरह ऐसी तऊ गैल न छाड़तु नीचु ।
दीनैं हूँ चसमा लखनु चाहै लहै न मीचु ॥५१६॥

अन्वय—बिरह ऐसी करी तऊ नीचु मीचु गैल न छाड़तु, चखनु चसमा दीनैंहूँ चाहै न लहै ।

गैल छाड़तु = (गैल = राह) पीछा नहीं छोड़ती । दीनैं हूँ चसमा = ऐनक देने (लगाने) पर भी । चखनु = आँखों पर । नीचु मीचु = निगोड़ी मौत ।

विरह ने उसे ऐसी (दुबली-पतली) बना दिया है, तो भी नीच मृत्यु उसका पीछा नहीं छोड़ती । (किन्तु क्या करे बेचारी ?) आँखों पर चश्मा चढ़ाकर भी (उसे ढूँढ़ निकालना) चाहती है, (पर तो भी) नहीं पाती ।

नोट—"नातवानी ने बचाई जान मेरी हिज्र में ।
कोने-कोने ढूँढती फिरती कज़ा थी मैं न था ॥"—ज़फ़र ।

मरनु भलौ बरु बिरह तैं यह निहचय करि जोइ ।
मरनु मिटै दुखु एक कौ बिरह दुहूँ दुखु होय ॥५१७॥

अन्वय—यह निहचय करि जोइ बिरह तैं बरु मरनु भलौ, मरनु एक को दुख मिटै, बिरह दुहू दुख होइ ।

मरनु = मृत्यु । बरु = बल्कि । जोइ = देखो ।

यह निश्चय करके देखो कि विरह से बल्कि मृत्यु ही अच्छी है, क्योंकि मृत्यु से तो (कम-से-कम) एक आदमी का दुःख छूट जाता है, किन्तु विरह में (प्रेमी-प्रेमिका) दोनों को दुःख होता है।

बिकसति नवमल्ली-कुसुम बिकसित परिमल पाइ।
परसि पजारति बिरहि-हिय बरसि रहे की बाइ ॥५१८॥

अन्वय—नवमल्ली बिकसित कुसुम पाइ परिमल निकसित। बरसि रहे की बाइ बिरहि-हिय परसि पजारति।

बिकसित=खिलते हुए। नवमल्ली=नई चमेली। कुसुम=कोमल फूल। परिमल = सुगंध। परसि = स्पर्श कर। पजारति = प्रज्वलित कर देती है। बरसि रहे को = बरसते समय की। बाइ = वायु = हवा।

जो नई चमेली के खिलते हुए फूल की सुगन्ध पाकर निकलती है, वह वर्षा होते समय की हवा, विरही के हृदय को स्पर्श कर प्रज्वलित कर देती है।

औंधाई सीसी सुलखि बिरह बरनि बिललात।
बिचहीं सूखि गुलाब गौ छींटौ छुई न गात ॥५१९॥

अन्वय—बिरह बरनि बिललात सुलखि सीसी औंधाई, गुलाब बिचहीं सूखि गौ, छींटौ गात न छुई।

औंधाई = उलट(उड़ल,दी। बरनि=जलती हुई। बिललात=रोती-कलपती है, व्याकुल हो बक-झक करती है। छींटौ = एक छींटा भी। गात = देह

विरह से जलती और बिललाती हुई देखकर (सखियों ने नायिका ने शरीर पर गुलाब जल की) शीशी उलट दी, (किन्तु विरह की धधकती आँच के कारण) गुलाब-जल बीच ही में सूख गया, (उसका) एक छींटा भी (विरहिणी के) शरीर को स्पर्श न कर सका।

हौं री बौरी बिरह-बस कै बौरौ सब गाँउ।
कहा जानि ए कहत हैं ससिहिं सीत-कर नाँउ ॥५२०॥

अन्वय—बिरह बस हौं ही बौरी कै सब गाँउ बौरौ, कहा जानि ए ससिहिं सीतकर नाँउ कहत हैं।

हौं ही = मैं ही। बौरी = पगली। ससिहिं=चन्द्रमा का। सीतकर = शीतल किरणोंवाला, शीतरश्मि, चन्द्रमा। नाँउ = नाम।

विरह के कारण मैं ही पगली हो गई हूँ, या सारा गाँव ही पागल हो गया है। न मालूम क्या जानकर ये लोग (ऐसे झुलसानेवाले) चन्द्रमा का नाम शीतकर कहते हैं।

सोवत जागत सपन-बस रस रिस चैन कुचैन।
सुरति स्यामघन की सुरति बिसरैंहूँ बिसरै न ॥५२१॥

अन्वय—सोवत जागत सपन-बस रस रिस चैन कुचैन, स्यामघन की सुरति सुरति बिसरैं हूँ न बिसरै।

रस = प्रेम। रिस = क्रोध। सुरति=सु + रति = सुन्दर प्रीति। सुरति = स्मृति, याद। बिसरैंहूँ=विस्मृत करने या भुलाने से भी।

सोते, जागते और सपने में, स्नेह, क्रोध, सुख और दुःख में—सभी अवस्थाओं और सभी भावों में—घनश्याम (श्रीकृष्ण) के प्रेम की स्मृति भुलाये नहीं भूलती।

(सो०)-कौड़ा आँसू-बूँद, कसि साँकर बरुनी सजल।
कीन्हे बदन निमूँद, दृग-मलिंग डारे रहत ॥५२२॥

अन्वय—आँसू-बूँद कौड़ा, सजल बरुनी साँकर कसि, बदन निमूँद कीन्हे, दृग-मलिंग डारे रहत।

कौड़ा = कौड़ियों की माला। साँकर = जंजीर। बरुनी = पपनी, पलक

के बाल। सजल = अश्रुयुक्त। बदन = मुख। निमूँद = खुला हुआ। मलिंग = फकीर। डारे रहत = पड़े रहते हैं।

आँसुओं की बूँदों को कौड़ियों की माला और सजल बरुनी को (अपनी कमर की) जंजीर बनाकर सदा मुख को खोले हुए (उस विरहिणी नायिका के) नेत्र-रूपी फकीर पड़े रहते हैं—डेरा डाले रहते हैं।

नोट—'मलिंग' फकीर हाथों में कौड़ी की माला रखते और कमर में लोहे की जंजीर पहनते हैं, तथा सदा मुख खोले कुछ-न-कुछ जपते रहते हैं। विरहिणी के आँसू टपकाते और टकटकी लगाये हुए नेत्रों से यहाँ रूपक बाँधा गया है। 'देव' कवि ने शायद इसी सोरठे के आधार पर यह कल्पना की है—"बरुनी बघम्बर में गूदरी पलक दोऊ कोये राते बसन भगोहैं भेख रखियाँ। बूड़ी जल ही में दिन जामिनी रहति भौंहैं धूम सिर छायो बिरहानल बिलखियाँ। आँसू ज्यौं फटिक माल लाल डोरे सेल्हो सजि भई हैं अकेली तजि चेली संग सखियाँ। दीजिये दरस 'देव' लीजिये सँजोगिनि कै जोगिन है बैठी हैं वियोगिन की अँखियाँ॥"

जिहिं निदाघ-दुपहर रहै भई माह की राति।
तिहिं उसीर की रावटी खरी आवटी जाति ॥५२३॥

अन्वय—जिहिं निदाघ-दुपहर माह की राति भई रहै, तिहिं उसीर की रावटी खरी आवटी जाति।

निदाघ = ग्रीष्म, जेठ-बैसाख। माह = माघ। उसीर = खस। रावटी = छोलदारी। खरी = अत्यन्त। आवटी जाति = औंटी जाती या संतप्त हो रही है।

जिस (रावटी) में ग्रीष्म की (जलती हुई) दुपहरी भी माघ की (अत्यन्त शीतल) रात-सी हुई रहती है, उस खस की

रावटी में भी (वह विरहिणी नायिका विरह-ज्वाला से) अत्यन्त संतप्त हो रही है।

तच्यौ आँच अब बिरह की रह्यौ प्रेमरस भीजि।
नैननु कै मग जल बहै हियौ पसीजि-पसीजि ॥५२४॥

अन्वय—प्रेमरस भीजि रह्यौ अब बिरह की आँच तच्यौ। हियौ पसीजि-पसीजि नैननु कै मग जल बहै।

तच्यौ = तपाया जाना, जलना। बिरह = वियोग। प्रेमरस=(१) प्रेम का रस (२) प्रेम का जल।

(नायिका का हृदय) प्रेम के रस में भीजा हुआ था, और अब विरह की आँच में जल रहा है। (इसी कारण) हृदय पसीज-पसीजकर नेत्र के रास्ते से जल बह रहा है।

नोट—यह बड़ा सुन्दर रूपक है। हृदय (प्रेम-रूपी) पानी से भरा बर्तन है, विरह आँच है, आँखें नली हैं, आँसू अर्क हैं। अर्क चुवाने के लिये एक बर्तन में दवाइयाँ और पानी रख देते हैं। नीचे से आँच लगाते हैं। बर्तन में लगी हुई नली द्वारा अर्क चूता है। विरहिणी मानों साक्षात रसायनशाला है!

स्याम सुरति करि राधिका तकति तरनिजा-तीरु।
अँसुवनु करति तरौंस कौ खिनकु खरौंहौं नीरु ॥५२५॥

अन्वय—राधिका स्याम सुरति करि तरनिजा-तीरु तकति, अँसुवनु खिनकु तरौंस कौ नीरु खरौंहौं करति।

सुरति = याद। तरनिजा = तरणि+जा = सूर्य की पुत्री, यमुना। तरौंस = तलछट। खिनकु = एक क्षण। खरौंहौं = खारा, नमकीन।

श्रीश्यामसुन्दर की याद कर (विरहिणी) राधिका (श्यामला) यमुना के तीर को देखती हैं और, आँसुओं (के प्रवाह) से एक

क्षण में ही उसके गर्भस्थ जल को भी नमकीन बना देती हैं—(उनके नमकीन आँसुओं के मिलने से यमुना का तलछट—निचली तह—का पानी भी नमकीन हो जाता है।)

गोपिनु कैं अँसुवनु भरी सदा असोस अपार।
डगर-डगर नै ह्वै रही बगर-बगर कैं बार ॥५२६॥

अन्वय—गोपिनु कैं अँसुवनु भरी सदा असोस अपार नै बगर-बगर कैं बार डगर-डगर ह्वै रही।

असोस = अशोष्य, जो कभी न सूखे। अपार = अगाध, अलंघनीय। डगर = गली। नै = नदी। बगर = घर। बार = द्वार, दरवाजा।

गोपियों के आँसुओं से भरी, कभी न सूखनेवाली और अपार नदियाँ (व्रजमंडल के) घर-घर के द्वार पर और गली-गली में (प्रवाहित) हो रही हैं—(कृष्ण के विरह में गोपियाँ इतना रोती हैं कि व्रज की गली-गली में आँसुओं की नदियाँ बहती हैं।)

नोट—सूरदासजी ने भी गोपियों के आँसुओं को यमुना बहाई है—"जब ते पनिघट आउँ सखीरी वा यमुना के तीर। भरि-भरि जमुना उमड़ि चलत है इन नैनन के नीर। इन नैनन के नीर सखीरी सेज भई घर नाव। चाहत हौं ताही पै चढ़ि कै हरिजू के ढिग जाव॥"

बन-बाटनु पिक-बटपरा तकि बिरहिन मतु मैन।
कुहौ-कुहौ कहि-कहि उठैं करि-करि राते नैन ॥५२७॥

अन्वय—बन-बाटनु पिक-बटपरा बिरहिन तकि मैन मतु नैन राते करि-करि कुहौ-कुहौ कहि-कहि उठैं।

बाटनु = रास्ते में। पिक = कोयल। बटपरा = बटमार, लुटेरा, डाकू। मैन-मतु = कामदेव की सलाह से। कुहौ-कुहौ = (१) कुहू-कुहू (२) मारो-मारो। राते = रक्त = लाल।

वन के रास्तों में कोयल-रूपी डाकू विरहिणियों को देख कामदेव की सम्मति से आँखें लाल-लाल कर "कुहौ-कुहौ" (मारो-मारो) कह उठता है।

दिसि-दिसि कुसुमित देखियत उपवन बिपिन समाज।
मनो बियोगिनु कौं कियौ सर-पंजर रतिराज ॥५२८॥

अन्वय—दिसि-दिसि उपवन बिपिन समाज कुसुमित देखियत, मनो वियोगिनु कौं रतिराज सर-पंजर कियौ।

कुसुमित=फूले हुए। उपवन=फुलवारी। बिपिन=जंगल। समाज=समूह। सर-पंजर=बाणों का पिंजड़ा। रतिराज=कामदेव।

प्रत्येक दिशा में फुलवारियों और जंगलों के समूह फूले हुए दीख पड़ते हैं, मानो वियोगिनियों के लिये कामदेव ने बाणों का पिंजड़ा तैयार किया है—(ये चारों ओर के फूल विरहिणियों के हृदय को विदीर्ण करने में बाणों का काम देते हैं)।

नोट—कामदेव के बाण पुष्प के होते हैं। इसलिये चारों ओर खिले हुए पुष्प-पुञ्ज को कामदेव का शर-पञ्जर कहा है। जैसे बाणों के पिंजड़े में कैदी जिधर देखेगा उधर ही चोखी-तीखी नोंकें देख पड़ेंगी, वैसे ही चारों ओर फूले हुए फूल विरहिणी की दृष्टि में चुभते हैं—दिल में खटकते हैं।

ही औरै-सी ह्वै गई टरी औधि कैं नाम।
दूजे कै डारी खरी बौरी बौरैं आम ॥ ५२९ ॥

अन्वय—टरी औधि के नाम ही औरै-सी ह्वै गई, दूजै बौरैं आम खरी बौरी कै डारी।

ही=हृदय। अवधि=वादा, आने की तारीख। दूजैं=दूसरे। खरी=अधिक, पूरी। बौरी=पगली। बौरैं=मँजराये हुए।

(एक तो) टली हुई अवधि के नाम से ही (यह सुनते ही

कि प्रीतम अपने किये हुए वादे पर नहीं आयँगे) उसका हृदय कुछ और ही प्रकार का (उन्मना) हो गया था, दूसरे इन मँजराये हुए आमों ने उसे पूरी पगली बना डाला—(आम की मँजरी देखते ही वह एकदम पगली हो गई ।)

भौ यह ऐसोई समौ जहाँ सुखद दुखु देत ।
चैत-चाँद की चाँदनी डारति किए अचेत ॥५३०॥

अन्वय—यह ऐसोई समौ भौ जहाँ सुखद दुखु देत, चैत-चाँद की चाँदनी अचेत किए डारत ।

भौ = हो गया । ऐसोई = ऐसा ही । समौ = समय, जमाना । अचेत किए डारत = बेहोश किये डालती है ।

यह ऐसा ही (बुरा) समय आ गया है कि जहाँ सुख देने वाला भी दुःख ही देता है । (देखो न, सखी !) चैत के चन्द्रमा की (सुखद) चाँदनी भी (इस विरहावस्था में) बेहोश किये डालती है ।

नोट—"अफ़सुर्दा दिल के वास्ते क्या चाँदनी का लुत्फ ।
लिपटा पड़ा है मुर्दा-सा मानों कफन के साथ ॥"

गनती गनिबे तैं रहे छत हूँ अछत समान ।
अब अलि ए तिथि औम लौं परै रहै तन प्रान ॥५३१॥

अन्वय—गिनती गनिबे तैं रहे छत हूँ अछत समान । अलि अब ए प्रान औम तिथि लौं तन परै रहे ।

छत = रहना । अछत = न रहना । अलि = सखी । औम तिथि = अवम-तिथि = क्षय-तिथि—चन्द्रमा के अनुसार महीने की गिनती करने से बीच-बीच में कितनी तिथियों की हानि हो जाती है, और लुप्त होने पर भी वे पत्रा में लिखी जाती हैं, पर उनकी गणना नहीं होती ।

(मेरे प्राण) गिनती में गिने जाने से भी रहे—अब कोई इनकी (जीवित में) गिनती भी नहीं करता। रहते हुए भी न रहने के समान हो रहे हैं। हे सखी, अब ये मेरे प्राण क्षय तिथि के समान शरीर में पड़े रहते हैं।

जाति मरी बिछुरति घरी जल-सफरी की रीति।
खिन-खिन होति खरी-खरी अरी जरी यह प्रीति ॥५३२॥

अन्वय—जल-सफरी की रीति घरी बिछुरति मरी जाति, अरी यह जरी प्रीति खिन-खिन खरी-खरी होति।

सफरी = मछली। रीति = भाँति, समान। खरी-खरी होति=बढ़ती जाती है। जरी = जली हुई, मुँहजली। खिन-खिन = क्षण-क्षण।

जल की मछली के समान एक घड़ी भी (प्रियतम से) बिछुड़ने पर मरी जाती हूँ। अरी सखी! तो भी यह मुँहजली प्रीति ऐसी है कि क्षण-क्षण बढ़ती ही जाती है।

मार सु मार करी खरी मरी मरीहिं न मारि।
सींचि गुलाब घरी-घरी अरी बरीहिं न बारि ॥५३३॥

अन्वय—मार खरी सुमार करी, मरी मरीहिं न मारि, अरी घरी-घरी गुलाब सींचि बरीहिं न बारि।

मार = कामदेव। सु मार = गहरी मार या चोट। खरी = अत्यन्त, खूब। मरी = मर गई। मरीहिं = मरी हुई को। बरीहिं = जली हुई को। बारि = जलाओ।

कामदेव ने तो खूब ही गहरी मार मारी है, (जिससे) मैं मर गई हूँ, (अब फिर) मरी हुई को मत मार। अरी सखी! घड़ी-घड़ी गुलाब-जल छिड़ककर, (विरह में) जली हुई को मत जला।

रह्यौ ऐंचि अन्त न लह्यौ अवधि दुसासन बीरु।
आली बाढ़तु बिरहु ज्यौं पंचाली कौ चीरु ॥५३४॥

अन्वय—अवधि दुसासन-बीरु ऐंचि रह्यौ अंत न लह्यौ, आली बिरहु पंचाली कौ चीरु ज्यौं बाढ़तु।

ऐंचि = खींचना। अन्त न लह्यौ = अन्त (छोर) न पाया, पार न पाया। अवधि = वादे का दिन, निश्चित तिथि। आली = सखी। पंचाली = द्रौपदी।

(प्रीतम के आने का) निश्चित समय-रूपी दुश्शासन-वीर (विरह-रूपी दीर्घ चीर को) खींचता ही रह गया, किन्तु पार न पाया। अरी सखी! यह विरह द्रौपदी के चीर के समान बढ़ रहा है।

नोट—जिस प्रकार द्रौपदी के चीर को दुश्शासन खींचता रह गया, और छोर न पा सका, उसी प्रकार प्रीतम के आने का निश्चित दिन प्रिया के विरह को शांत न कर सका। अर्थात् प्रीतम के आने का दिन ज्यों-ज्यों निकट आता है, त्यों-त्यों विरहिणी की व्यथा बढ़ रही है।

बिरह बिथा-जल परस बिन बसियतु मो मन ताल।
कछु जानत जलथंभ-बिधि दुरजोधन लौं लाल ॥५३५॥

अन्वय—बिरह-बिथा जल परस बिन मो मन-ताल बसियतु। लाल दुरजोधन लौं कछु जलथम्भ-बिधि जानत।

बिथा=व्यथा, दुःख। परस = स्पर्श। ताल = तालाब। लौं=समान।

विरह के दुःख-रूपी जल के स्पर्श विना मेरे मन-रूपी तालाब में बसते हो—यद्यपि सदा मैं तुम्हें हृदय में धारण किये रहती हूँ, तथापि मेरी हार्दिक व्यथा का तुम अनुभव नहीं करते। (सो

मालूम होता है कि) हे लाल ! तुम दुर्योधन के समान कुछ जल-स्तम्भन-विधि जानते हो ।

नोट—दुर्योधन जलस्तम्भन-विधि जानता था । अगाध जल में घुसकर बैठ रहता था, किन्तु उसपर जल का कुछ प्रभाव नहीं पड़ता था ।

सोवत सपनैं स्यामघनु हिलमिल हरत बियोगु ।
तब हीं टरि कित हूँ गई नींदौ नींदनु जोगु ॥५३६॥

अन्वय—सोवत सपनैं स्यामघन हिलिमिलि बियोगु हरत, तबहीं नींदनु जोगु नींदौ कितहूँ टरि गई ।

नींदौ = नींद भी । नींदन जोगु = निंदा करने के योग्य, निंदनीय ।

सोते समय स्वप्न में श्रीकृष्ण हिलमिलकर विरह कर रहे थे-बिछोह के दुःख का नाश कर रहे थे । उसी समय निंदनीय नींद भी (न मालूम) कहाँ टल गई !

पिय-बिछुरन कौ दुसहु दुखु हरषु जात प्यौसार ।
दुरजोधन-लौं देखियति तजति प्रान इहि बार ॥५३७॥

अन्वय—पिय-बिछुरन कौ दुसह दुखु हरषु प्यौसार जात, इहि बार दुरजोधन लौं प्रान तजति देखियत ।

प्यौसार = नैहर, मायका, पीहर । लौं = समान ।

यद्यपि प्रीतम से बिछुड़ने का असह्य दुःख है, तथापि प्रसन्न होकर नैहर जाती है । (इस अत्यन्त दुःख और अत्यन्त सुख के सम्मिश्रण से) यह बाला दुर्योधन के समान प्राण त्यागती हुई दीख पड़ती है—(मालूम होता है कि इस आत्यन्तिक सुख-दुःख के झमेले में इसके प्राण ही निकल जायँगे ।)

नोट—दुर्योधन को शाप था कि जब उसे समान भाव से सुख और दुःख होगा, तभी वह मरेगा । ऐसा ही हुआ भी । दुर्योधन के इच्छानुसार

अश्वत्थामा पाण्डवों के भ्रम से उनके पुत्रों के सिर काट लाया। पहले शत्रु-वध-जनित अतिशय आनन्द हुआ, फिर सिर पहचानने पर समूल वंशनाश जानकर घोर दुःख।

कागद पर लिखत न बनत कहत सँदेसु लजात।
कहि है सबु तेरौ हियौ मेरे हिय की बात ॥५३८॥

अन्वय—कागद पर लिखत न बनत, सँदेसु कहत लजात, तेरौ हियौ मेरे हिय की सबु बात कहिहै।

कागद = कागज। हियौ = हृदय।

कागज पर लिखते नहीं बनता—लिखा नहीं जाता, और (जबानी) संदेश कहते लज्जा आती है। बस, तुम्हारा हृदय ही मेरे हृदय की सारी बातें (तुमसे) कहेगा।

नोट—श्रीरामचन्द्रजी ने सीताजी के पास अत्यन्त हृदयग्राही संदेश भेजा था। तुलसीदास की मर्मस्पर्शी भाषा में उसे पढ़िये—

तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा, जानत प्रिया एक मन मोरा।
सो मन रहत सदा तोहि पाहीं, जानु प्रीति-रस इतनिय माहीं॥

बिरह-बिकल बिनु ही लिखी पाती दई पठाइ।
आँक-बिहूनीयौ सुचित सूनै बाँचत जाइ ॥५३९॥

अन्वय—बिरह-बिकल बिनु लिखी ही पाती पठाइ दई। आँक-बिहूनीयौ सुचित सूनै बाँचत जाइ।

आँक-बिहूनीयौ = अक्षर-विहीन होने पर भी। सुचित = स्थिरचित्त होकर, अच्छी तरह से। सूनै = खाली-ही-खाली। बाँचत जाइ = पढ़ता जाता है।

विरह-व्यथिता (बाला ने) विना लिखे ही (सादे कागज के रूप में) चिट्ठी पठा दी। (और इधर प्रेम-मत्त प्रीतम) उस

अक्षर-रहित (चिट्ठी) को भी अच्छी तरह से खाली-ही-खाली पढ़ता जाता है ।

रँगराती रातैं हियैं प्रियतम लिखी बनाइ ।
पाती काती बिरह की छाती रही लगाइ ॥५४०॥

अन्वय—रातैं हियैं प्रियतम रँगराती बनाइ लिखी; पाती बिरह की काती छाती लगाइ रही ।

रँगराती = लाल रंग में रँगी । रातैं हियैं = प्रेमपूर्ण (अनुरक्त) हृदय । पाती = चिट्ठी । काती = छोटी तेज तलवार, कत्ती ।

प्रेमपूर्ण हृदय से प्रीतम ने लाल रंग में (लाल स्याही से) रच-रचकर चिट्ठी लिखी, और विरह को काटनेवाली तलवार समझकर उस चिट्ठी को (प्रियतमा) हृदय से लगाये रही।

तर झरसी ऊपर गरी कज्जल जल छिरकाइ ।
पिय पाती बिनहीं लिखी बाँची बिरह बलाइ ॥५४१॥

अन्वय—तर झरसी ऊपर गरी कज्जल जल छिरकाइ, बिनहीं लिखी पाती पिय बिरह-बलाइ बाँची ।

तर = तले, नीचे । झरसी = झुलसी हुई । गरी = गली हुई । पाती = पत्री = चिट्ठी । बाँची = पढ़ लिया । बलाइ = रोग ।

(हाथ की ज्वाला से) नीचे झुलसी हुई, (आँखों के आँसुओं से भीगी होने के कारण) ऊपर गली हुई, और काजल के जल से छिड़की हुई (काले दाग से भरी हुई) विना लिखी (प्रियतमा की) सादी चिट्ठी में ही प्रीतम ने विरह का रोग पढ़ लिया—(प्रीतम जान गया कि प्रियतमा विरह से जल रही है और आँसू बहा रही है ।)

कर लै चूमि चढ़ाइ सिर उर लगाइ भुज भेंटि।
लहि पाती पिय की लखति बाँचति धरति समेटि ॥५४२॥

अन्वय—पिय की पाती लहि कर लै चूमि सिर चढ़ाइ लखति उर लगाइ भुज भेंटि बाँचति समेटि धरति।

कर = हाथ। उर = हृदय। भुज भेंटि = आलिंगन कर। पिय = प्रीतम। धरति समेटि = मोड़कर या तह लगाकर यत्न से रखती है। बाँचति = पढ़ती है।

(नायिका) प्रीतम की पाती पाकर उसे हाथ में लेकर, चूमकर, सिर पर चढ़ाकर देखती है और छाती से लगाकर, तथा (भुजाओं से) आलिंगन कर (बार-बार) पढ़ती और समेटकर रखती है।

मृगनैनी दृग की फरक उर उछाह तन फूल।
बिनहीं पिय आगम उमगि पलटन लगी दुकूल ॥५४३॥

अन्वय—दृग की फरक मृगनैनी उर उछाह तन फूल, बिन हीं पिय आगम उमगि दुकूल पलटन लगी।

उछाह = उत्साह। आगम = आगमन, आना। उमंगि = उमंग में आकर। पलटन लगी = बदलने लगी। दुकूल = रेशमी साड़ी, चीर।

आँख के फड़कते ही मृगनैनी (नायिका) का हृदय उत्साह से भर गया, और शरीर (आनन्द से) फूल उठा, तथा बिना प्रीतम के आये ही (अपने शुभ शकुन को सोलह आने सत्य समझ) उमंग में आकर साड़ी बदलने लगी।

नोट—स्त्रियों के लिये बाईं आँख का फड़कना शुभ शकुन है। अतः नायिका ने अपनी बाईं आँख के फड़कते ही प्रेमावेश के कारण समझ लिया कि आज प्रीतम अवश्य आवेंगे, अतः बन-ठनकर मिलने को तैयार होने लगी। उत्कंठा की हद है।

बाम बाँहु फरकत मिलैं जौं हरि जीवनमूरि।
तौ तोहीं सौं भेंटिहौं राखि दाहिनी दूरि ॥५४४॥

अन्वय—बाम बाँहु फरकत जौ जीवनमूरि हरि मिलैं तौ दाहिनी दूरि राखि तोहीं सौं भेंटिहौं।

बाम = बाईं। बाँहु = बाँह, भुजा। जीवनमूरि=प्राणाधार। भेंटिहौं= भेंटूँगी, भुजा-भरकर मिलूँगी। दूरि = अलग।

ऐ बाईं भुजा! (तू फड़क रही है, सो) तेरे फड़कने से यदि प्राणाधार श्रीकृष्ण मिल जायँ-श्रीकृष्ण आज आ जायँ-तो दाहिनी भुजा को दूर रखकर (मैं तुझी से उनका आलिंगन करूँगी (यही तेरे फड़कने का पुरस्कार है!)।

कियौ सयानी सखिनु सौं नहिं सयानु यह भूल।
दुरै दुराई फूल लौं क्यौं पिय-आगम-फूल ॥५४५॥

अन्वय—सखिनु सौं सयानी कियौ सयानु नहिं यह भूल, पिय-आगम-फूल फूल लौं दुराई क्यौं दुरै?

सयानी = चतुराई। सयान = चतुराई। दुरै = छिपे। लौं = समान। पिय-आगम-फूल = प्रीतम के आगमन का उत्साह।

सखियों से की गई चतुराई (वास्तविक) चतुराई नहीं, वरन यह भूल है। प्रीतम के आगमन का उत्साह (सुगंधित) फूल के समान छिपाने से कैसे छिप सकता है?

आयौ मीत बिदेस तैं काहू कह्यौ पुकारि।
सुनि हुलसीं बिहँसीं हँसीं दोऊ दुहुनु निहारि ॥५४६॥

अन्वय—काहू पुकारि कह्यौ, मीत बिदेस तैं आयौ, सुनि हुलसीं बिहँसीं दोऊ दुहुनु निहारि हँसीं।

मीत = मित्र = प्यारा, प्रीतम । काहू = किसी ने । हुलसीं = आनन्दित हुईं । बिहँसीं = मुस्कुराईं । दुहुनु = दोनों को । निहारि = देखकर ।

किसीने पुकारकर कहा कि प्रीतम विदेश से आ गया । यह सुनकर आनन्दित हुईं, मुस्कुराईं और दोनों (नायिकाएँ) दोनों को देखकर हँस पड़ीं ।

नोट—दोनों नायिकाएँ एक ही नायक से प्रेम करती थीं । किन्तु दोनों का प्रेम परस्पर अप्रकट था । आज अकस्मात् विदेश से नायक के आने की बात सुनकर दोनों स्वभावतः प्रसन्न हुईं । तब एक दूसरी की प्रसन्नता देखकर ताड़ गई कि यह उन्हें चाहती है । फलतः, अनायास भेद खुलने के कारण दोनों परस्पर देखकर हँस पड़ीं ।

मलिन देह वेई बसन मलिन बिरह कैं रूप ।
पिय-आगम औरै चढ़ी आनन ओप अनूप ॥५४७॥

अन्वय—देह मलिन वेई बसन बिरह कैं रूप मलिन, पिय आगम आनन औरै अनूप ओप चढ़ी ।

वेई = वही । आगम = आगमन, आना । आनन = मुख । औरै = विचित्र ही, निराली ही । ओप = कान्ति । अनूप = अनुपम ।

शरीर मलिन है, वेही मलिन कपड़े हैं और विरह के कारण रूप भी मलिन है । किन्तु प्रीतम के आगमन से उसके मुख पर और ही प्रकार की अनुपम कान्ति चढ़ गई है ।

कहि पठई जिय-भावती पिय आवन की बात ।
फूली आँगन मैं फिरै आँग न आँग समात ॥५४८॥

अन्वय—जिय-भावती पिय आवन की बात कहि पठई, फूली आँगन मैं फिरै आँग आँग न समात ।

जिय-भावती=जो जी को भावे, प्राणों को प्यारी लगे। आँग=अंग, शरीर। आँग न आँग समात=बहुत हर्ष के समय में इस कहावत का प्रयोग होता है।

अपनी प्राण-बल्लभा को प्रियतम ने अपने आने का सँदेसा कहला भेजा। (अतएव मारे प्रसन्नता के) वह फूली-फूली आँगन में फिर रही है, अंग अंग में नहीं समाते।

नोट—धनुष चढ़ावत मे तबहि लखि रिपु-कृत उतपात।
हुलसि गात रघुनाथ को बखतर में न समात॥—पद्माकर।

रहे बरोठे में मिलत पिउ प्रानन के ईसु।
आवत-आवत की भई बिधि की घरी घरीसु॥५४९॥

अन्वय—प्रानन के ईसु पिउ बरोठे में मिलत रहे, आवत-आवत की सु घरी बिधि की घरी भई।

बरोठे=बाहर की बैठक। प्रानन के ईसु=प्राणेश। सु=सो, वह।

प्राणनाथ प्रीतम (परदेश से आने पर) बाहर की बैठक में ही लोगों से मिल रहे थे। (अतएव) जो एक घड़ी (उन्हें आँगन में) आते-आते बीती, सो घड़ी (नायिका के लिये) ब्रह्मा की घड़ी के समान (लम्बी) हो गई।

नोट—कितने ही युग बीत जाते हैं, तब ब्रह्मा की एक घड़ी होती है।

जदपि तेज रौहाल-बल पलकौ लगी न बार।
तौ ग्वैंड़ों घर कौ भयौ पैंड़ो कोस हजार॥५५०॥

अन्वय—जदपि तेज रौहाल-बल पलकौ बार न लगी तौ ग्वैंड़ों घर को पैंड़ो हजार कोस भयो।

रौहाल=(फा० रहवार) घोड़ा। पलकौ=एक पल की भी। बार=देर। ग्वैंड़ो=बस्ती के आसपास की भूमि। पैंड़ो=रास्ता।

यद्यपि तेज घोड़े के कारण (नायक के आने में) एक पल-भर की भी देर न हुई, तो भी गोयँड़े से घर तक का रास्ता (उत्कंठिता नायिका को) हजार कोस (सदृस) मालूम हुआ।

नोट—नायिका ने घर की खिड़की से नायक को तेज घोड़े पर चढ़कर विदेश से आते हुए गाँव के गोयँड़े में देखा। उस गोयँड़े से बस्ती के अन्दर अपने घर तक आने में जो थोड़ी-सी देर हुई, वह उसे हजार वर्ष-सी जान पड़ी।

बिछुरैं जिए सँकोच इहिं बोलत बनत न बैन।
दोऊ दौरि लगे हियैं किए निचौंहैं नैन ॥५५१॥

अन्वय—बिछुरैं जिए इहिं सकोच बैन बोलत न बनत, नैन निचौंहैं किए दोऊ दौरि हियैं लगे।

बिछुरे = जुदा हुए। जिए = मन में। निचौंहैं = नीचे की ओर।

(कैसी लज्जा की बात है कि परस्पर इतना प्रेम करने पर भी) हम दोनों बिछुड़ गये—एक दूसरे से अलग-अलग हो गये—फिर भी जीते रहे यह सँकोच मन में होने के कारण वचन बोलते (बातें करते) नहीं बना। (तो भी प्रेमावेश के कारण) आँखें नीची किये दोनों दौड़कर (परस्पर) हृदय से लिपट गये।

ज्यौं-ज्यौं पावक-लपट-सी तिय हिय सौं लपटाति।
त्यौं-त्यौं छुही गुलाब-सैं छतिया अति सियराति ॥५५२॥

अन्वय—ज्यौं-ज्यौं पावक-लपट-सी तिय हिय सौं लपटाति, त्यौं-त्यौं गुलाब-छुही-सैं छतिया अति सियराति।

पावक=आग। तिय = स्त्री। हिय = हृदय। छुही गुलाब-सैं = गुलाब-जल से सींची हुई-सी। सियराति = ठंढी होती है।

ज्यों-ज्यों आग की लपट के समान (ज्योतिपूर्ण, कान्तिपूर्ण

और कामाग्निपूर्ण) वह स्त्री हृदय से लिपटती है, त्यों-त्यों गुलाब-जल से छिड़की हुई के समान छाती अत्यन्त ठंढी होती है।

पीठि दियैं हीं नैंकु मुरि कर घूँघट-पटु टारि।
भरि गुलाल की मूठि सौं गई मूठि-सी मारि ॥५५३॥

अन्वय—पीठ दियैं ही नैंकु मुरि कर घूँघट-पटु टारि, गुलाब की भरि मूठि सौं मुठि-सी मारि गई।

पीठि दियैं = मुँह फेरकर। नैंकु = जरा। मुरि = मुड़कर। कर = हाथ। पटु = कपड़ा। गुलाल = अबीर। मूठि = मुट्ठी। मूठि = वशीकरण-प्रयोग की विधि।

(मेरी ओर) पीठ किये हुए ही जरा-सा मुड़कर और हाथ से घूँघट का कपड़ा हटाकर अबीर भरी हुई मुट्ठी से (वह नायिका) मानो (वशीकरण-प्रयोग की) मूठ-ही-सी मार गई—(उस अदा से मुझपर अबीर डालना क्या था, वशीकरण-प्रयोग का टोना करना था)

नोट—लज्जाशीला नायिका घूँघट काढ़े नायक की ओर पीठ किये खड़ी थी। नायक उसपर तावड़-तोड़ अबीर डाल रहा था। इतने में उसने भी तमककर, कुछ मुड़कर और घूँघट को हाथ से हटाते हुए नायक पर अबीर की मूठ चला ही दी। उसीपर यह उक्ति है।

दियौ जु पिय लखि चखनु मैं खेलत फागु खियालु।
बाढ़त हूँ अति पीर सु न काढ़त बनतु गुलालु ॥५५४॥

अन्वय—फागु खेलत खियालु पिय लखि चखनु मैं जु दियौ सु अति पीर बाढ़त हूँ गुलाल काढ़त न बनतु।

लखि = ताककर। चख = आँखें। खियालु = कौतुक, विनोद, चुहल। पीर = पीड़ा। सु = सो। गुलालु = अबीर।

फाग खेलते समय कौतुक-(विनोद)-वश प्रीतम ने ताककर उसकी आँखों में जो (अबीर) डाल दी, सो अत्यन्त पीड़ा बढ़ने पर भी उससे वह अबीर काढ़ते नहीं बनता (क्योंकि उस पीड़ा में भी एक विलक्षण प्रेमानन्द है !)

छुटत मुठिनु सँगही छुटी लोक-लाज कुल-चाल।
लगे दुहुनु इक बेर ही चलि चित नैन गुलाल ॥५५५॥

अन्वय—छुटत मुठिनु सँग ही लोकलाज कुलचाल छुटी, इक बेर ही चलि दुहुनु चित नैन गुलाल लगै।

कुलचाल = कुल की चाल, कुलमर्यादा। इक बेर ही = एक साथ ही।

अबीर की मुट्ठियाँ छूटने के साथ लोकलज्जा और कुल-मर्यादा छूट गई। एक साथ ही चलकर दोनों के हृदय, नयन और अबीर एक दूसरे से लगे—अबीर (की मूठ) चलाते समय ही दोनों के नेत्र लड़ गये और दिल एक हो गया।

जज्यौं उलझि झाँपत बदनु झुकति बिहँसि सतराइ।
तत्यौं गुलाल मुठी झुठी झझकावत प्यौ जाइ ॥५५६॥

अन्वय—जज्यौं उझकि बदनु झाँपति झुकति बिहँसि सतराइ, तत्यौं गुलाल झुठी मुठी प्यौ झझकावत जाइ।

जज्यौं=ज्यों-ज्यों। उझकि = लचक के साथ उचककर। झाँपति = ढकती है। सतराइ = डरती है। तत्यों=त्यों-त्यों। झझकावत=डराता है।

ज्यों-ज्यों उझककर (नायिका) मुँह ढाँपती, झुक जाती और हँसकर डरने की चेष्टा (भावभंगी) करती है, त्यों-त्यों अबीर की झूठी मुठी से—विना अबीर की (खाली) मुठी चला-चलाकर—प्रीतम उसे डरवाता जाता है।

रस भिजए दोऊ दुहुनु तउ टिकि रहे टरैं न।
छबि सौं छिरकत प्रेम रँग भरि पिचकारी नैन ॥५५७॥

अन्वय—दोऊ दुहुनु रस भिजए तउ टिकि रहे न टरैं, नैन पिचकारी प्रेम-रँग भरि छबि सौं छिरकत।

भिजए = शराबोर कर दिया। टिकि रहे = डटे रहे।

दोनों ने दोनों को रस से शराबोर कर डाला है, तो भी दोनों अड़े खड़े हैं, टलते नहीं। (मानों फाग खेलने के बाद अब) नैन-रूपी पिचकारी में प्रेम का रँग भरकर सुन्दरता के साथ (परस्पर) छिड़क रहे हैं।

गिरै कंपि कुछु कछु रहै कर पसीजि लपटाइ।
लैयौ मुठी गुलाल भरि छुटत झुठी ह्वै जाइ ॥५५८॥

अन्वय—कछु कंपि गिरै, कछु कर पसीजि लपटाइ रहै, मुठी गुलाल भरि लैयौ छुटत झुठी ह्वै जाइ।

कंपि = काँपना। छूटत = छूटते ही, चलाते ही। झुठी = खाली।

कुछ तो (प्रेमावेश में) हाथ काँपने से गिर पड़ती है, और कुछ हाथ के पसीजने से उसमें लिपटी रह जाती है। मुठी में अबीर भरकर तो लेती है, किन्तु चलाते ही (वह मुठी) झूठी हो जाती है—नायक की देह पर अबीर पड़ती ही नहीं।

ज्यौं-ज्यौं पटु झटकति हठति हँसति नचावति नैन।
त्यौं-त्यौं निपट उदार ह्वै फगुवा देत बनै न ॥५५९॥

अन्वय—ज्यौं-ज्यौं पटु झटकति हठति हँसति नैन नचावति, त्यौं-त्यौं निपट उदार ह्वै फगुवा देत न बनै।

पटु = अंचल। झटकति = जोर से हिलाती या फहराती है। हठति =

हठ करती है। निपट = अत्यन्त। फगुवा = फाग खेलने के बदले में वस्त्राभूषण या मेवा-मिठाई आदि का पुरस्कार।

ज्यों-ज्यों वह (नायिका) कपड़े (अंचल) को झटकती है, हठ करती है, हँसती है और आँखों को नचाती है, त्यों-त्यों अत्यन्त उदार होने पर भी (इस हावभाव पर मुग्ध होकर, नायक से) फगुआ देते नहीं बनता।

छकि रसाल-सौरभ सने मधुर माधवी-गंध।
ठौर-ठौर झौंरत झपत भौंर-भौंर मधु-अंध ॥५६०॥

अन्वय—रसाल-सौरभ छकि मधुर माधवी-गंध सने मधु-अंध भौंर-झौंर ठौर-ठौर झौंरत झँपत।

छकि = तृप्त या मत्त होकर। रसाल = (यहाँ) आम की मंजरी। सौरभ = सुगंध। सने = लिप्त होकर। माधवी = एक प्रकार की बसन्ती लता। ठौर-ठौर = जगह जगह, यत्र-तत्र। झँपत = मस्ती में ऊँघते हैं। भौंर = समूह। झौंरत = मँड़राते हैं।

आम की (मंजरी की) सुगन्ध से मस्त होकर, माधवीलता की मधुर गन्ध से सने (लिप्त) हुए मदांध भौंरों के समूह जगह-जगह झूमते और झपकी लेते (फिरते) हैं—(किसी पुष्प पर गुञ्जार करते हैं, तो किसीपर बैठकर ऊँघने लगते हैं।)

यह बसन्त न खरी अरी गरम न सीतल बातु।
कहि क्यौं प्रगटैं देखियतु पुलकु पसीजे गातु ॥५६१॥

अन्वय—यह बसन्त अरी न खरी गरम न सीतल बातु, कहि पसीजे गातु पुलकु प्रगटैं क्यौं देखियतु।

खरी = अत्यन्त। अरी = ऐ सखी। बातु = हवा। कहि = कहो। प्रगटैं = प्रत्यक्ष। पुलकु = रोमांच। पसीजे = पसीने से लथपथ।

यह वसन्त ऋतु है। अरी सखी, न इसमें अत्यन्त गर्मी है और न (अत्यन्त) ठंढी हवा ! कहो, फिर तुम्हारे पसीजे हुए—पसीने से लथपथ—शरीर में पुलकें प्रत्यक्ष क्यों दीख पड़ती हैं ?

नोट—गर्मी से पसीना निकलता है और सर्दी से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। प्रीतम के साथ तुरत रति-समागम करके आई हुई नायिका में ये दोनों ही चिह्न देखकर सखी परिहास करती है !

फिरि घर कौं नूतन-पथिक चले चकित चित भागि।
फूल्यौ देखि पलास-बन समुही समुझि दवागि ॥५६२॥

अन्वय—पलास-बन फूल्यौ देखि समुही दवागि समुझि चकित चित नूतन पथिक फिरि घर कौं भागि चले।

नूतन = नवीन। पथिक = बटोही, परदेशी। चकित-चित = घबरा कर। पलास = ढाक, किंशुक, लाल फूल का एक पेड़। समूही = सामने। दवागि = दावाग्नि, दावानल, जंगल की आग—जो आप-ही-आप (जंगलों में) उत्पन्न होकर सारे वन को स्वाहा कर डालती है।

पलास के वन को फूला देख, उसे अपने सामने ही दावाग्नि समझ (डर से) घबराकर नया बटोही लौटकर अपने घर की ओर भाग चला। (वसन्त-ऋतु में फूले हुए पलास उसे दावाग्नि के समान जान पड़े।)

अन्त मरैंगे चलि जरैं चढ़ि पलास की डार।
फिरि न मरैं मिलिहैं अली ए निरधूम अँगार ॥५६३॥

अन्वय—अंत मरैंगे चलि पलास की डार चढ़ि जरैं, फिरि मरैं ए निरधूम अँगार न मिलिहैं।

चलि = चलो। डार = डाल। निरधूम = विना धुएँ की। अँगार = आग।

(विरहिणी नायिका विरह के उन्माद में पलास के फूल को आग का लाल अंगार समझकर कहती है—) अन्त में मरना ही है, तो चलो, पलास की डाल पर चढ़कर जल जायँ। अरी सखी, फिर मरने पर ऐसी विना धुएँ की आग नहीं मिलेगी।

नाहिन ए पावक-प्रबल लुवैं चलैं चहुँ पास।
मानहु बिरह बसंत कैं ग्रीषम लेत उसास ॥५६४॥

अन्वय—चहुँ पास ए पावक-प्रबल लुवैं नाहिन चलैं, बसंत के बिरह मानहु ग्रीषम उसास लेत।

पावक-प्रबल = आग के समान प्रचंड। लुवैं = आँच-भरी हवा, गर्म हवा के जबर्दस्त झोंके ('लूँ' का बहुवचन 'लुवैं')। चहुँ पास = चारो ओर। उसास = आह-भरी ऊँची साँसें।

चारो ओर ये आग के समान प्रबल लुवैं नहीं चल रही हैं, वरन् वसंत के विरह में मानों ग्रीष्म-ऋतु लम्बी साँसें ले रही है—आह भर रही है।

कहलाने एकत बसत अहि-मयूर मृग-बाघ।
जगतु तपोबन सौ कियौ दीरघ दाघ निदाघ ॥५६५॥

अन्वय—अहि-मयूर मृग बाघ कहलाने एकत बसत, निदाघ दीरघ दाघ जगतु तपोवन सौ कियौ।

कहलाने = (१) कुम्हलाये हुए, गर्मी से व्याकुल (२) किस लिये। एकत = एकत्र। अहि = सर्प। दीरघ दाघ = कठोर गर्मी। निदाघ = ग्रीष्म।

(परस्पर कट्टर शत्रु होने पर भी) सर्प और मयूर तथा हिरन और बाघ किस लिये (गर्मी से व्याकुल होकर) एकत्र वास करते

हैं—एक साथ रहते हैं ? ग्रीष्म की कठोर गर्मी ने संसार को तपोवन-सा बना दिया।

नोट—इस दोहे के प्रथम चरण में एक खूबी है। उसमें प्रश्न और उत्तर दोनों हैं। प्रश्न है—सर्प और मयूर तथा मृग और बाघ किस लिये एकत्र बसते हैं ? उत्तर—गर्मी से व्याकुल होकर। तपोवन में सभी जीव-जन्तु आपस में स्वाभाविक वैर-भाव भूलकर एक साथ रहते हैं। आचार्य केशवदास ने भी तपोवन का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—"केसोदास मृगज-बछेरू चूँ बाघनोन चाटत सुरभि बाघ-बालक बदन है। सिंहिन को सटा ऐंचे कलभ करिनि कर सिंहन के आसन गयन्द के रहन है। फनी के फनन पर नाचत मुदित मोर क्रोध न विरोध जहाँ मद न मदन है। बानर फिरत डोरे-डारे अन्ध तापसनि सिव को मसान कैधौं ऋषि को सदन है।"

बैठि रही अति सघन बन पैठि सदन तन माँह।
देखि दुपहरी जेठ की छाँहौं चाहति छाँह ॥५६६॥

अन्वय—अति सघन बन बैठि रही सदन तन माँह पैठि, जेठ की दुपहरी देखि छाँहौं छाँह चाहति।

सघन = घना। सदन = घर। तन = शरीर। छाँहौं = छाया भी।

(छाया या तो) अत्यन्त सघन वन में बैठ रही है (या बस्ती के) घर और (जीवों के) शरीर में घुस गई है। (मालूम पड़ता है) जेठ-मास की (झुलसानेवाली) दुपहरी देखकर छाया भी छाया चाहती है।

नोट—जेठ की दुपहरी में सूर्य ठीक सिर के ऊपर (मध्य आकाश में) रहता है। अतः सब चीजों की छायाँ अत्यन्त छोटी होती हैं। पेड़ की छाया ठीक उसकी डालियों के नीचे रहती है। घर की छाया घर में ही घुसी रहती है—दीवार से नीचे नहीं उतरती। शरीर की छाया भी नहीं देख

पड़ती—परछाईं पैरों के नीचे जाती है, मानों वह भी शरीर में ही घुस गई हो। वाहवा! इस दोहे से विहारी के प्रकृति-निरीक्षण-नैपुण्य का कैसा उत्कृष्ट परिचय मिलता है!

तिय-तरसौंहैं मन किए करि सरसौंहैं नेह।
धर परसौंहैं ह्वै रहे झर बरसौंहैं मेह ॥५६७॥

अन्वय—नेह सरसौं हैं करि मन तिय-तरसौंहैं किए झर बरसौंहैं मेह धर परसौंहैं ह्वै रहे!

तिय-तरसौंहैं = स्त्री पर ललचनेवाले। सरसौंहैं = रसीला, सरस। धर = धरा, पृथ्वी। परसौंहैं = स्पर्श करनेवाले। बरसौंहैं = बरसनेवाले।

(वर्षा ने) प्रेम को सरस बनाकर मन को स्त्री के लिये ललचनेवाला बना दिया—(वर्षा आते ही प्रेम जग गया और स्त्री के साथ भोग-विलास करने को मन मचल गया) और, झड़ी लगा कर बरसनेवाले मेघ पृथ्वी को स्पर्श करनेवाले हो गये—(मेघ इतने नीचे आकर बरसते हैं, मानों वे पृथ्वी का आलिंगन कर रहे हों)।

पावस निसि-अँधियार मैं रह्यौ भेदु नहिं आनु।
राति-द्यौस जान्यौ परतु लखि चकई-चकवानु ॥५६८॥

अन्वय—पावस निसि-अँधियार मैं आनु भेदु नहि रह्यौ, चकई-चकवानु लखि राति-द्यौस जान्यौ परतु।

पावस = वर्षा ऋतु। निसि = रात। भेद=फर्क, अन्तर। आन=अन्य, दूसरा। द्यौस = दिन।

पावस और रात के अन्धकार में अन्य भेद नहीं रहा—(पावस का अंधकार और रात का अंधकार एक समान हो रहा है), चकई और चकवा को देखकर ही रात-दिन जान पड़ते हैं—

(जब चकवा और चकई को लोग एक साथ देखते हैं, तो समझते हैं कि दिन है; फिर जब उन्हें बिछुड़ा देखते हैं, तो समझते हैं कि रात है)।

नोट—रात में चकवा-चकई एक साथ नहीं रहते।

छिनकु चलति ठिठकति छिनकु भुज प्रीतम गल डारि।
चढ़ी अटा देखति घटा बिज्जु-छटा-सी नारि ॥५६९॥

अन्वय—छिनकु चलति छिनकु प्रीतम-गल भुज डारि ठिठकति, बिज्जु-छटा-सी नारि अटा चढ़ि घटा देखति।

छिनकु = एक क्षण। ठिठकति = रुककर खड़ी हो जाती है। अटा = कोठा, अटारी। बिज्जुछटा = बिजली की दमक।

एक क्षण चलती है, और दूसरे ही क्षण प्रीतम के गललाहियाँ डालकर ठिठककर खड़ी हो जाती है। (इस प्रकार) बिजली की दमक के समान वह स्त्री कोठे पर चढ़कर (मेघ की) छटा देख रही है।

पावक-झर तैं मेह-झर दाहक दुसह बिसेखि।
दहै देह वाकै परस याहि दृगनु ही देखि ॥५७०॥

अन्वय—पावक-झर तैं मेह-झर बिसेखि दाहक दुसह, वाकै परस देह दहै याहि दृगनु देख ही।

झर = (१) लपट (२) झड़ी। दहै = जलना। दृगनु = आँखों से।

आग की लपट से मेघ की झड़ी (कहीं) अधिक जलानेवाली और असहनीय (मालूम होती) है, क्योंकि उस (आग की लपट) के स्पर्श से देह जलती है, और इस (मेघ की झड़ी) को आँखों से देखने ही से। (विरहाग्नि भड़ककर देह को भस्म कर देती है)।

कुढँगु कोप तजि रँगरली करति जुवति जग जोइ।
पावस गूढ़ न बात यह बूढ़नु हूँ रँग होइ ॥५७१॥

अन्वय—जोइ कुढँगु कोप तजि जग जुवति रँगरली करति यह बात गूढ़ न पावस बूढ़नु हूँ रँग होइ।

कुढंगु = नटखटपन। कोप = क्रोध। रँगरली = केलि-रंग, विहार। जोइ = देखो। पावस = वर्षा-ऋतु। गूढ़ = गुप्त, छिपा हुआ। बूढ़नु = (१) एक लाल कीड़ा, बीरबहूटी (२) बूढ़ियों। रँग = (१) रसिकता, उमंग (२) प्रेम।

देखो, नटखटपन और क्रोध छोड़कर संसार की युवतियाँ अपने प्रीतमों के संग रँगरलियाँ (विहार) करती हैं। और तो और, यह बात भी छिपी नहीं है कि इस वर्षा-ऋतु में बूढ़ियों (बीर-बहूटियों) में भी रंग आ जाता है—उमङ्ग उमड़ आती है। (फिर युवतियों का क्या पूछना ?)

धुरवा होहि न अलि इहै धुआँ धरनि चहुँकोद।
जारतु आवत जगतु कौं पावस-प्रथम-पयोद ॥५७२॥

अन्वय—पावस-प्रथम-पयोद जगतु कौं जारतु आवत, अलि इहै धुआँ धरनि चहुँ कोद, धुरवा न होहि।

धुरवा = मेघ। अलि = सखी। धरनि = पृथ्वी। चहुँ कोद = चारो ओर। पावस-प्रथम-पयोद = वर्षा-ऋतु के पहले दिन का बादल।

वर्षा-ऋतु के पहले दिन का बादल संसार को जलाता हुआ चला आता है। हे सखी, यह उसी का (संसार के जलने का) धुआँ पृथ्वी के चारो ओर (दीख पड़ता है), यह मेघ हो नहीं सकता।

हठु न हठीली करि सकैं यह पावस-ऋतु पाइ।
आन गाँठि घुटि जाति ज्यौं मान-गाँठि छुटि जाइ ॥५७३

अन्वय—यह पावस-ऋतु पाइ हठीली हठु न करि सकैं, आन गाँठि ज्यौं छुटि जाति मान-गाँठि छुटि जाइ।

आन = दूसरा। गाँठि = गिरह। छुटि जाति = कड़ी पड़ जाती है।

इस पावस-ऋतु को पाकर—इस वर्षा के जमाने में—हठीली नायिका भी हठ नहीं कर सकती, (क्योंकि इस ऋतु में) अन्य गाँठें जिस प्रकार कड़ी पड़ जाती हैं, (उसी प्रकार) मान की गाँठ (आप-से-आप) खुल जाती है।

नोट—बरसात में सन, मूँज आदि की रस्सियों की गाँठें कड़ी पड़ जाती हैं, पर मेघ उमड़ने और बिजली कौंधने पर मान की गाँठ टूट ही जाती है।

वेऊ चिरजीवी अमर निधरक फिरौ कहाइ।
छिन बिछुरैं जिनकी नहीं पावस आउ सिराइ॥५७४॥

अन्वय—वेऊ निधरक चिरजीवी अमर कहाइ फिरौ, जिनकी आउ पावस छिन बिछुरैं नहिं सिराइ।

आउ = उम्र, अवस्था। सिराइ = बीतता है।

वे भी बेखटके चिरजीवी और अमर कहलाते फिरें जिनकी आयु पावस-ऋतु में एक क्षण के वियोग में भी नहीं बीतती—या जो (रसिक जन) इस वर्षा-ऋतु में अपनी प्रियतमा से क्षण-मात्र के लिये बिछुड़ने पर भी मर नहीं जाते, वे ही अमर और चिरजीवी पदवी के हक़दार हैं।

नोट—प्रेमी कवि ठाकुर ने भी क्या खूब कहा है—"सजि सोहे दुकूलन बिज्जुछटा-सी अटान चढ़ी घटा जोवति हैं। रँग-राती सुनी धुनि मोरन की मदमाती सँजोग सँजोवति हैं। कवि 'ठाकुर' वे पिय दूर बसैं हम आँसुन सों तन धोवति हैं। धनि वे धनि पावस की रतियाँ पति की छतियाँ लगि सोवति हैं॥

अब तजि नाउँ उपाव कौ आयौ सावन मास।
खेलु न रहिबो खेम सौं केम-कुसुम की बास ॥५७५॥

अन्वय—अब उपाव कौ नाउँ तजि, सावन मास आयौ, केम-कुसुम की बास खेम सौं रहिबो खेलु न।

नाउँ = नाम। उपाव = उपाय, यत्न, तरकीब, युक्ति। खेम = क्षेम, कुशल। केम-कुसुम = कदम्ब का फूल, जिसमें बड़ी भीनी-भीनी और मस्तानी सुगन्ध होती है।

अब उपाय का नाम छोड़ो—उस बाला के फँसाने की युक्तियों को त्यागो, क्योंकि सावन का महीना आ गया। कदम्ब के फूल की सुगन्ध सूँघकर कुशल-क्षेम से रह जाना हँसी-खेल नहीं है—अर्थात् कदम्ब के फूल की गन्ध पाते ही वह पगली (मस्त) होकर अपने-आप तुमसे आ मिलेगी।

बामा भामा कामिनी कहि बोलौ प्रानेस।
प्यारी कहत खिसात नहिं पावस चलत बिदेस ॥५७६॥

अन्वय—प्रानेस बामा भामा कामिनी कहि बोलौ, पावस बिदेस चलत प्यारी कहत नहिं खिसात।

बामा = (१) स्त्री (२) जिससे विधाता वाम हो। भामा = (१) स्त्री (२) मानिनी, क्रुद्ध-स्वभावा। कामिनी = (१) स्त्री (२) जो किसी की कामना करे। प्रानेस = प्राणेश, प्राणनाथ। खिसात = लजाते हो।

हे प्राणनाथ! मुझे बामा, भामा और कामिनी नाम से कहकर पुकारिये। इस वर्षा-ऋतु में विदेश जाते हुए भी मुझे प्यारी कहते लज्जा नहीं आती? (यदि मैं सचमुच आपकी 'प्यारी' होती, तो इस वर्षा-ऋतु में मुझे अकेली छोड़कर आप विदेश क्यों जाते?)

उठि ठकुठकु एतौ कहा पावस कैं अभिसार।
जानि परैगी देखियौ दामिनि घन-अँधियार ॥५७७॥

अन्वय—उठि पावस कैं अभिसार एतौ ठकुठकु कहा। देखियौ घन-अँधियार दामिनि जानि परैगी।

ठकुठकु = झमेला। एतौ = इतना। अभिसार = प्रेमी से मिलने के लिये संकेत-स्थल पर जाना। देखियौ = देख लिये जाने पर भी। दामिनि = बिजली। घन = बादल।

उठो, वर्षा-ऋतु के अभिसार से भी इतना झमेला कैसा—इतनी हिचकिचाहट और सजधज क्यों? देख लिये जाने पर भी बादलों के अंधकार में तुम बिजली जान पड़ोगी--जो तुम्हें देखेंगे भी वे समझेंगे कि बादलों में बिजली चमकती जा रही हैं।

फिर सुधि दै सुधि द्याइ प्यौ इहिं निरदई निरास।
नई नई बहुर्यौ दई दई उसासि उसास ॥५७८॥

अन्वय—इहिं निरदई निरास फिर सुधि दै प्यौ सुधि द्याइ दई बहुर्यौ नई नई उसास उसासि दई।

सुधि दै = होश दिलाकर। सुधि द्याइ = याद दिला दी। बहुर्यौ = फिर। उसास उसासि दई = उसाँसें उभाड़ दीं। उसास = ऊँची साँस।

इस निर्दय (पावस-ऋतु) ने निराशा में मुझे पुनः होश दिला-कर प्रियतम की याद करा दी। ब्रह्मा ने फिर नई-नई उसाँसें उभाड़ दी हैं (अतः इस अवस्था में तो बेहोश ही रहना अच्छा था।)

घन-घेरा छुटिगौ हरषि चली चहूँ दिसि राह।
कियौ सुचैनौ आइ जगु सरद सूर नरनाह ॥५७९॥

अन्वय—घन घेरा छुटिगौ हरषि चहूँ दिसि राह चली, सरद सूर नरनाह आइ जग सुचैनौ कियौ।

घन = मेघ । घेरा = आक्रमणकारी सेना-मण्डल । सुचैनौ = खूब निश्चित । सूर = बली । नरनाह = नरनाथ, राजा ।

मेघों का घेरा छूट गया । प्रसन्न होकर (चारो ओर की राहें चलने लगीं) पथिक आने-जाने लगे । शरद-रूपी बली राजा ने आकर संसार को (उपद्रवों से) खूब निश्चित बना दिया । (वर्षा-ऋतु के उपद्रव शान्त हो गये !)

ज्यौं-ज्यौं बढ़ति बिभावरी त्यौं त्यौं बढ़त अनंत ।
ओक-ओक सब लोक सुख कोक-सोक हेमंत ॥५८०॥

अन्वय—ज्यौं-ज्यौं बिभावरी बढ़ति त्यौं-त्यौं हेमंत ओक-ओक सब लोक-सुख कोक सोक अनंत बढ़त ।

विभावरी = रात । अनन्त=जिसका अन्त न हो, अपार । ओक=घर । लोक=लोग, जन समुदाय । कोक = चकवा ।

ज्यों-ज्यों रात बढ़ती जाती है—रात बड़ी होती जाती है, त्यों-त्यों हेमन्त-ऋतु में घर-घर में सब लोगों का सुख और चकवा-चकई का दुःख बेहद बढ़ता जाता है ।

नोट—जाड़े की रात बड़ी होने से संयोगी तो सुख लूटते हैं, और चकवा-चकई के मिलने में बहुत देर होती है, जिससे वे दुखी होते हैं; क्योंकि रात में शापवश वे मिल नहीं सकते ।

कियौ सबै जगु काम-बस जीते जिते अजेइ ।
कुसुम-सरहिं सर-धनुष कर अगहनु गहन न देइ ॥

अन्वय—सबै जगु कामबस कियौ, जिते अजेइ जीते, अगहनु कुसुमसरहिं कर धनुष-सर न गहन देइ ।

जिते = जितने । अजेइ=न हारनेवाले, जो जीता न जा सके । कुसुम-सर = जिसका बाण फूल का हो, कामदेव । अगहनु=जाड़े का महीना;

अ + गहनु = पकड़ने न देनेवाला; जाड़े के मारे हाथ ऐसे ठिठुर जाते हैं कि कोई चीज पकड़े नहीं बनती—कामदेव भी धनुष-बाण नहीं सँभाल सकते। गहन = ग्रहण करना, धारण करना।

समूचे संसार को काम ने वशीभूत कर दिया। जितने अजेय थे, (सब को) जीत लिया! अगहन कामदेव को हाथ में धनुष और बाण नहीं धरने देता। (वह स्वयं सबको कामासक्त बना देता है!)

मिलि बिहरत बिछुरत मरत दम्पति अति रसलीन।
नूतन बिधि हेमंत-रितु जगतु जुराफा कीन ॥५८२॥

अन्वय—अति रसलीन दम्पति मिलि बिहरत बिछुरत, हेमन्त रितु नूतन बिधि जगतु जुराफा कीन।

बिहरत = विहार करते हैं। बिछुरत = बिछुरते ही, एक दूसरे से अलग होते ही। दम्पति = पति और पत्नी। जुराफा = अफ्रिका देश का एक जंतु, जो अपनी पत्नी से विछोह होते ही मर जाता है।

अत्यन्त रस (आनन्दोपभोग) में लीन दम्पति—प्रेम में पूरे पगे पति-पत्नी—हिलमिलकर विहार करते हैं और वियोग होते ही प्राण त्याग देते हैं। इस हेमन्त-ऋतु ने (अपनी) नवीन (शासन) व्यवस्था से सारे संसार को ही 'जुराफा' बना दिया। अथवा—हेमन्त-ऋतु-रूपी नवीन ब्रह्मा ने सारे संसार को जुराफा के रूप में बदल दिया—सृष्टि ही बदल दी।

आवत जात न जानियतु तेजहिं तजि सियरानु।
घरहँ-जँवाई लौं घट्यौ खरौ पूस दिन-मानु ॥५८३॥

अन्वय—आवत जात जानियतु न तेजहिं तजि सियरानु घरँह-जँवाई लौं पूस दिनमानु खरौ घट्यौ।

सियरानु = ठंढा पड़ गया है। धँरह-जँवाई = घर-जमाई, सदा ससुराल ही में रहनेवाला दामाद। लौं = समान। खरौ = अत्यन्त। मानु (१) लम्बाई (२) आदर।

आते-जाते जान नहीं पड़ता—कब आया और कब गया, यह नहीं जान पड़ता; तेज को तजकर (तेज-हीन होकर) ठंढा पड़ गया है—'घर-जमाई' के समान पूस के दिन का मान अत्यन्त घट गया है।

लगत सुभग सीतल किरन निसि सुख दिन अवगाहि।
माह ससी भ्रम सूर त्यौं रही चकोरी चाहि ॥५८४॥

अन्वय—माह ससी भ्रम चकोरी सूर त्यौं चाहि रही किरन सीतल सुभग लगत निसि-सुख दिन अवगाहि।

सुभग = सुन्दर। निसि-सुख = रात का सुख। अवगाहि = प्राप्त करना। माह = माघ। सूर = सूर्य। त्यौं = तरफ, ओर। चाहि = देखना।

माघ-महीने में चन्द्रमा के भ्रम से चकोरी सूर्य की ओर देख रही है; (क्योंकि) सूर्य की किरणें भी उसे शीतल और सुन्दर लगती हैं। (इस प्रकार) रात्रि का सुख वह दिन ही में प्राप्त कर रही है।

तपन-तेज तापन-तपति तूल तुलाई माँह।
सिसिर-सीतु क्यौंहुँ न कटैं बिनु लपटैं तिय नाँह ॥५८५॥

अन्वय—तिय नाँह लपटैं बिनु तपन-तेज तापन-तपति तूल-तुलाई माँह सिसिर-सीतु क्यौंहुँ न कटैं।

तपन = सूर्य। तेज = किरण, गर्मी। तापन-तपति = आग की गर्मी। तूल-तुलाई = रुईदार (खूब मुलायम) दुलाई। माँह = में। सिसिर सीतु = पूस-माघ की सर्दी। क्यौंहुँ = किसी प्रकार से भी। तिय = स्त्री। नाँह = पति।

स्त्री पति से लिपटे विना सूर्य की किरणों, आग की गर्मी, और रुईदार दुलाई से जाड़े की सर्दी किसी प्रकार भी नहीं मिटा सकती—(जाड़ा तो तभी दूर होगा जब प्यारे को छाती से लगाकर गरमायेगी।)

नोट—"ग्वाल कवि कहैं मृगमद के धुकाय धूम ओढ़ि-ओढ़ि छार भार आगहू छपी-सी जाइ। छाके सुरा-सीसी हू न सी-सी पैं मिटेगी कभू जोलौं उकसी-सी छाती-छाती सों न मीसी जाइ।"

रहि न सकी सब जगत मैं सिसिर-सीत कैं त्रास।
गरम भाजि गढ़वै भई तिय-कुच अचल मवास॥

अन्वय—सिसिर-सीत कैं त्रास गरम सब जगत मैं न रहि सकी, भाजि तिय-कुच अचल मवास गढ़वै भई।

त्रास = भय, डर। भाजि = भागकर। गढ़वै भई = किलेदारिन हो गई। अचल = दुर्गम, दृढ़। मवास = अलंघ्य स्थान, दुर्ग, किला।

शिशिर-ऋतु की सर्दी के डर से गर्मी सारे संसार में कहीं न रह सकी, (तो अन्त में) भागकर (वह) स्त्री के कुच-रूपी दुर्ग की किलेदारिन बन गई।

नोट—कविवर सेनापति कहते हैं कि सूर्य, अग्नि और रुई से अपनी रक्षा होते न देख गर्मी भागती हुई अन्त को—"पूस में तिया के ऊँचे कुच कनकाचल में गढ़वै गरम भई सीत सों लरति हैं।"

द्वैज सुधा-दीधिति कला वह लखि डीठि लगाइ।
मनौ अकास-अगस्तिया एकै कली लखाइ॥५४७॥

अन्वय—सुधा-दीधिति द्वैज-कला डीठि लगाइ वह लखि मनौं अकास अगस्तिया एकै कली लखाइ।

द्वैज = द्वितीया। सुधादीधिति = (अमृत-भरी किरणोंवाला) चन्द्रमा।

डीठि = दृष्टि। अगस्तिया = अगस्त्य-पुष्प का वृक्ष, जिसका फूल उज्ज्वल होता है।

द्वितीया के चन्द्रमा की कला को दृष्टि लगाकर (ध्यान से) वह देखो, मानो आकाश-रूपी अगस्त्य-पुष्प के वृक्ष में एक ही कली दीख पड़ती है।

धनि यह द्वैज जहाँ लख्यौ तज्यौ दृगनु दुखदन्दु।
तुम भागनु पूरब उयौ अहो अपूरबु चन्दु ॥५८८॥

अन्वय—यह द्वैज धनि जहाँ लख्यौ दृगनु दुख दन्दु तज्यौ, अहो अपूरबु चंदु तुम भागनु पूरब उयौ।

धनि = धन्य। जहाँ = जिसे। दुखदन्दु = दुःखद्वन्द = दुःखसमूह।

यह द्वितीया धन्य है, जिसे देखकर आँखों को दुःख समूह ने छोड़ दिया—जिसे देखते ही आँखों के दुःख दूर हो गये। अहा! यह अपूर्व चन्द्रमा तुम्हारे ही भाग्य से पूर्व-दिशा में उगा है।

नोट—द्वितीया के चन्द्रमा को देखने के लिये नायक अपने सखाओं के साथ कोठे पर चढ़ा। उधर उसकी प्रेमिका नायिका भी अपने कोठे पर आ गई। नायिका उसके पूरब की ओर थी। नायक-नायिका के परस्पर दर्शन के बाद एक सखा ने यह उक्ति कही।

जोन्ह नहीं यह तमु वहै किए जु जगत निकेत।
होत उदै ससि के भयौ मानहु ससहरि सेत ॥५८९॥

अन्वय—यह जोन्ह नहीं वहै तमु जु जगत निकेत किए, मानहु ससि के उदै होत ससहरि सेत भयौ।

जोन्ह = चाँदनी। तमु = अंधकार। निकेत = घर। ससि = चंद्रमा। ससहरि = सिहरकर, डरकर। सेत = श्वेत = उजला।

यह चाँदनी नहीं है, यह वही अंधकार है, जिसने संसार में

अपना घर कर लिया है, (तो फिर उजला क्यों है ?) मानों चन्द्रमा के उदय होते ही वह सिहरकर—भयभीत होकर—उजला (फीका) पड़ गया है।

नोट—भय से चेहरा सफेद (बदरंग) हो जाता है।

रनित भृंग-घंटावली झरित दान-मधुनीरु।
मंद-मंद आवतु चल्यौ कुंजरु-कुंज-समीरु ॥ ५९० ॥

अन्वय—भृंग-घंटावली रनित मधुनीर-दान झरित कुंज-समीरु-कुँजरु मंद-मंद चल्यौ आवतु।

रनित = रणित = बजते हुए। भृंग = भौंरे। घंटावली = घंटों की कतार, बहुत-से घंटे। दान = यौवन-मदान्ध हाथी की कनपटी फोड़कर चूने वाला रस या मद। मधुनीरु = मकरंद। कुंजरु = हाथी। कुंजसमीरु = कुंज की हवा, कुंजों से होकर बहनेवाली वायु जो छाया और पुष्प के संसर्ग से ठंढी और सुगन्धित भी होती है।

भौंरे-रूपी घंटे बज रहे हैं और मकरन्द-रूपी गज-मद झर रहा है। कुंज-समीर-रूपी हाथी मंद मंद चला आ रहा है।

नोट—यह त्रिविध समीर का अतीव सुन्दर वर्णन है।

रही रुकी क्यौं हूँ सु चलि आधिक राति पधारि।
हरति तापु सब द्यौस कौ उर लगि यारि बयारि ॥५९१॥

अन्वय—रुकी रही सु क्यौंहूँ चलि आधिक राति पधारि यारि बयारि उर लगि द्यौस कौ सब तापु हरति।

पधारि = आकर। ताप = ज्वाला। द्यौस = दिन। यारि = प्रियतमा।

(अन्य समय तो) रुकी रही, (किन्तु) किसी प्रकार भी—किसी छल-बल से—चलकर, आधी रात को पधारकर, वह प्रियतमा रूपी (ग्रीष्म-काल की) हवा, हृदय से लगकर, दिन-भर

के सब तापों को दूर करती है—(जिस प्रकार गुप्त प्रेमिका अन्य समय तो किसी प्रकार रुकी रहती है, पर आधी रात होते ही चुपचाप चली आती और हृदय के तापों का नाश करती है, उसी प्रकार ग्रीष्म की हवा भी रुकती, आती और आधी रात में छाती ठंढी करती है।)

चुवतु सेद-मकरंद-कन तरु-तरु-तर बिरमाइ।
आवतु दच्छिन-देस तैं थक्यौ बटोही-बाइ ॥५६२॥

अन्वय—मकरंद-कन-सेद चुवतु तरु-तरु-तर बिरमाइ दच्छिन-देस तैं बाइ थक्यौ बटोही आवत।

सेद=स्वेद, पसीना। कन=बूँद। तरु=वृक्ष। तर=नीचे। बिरमाइ=विलमता है या विराम लेता है, ठहरता है। बाइ=वायु, पवन।

मकरन्द की बूँद-रूपी पसीने चूते हैं, और (सुस्ताने के लिये) प्रत्येक वृक्ष के नीचे ठहरता है। (इस प्रकार) दक्षिण-दिशा से (वसन्त-काल का) पवन-रूपी थका हुआ बटोही चला आता है।

नोट—यह भी त्रिविध समीर का उत्कृष्ट वर्ण है—'मकरंद-कन, 'तरु-तरु-तर' और 'दच्छिन-देस तैं थक्यौ' से क्रमशः 'सुगंध, शीतल और मंद' का भाव बोध होता है। वसन्त-काल की हवा मयः दक्षिण की ओर से बहती भी है। मैथिल-कोकिल विद्यापति कहते हैं—"सरस वसंत समय भल पावलि दखिन-पवन बहु धीरे। सपनहु रूप वचन यक भाषिय मुख ते दूरि करु चीरे।"

लपटी पुहुप-पराग-पट सनी सेद-मकरंद।
आवति नारि-नवोढ़ लौं सुखद बायु गति-मन्द ॥५६३॥

अन्वय—पुहुप-पराग-पट लपटी मकरंद-सेद-सनी नवोढ़ नारि लौं सुखद बायु मंद गति आवति।

पुहुप = फूल । पराग = फूल की धूल । पट = वस्त्र । सेद = स्वेद= पसीना । मकरंद = फूल का रस । नवोढ़ नारि = नवयौवना स्त्री, जो यौवन-मद-मत्त या स्तन-भार-नम्र होकर इठलाती (मन्द-मन्द) चलती है । लौं= समान । वायु = हवा ।

फूलों के पराग-रूपी वस्त्र से लिपटी हुई (आच्छादित), और मकरंद-रूपी पसीने से सनी हुई (लिप्त), नवयुवती स्त्री के समान, सुख देनेवाली वायु मंद-मंद गति से आ रही है ।

रुक्यौ साँकरैं कुंज-मग करतु झाँझि झकुरातु ।
मंद-मंद मारुत-तुरँगु खूँदतु आवतु जातु ॥५६४॥

अन्वय—मारुत-तुरँगु कुंज साँकरैं मग रुक्यौ झाँझि करतु झकुरातु मंद-मंद खूँदतु आवतु जातु ।

साँकरैं = तंग । कुंज-मग = कुंज के रास्ते । करत झाँझि=हिनहिनाता हुआ । झकुरातु = झोंके (वेग) से चलता हुआ । मारुत-तुरँगु = पवन-रूपी घोड़ा । खूँदतु = खुँदी (जमैती) करता हुआ ।

पवन-रूपी घोड़ा कुंज के तंग रास्ते में रुकता, हिनहिनाता (शब्द करता) और झोंके से आता हुआ, तथा मंद-मंद गति से जमैती करता (ठुमुक चाल चलता) हुआ, आता और जाता है ।

कहति न देवर की कुबत कुलतिय कलह डराति ।
पंजर-गत मंजार ढिग सुक लौं सूकति जाति ॥५६५॥

अन्वय—देवर की कुबत कहति न कुलतिय कलह डराति, मंजार ढिग पंजरगत सुक लौं सूकति जाति !

कुबत = खराब बात, शरारत, छेड़छाड़ । पंजर-गत=पिंजड़े में बन्द । मंजार = मार्जार=बिल्ली । सुक=शुक=सुग्गा, तोता ।

(अपने पर आसक्त हुए) देवर की शरारत किसीसे कहती

नहीं है, (क्योंकि) कुलवधू (होने के कारण) झगड़े से डरती है—(बात प्रकट होते ही घर में कलह मचेगा, इस डर से वह देवर की छेड़खानियों की चर्चा नहीं करती)। बिल्ली के पास रक्खे हुए पिंजड़े में बन्द सुग्गे के समान (इस अप्रतिष्ठा के दुःख से वह) सूखती जाती है।

नोट—यहाँ स्त्री सुग्गा है, कलह का डर पिंजड़ा है, और देवर (पति का छोटा भाई) बिल्ली है। ऊपर से सतीत्व-रक्षा की चिंता भी है।

पहुला हारु हियैं लसै सन की बेंदी भाल।
राखति खेत खरे-खरे खरे उरोजनु बाल ॥५९६॥

अन्वय—पहुला-हारु हियैं लसै सन की बेंदी भाल, खरे उरोजनु बाल खरे खरे खेत राखति।

पहुला = प्रफुला = कुँईं, कुमुद, काँच के छोटे छोटे दाने। लसै = शोभता है। सन = सनई, जिसके फूल की टिकुली देहाती स्त्रियाँ पहनती हैं। खरे-खरे = खड़ी-खड़ी। खरे = खड़े (तने) या ऊँचे उठे हुए। उरोजनु = कुचों (स्तनों) से।

कुमुद की माला हृदय में शोभ रही है, और सन के फूल की बेंदी ललाट पर। (इस प्रकार) तने हुए स्तनों वाली वह युवती खड़ी-खड़ी (अपने) खेत की रखवाली कर रही है।

नोट—पीनस्तनी ग्रामीण नायिका का वर्णन है। नीचे के दो दोहों में भी ग्रामीण नायिका का ही वर्णन मिलेगा।

गोरी गदकारी परैं हँसत कपोलनु गाड़।
कैसी लसति गँवारि यह सुनकिरवा की आड़ ॥५९७॥

अन्वय—गोरी गदकारी हँसत कपोलनु गाड़ परैं, सुनकिरवा की आड़ यह गँवारि कैसी लसति।

गदकारी = गुलथुल, जिसके शरीर पर इतना मांस गठा हुआ हो कि

देह गुलगुल जान पड़े। हँसत = हँसते समय। कपोलनु = गालों पर। गाड़ = गढ़ा। लसति = शोभती है। सुनकिरवा = स्वर्णकीट=एक प्रकार का सुनहला कीड़ा, जिसके पंख बड़े चमकीले होते हैं, जिन्हें (कहीं टूटा पड़ा पाकर) ग्रामीण युवतियाँ टिकुली की तरह साटती हैं। आड़ = लम्बा टीका।

गोरी है, गुलथुल है, (फलतः) हँसते समय उसके गालों में गढ़े पड़ जाते हैं। सुनकिरवा के पंख का टीका लगाये यह देहाती युवती कैसी अच्छी लगती है?

गदराने तन गोरटी ऐपन आड़ लिलार।
हूठ्यौ दै इठलाइ दृग करै गँवारि सु मार ॥५९८॥

अन्वय—गोरटी तन गदराने लिलार ऐपन आड़ हूठ्यौ दै दृग इठलाइ गँवारि सु मार करै।

गदराने = गदराये (खिले) हुए, जवानी से चिकनाये हुए। गोरटी= गोरी, गौरवर्णा। ऐपन = चावल और हल्दी एक साथ पीसकर उससे बनाया हुआ लेप। आड़=टीका। लिलार = ललाट। हूठ्यौ दै = गँवारपन दिखलाकर। सु मार=अच्छी मार, गहरी चोट।

गोरे शरीर में जवानी उमड़ आई है। ललाट में ऐपन का टीका लगा है। गँवारपन दिखलाकर आँखों को नचाती हुई—वह ग्रामीण युवती अच्छी चोट करती है—(दर्शकों को खूब घायल करती है!)

सुनि पग-धुनि चितई इतै न्हाति दियैंई पीठि।
चकी झुकी सकुची डरी हँसी लजीली डीठि ॥५९९॥

अन्वय—पीठि दियैंई न्हाति पग-धुनि सुनि इतै चितई, चकी, झुकी, सकुची, डरी, लजीली डीठि हँसी।

पग धुनि = पैर की आवाज, आहट। चितई इतै = इधर देखा। पीठि दियैंई न्हाति=पीठ की आड़ देकर नहा रही थी। चकी=चकित होना। लजौली डीठि=सलज्ज दृष्टि।

(उस ओर) पीठ करके ही नहा रही थी कि (प्रीतम के) पैर की धमक सुनकर (मुँह फेरकर) इधर (पीठ की ओर) देखा, और (प्रीतम को) देखकर चकित हुई, झुक गई, लजा गई, डर गई और लजीली नजरों से हँस पड़ी।

नोट—स्नान करते समय नायिका अपने को अकेली जान स्वच्छंदता से कुच आदि अंगों को खोलकर खूब मल-मल नहा रही थी। तब तक नायक पहुँच गया। उसी समय का चित्र है।

नहिं अन्हाइ नहिं जाइ घर चित चिहुँट्यौ तकि तीर।
परसि फुरहरी लै फिरति बिहँसति धँसति न नीर॥

अन्वय—नहिं अन्हाइ नहिं घर जाइ तीर तकि चित चिहुँट्यौ नीर परसि फुरहरी लै फिरति बिहँसति न धँसति।

अन्हाइ = स्नान कर। चित चिहुँट्यौ = मन प्रेमासक्त हो गया। तीर = यमुना तट। परसि = स्पर्श कर। फुरहरी लै = फुरहरी लेना, मुख से पानी लेकर फव्वारा छोड़ना। धँसति = पैठती है। नीर = पानी।

न स्नान करती है, न घर जाती है, (श्यामला यमुना के) तट को देखकर (श्यामसुन्दर की याद में उसका) चित्त प्रेमासक्त हो गया है। अतएव, जल को स्पर्श कर, फुरहरी लेकर लौट आती है, और मुस्कुराती है, किन्तु पैठती नहीं है (कि कहीं इस श्यामल जल में श्रीकृष्ण न छिपे हों, वरना खूब छकूँगी !)

सप्तम शतक

मुँह पखारि मुँड़हरु भिजै सीस सजल कर छाइ।
मौरि उचै घूँटैनु तैं नारि सरोवर न्हाइ ॥६०१॥

अन्वय—मुँह पखारि मुँड़हरु भिजै सीस सजल कर छाइ, मौरि उचै घूँटैनु तैं नारि सरोवर न्हाइ।

मुँड़हरु = सिर का अगला भाग, ललाट। सजल=जलयुक्त, जलपूर्ण। मौरि = मौलि = मस्तक। उचै = ऊँचा उठाकर। घूँटैनु तैं = घटनों से। न्हाइ=स्नान करती है।

मुख धोकर, ललाट भिगोकर, और सिर से जलयुक्त हाथों को छुलाकर (बालों पर जल डालकर), सिर ऊँचा किये और घुटनों के बल से, वह स्त्री पोखरे में स्नान कर रही है।

बिहँसति सकुचति-सी दिएँ कुच आँचर बिच बाँह।
भीजैं पट तट कौं चली न्हाइ सरोवर माँह ॥६०२॥

अन्वय—सरोवर माँह न्हाइ बिहँसति सकुचति-सी, बाँह कुच आँचर बिच दिएँ भीजैं पट तट कौं चली।

कुच = स्तन। बाँह = बाँह, हाथ। पट = कपड़ा। तट = किनारा। न्हाइ = स्नानकर। सरोवर=पोखरा।

सरोवर में स्नान कर मुस्कुराती और सकुचाती हुई-सी अपने हाथों को कुचों और अंचल के बीच में दिये हुए गीले कपड़े पहने ही तट की ओर चली।

नोट—"कुँच आँचर बिच बाँह" में स्वाभाविकता और रस-मर्मज्ञता खूब है। सहृदयता से पूछिये कि कहीं किसी घाट पर परखा है!

मुँह धोवति एँड़ी घसति हँसति अनगवति तीर।
धसति न इन्दीबर-नयनि कालिंदी कै नीर ॥६०३॥

अन्वय—तीर मुँह धोवति एँडी घसति हँसति अनगवति इन्दीबर-नयनि कालिन्दी कैं नीर न धसति।

अनगवति = जानबूझकर देर करती है। इन्दीबर = नील कमल। इन्दीवरनयनि = कमलनयनी। कालिन्दी = यमुना।

(वह कामिनी) घाट ही पर (श्रीकृष्ण को देखकर) मुँह धोती, एँड़ी घिसती, हँसती और जानबूझ कर (न्हाने में) विलंब करती है; (किन्तु) वह कमल-लोचना, यमुना के पानी में, नहीं पैठती।

न्हाइ पहिरि पटु डटि कियौ बेंदी मिसि परनामु।
दृग चलाइ घर कौं चली बिदा किए घनस्यामु ॥६०४॥

अन्वय—न्हाइ पट पहिरि डटि बेंदी मिसि परनामु कियौ, दृग चलाइ घनस्यामु बिदा किए घर कौं चली।

पट = वस्त्र। मिसि = बहाना। दृग चलाइ = आँखों के इशारे कर।

स्नान कर, कपड़ा पहन, सज्जित हो, बेंदी लगाने के बहाने प्रणाम किया—बेंदी लगाते समय मस्तक से हाथ छुलाकर इशारे से प्रणाम किया। फिर, आँखों के इशारे से श्रीकृष्ण को बिदा कर स्वयं भी घर को चली।

चितवत जितवत हित हियैं कियैं तिरीछे नैन।
भीजैं तन दोऊ कँपैं क्यौं हूँ जप निबरैं न ॥६०५॥

अन्वय—नैन तिरीछे कियैं चितवत, हियैं हित जितवत, भीजैं तन दोऊ कँपैं जप क्यौंहूँ निबरैं न।

चितवत = देखते हैं। जितवत = जिताते हैं। निबरैं न = नहीं (निवृत्त) समाप्त होता या निबटता।

आँखें तिरछी किये (एक दूसरे को) देखते हैं, और (अपने-अपने) हृदय के प्रेम को जिताते हैं—अपने-अपने प्रेम को उत्कृष्ट (विजेता) प्रमाणित करते हैं। (यों) भीगे हुए शरीर से दोनों काँप रहे हैं, (किन्तु उन दोनों का) जप किसी प्रकार समाप्त नहीं होता।

नोट—नायक और नायिका (दोनों) स्नान के बाद जप करते हुए ही एक दूसरे को देख रहे हैं। दोनों ही जान-बूझकर जप करने में देर कर रहे हैं। दर्शन-लालसा के आगे सर्दी की कँपकँपी क्या चीज है।

दृग थिरकौंहैं अधखुले देह थकौंहैं ढार।
सुरति-सुखित-सी देखियतु दुखित गरभ कैं भार ॥६०६॥

अन्वय—अधखुले दृग थिरकौंहैं देह थकौंहैं ढार गरभ कैं भार दुखित सुरति-सुखित-सी देखियतु।

दृग = आँखें। थिरकौंहैं = थिरकते हुए-से, बहुत धीरे-धीरे नाचते हुए-से। थकौंहैं ढार=थके हुए के ढंग के, थके हुए से। सुरति-सुखित-सी= तुरत समागम करके प्रसन्न हुई-सी। गरभ = गर्भ।

अधखुले नेत्र थिरकते-से हैं—मन्द-मन्द गति से इधर-उधर होते हैं—और शरीर थका हुआ-सा है। गर्भ के बोझ से दुःखित (वह नायिका) समागम करके प्रसन्न हुई-सी दीख पड़ती है। (लक्षणों से भ्रम होता है कि वह गर्भ के भार से दुःखित नहीं है, क्योंकि समागम-जनित चिह्न प्रत्यक्ष हैं)।

नोट—गर्भवती नायिका का वर्णन—आँखों की मन्द (आलस भरी) गति, उनका आधा खुला रहना (झपकी सी लेना) और देह थकी-सी मालूम पड़ना। ये लक्षण वास्तव में गर्भ और समागम (दोनों) के सूचक हैं।

ज्यौं कर त्यौं चुहुँटी चले ज्यौं चुहुँटी त्यौं नारि।
छबि सौं गति-सी लै चलै चातुर कातनिहारि ॥६०७॥

अन्वय—ज्यौं कर त्यौं चुहुँटी चले ज्यौं चुहुँटी त्यौं नारि, चातुर कातनिहारि छबिसौं गति-सी लै चलै।

कर = हाथ। चुहुँटी = चुटकी। नारि = गर्दन। गति-सी लै चलै = गति-सी लेकर चलती है, नृत्य-सी कर रही है।

जिस प्रकार हाथ चलता है, उसी प्रकार चुटकी भी चलती है। और, जिस प्रकार चुटकी चलती है, उसी प्रकार गर्दन भी चलती है—इधर-उधर हिलती है। यह चतुर चरखा कातनेवाली अपनी इस शोभा से (मानों नृत्य की) गति-सी ले रही है।

अहे दहेंड़ी जिन धरै जिनि तूँ लेहि उतारि।
नीकै हैं छीके छवै ऐसी ही रहि नारि ॥६०८॥

अन्वय—अहे तूँ जिन दहेंडी धरै जिनि उतारि लेहि नारि नीकै हैं ऐसी ही छीके छवै रहि।

अहे = अरी। दहेंड़ी = दही की मटकी। छीके = सींका, मटकी रखने के लिये बना हुआ सिकहर, जिसे छत या छप्पर में लटकाते हैं।

अरी! तू न तो मटकी को (सींके पर) रख, न उसे नीचे उतार। हे सुन्दरी! (तेरी यह अदा) बड़ी अच्छी लगती है—तू इसी प्रकार सींके को छूती हुई खड़ी रह।

नोट—सुन्दरी युवती खड़ी होकर और ऊपर बाँहें उठाकर ऊँचे सींके पर दहेंड़ी रख रही है। खड़ी होने से उसका अंचल कुछ खिसक पड़ा और बाँहें ऊपर उठाने से कुच की कोर निकल पड़ी। रसिक नायक उसकी इस अदा पर मुग्ध होकर कह रहा है कि इसी सूरत से खड़ी रह—इत्यादि। इस सरस भाव के समझदार की मौत है। चतुर्थ शतक का ३६२वाँ दोहा देखिये।

देवर फूल हने जु सु सु उठे हरषि अँग फूलि।
हँसी करति औषधि सखिनु देह-ददोरनु भूलि ॥६०९॥

अन्वय—देवर जु फूल हने सुसु अँग हरषि फूलि उठे सखिनु भूलि देह ददोरन औषधि हँसी करति।

हने = मारना। देह ददोरन = देह में पड़े हुए चोट के चकत्ते।

देवर ने जिन-जिन अंगों में फूल से मारा, सो (उस फूल के लगते ही भौजाई के) वह-वह अंग आनन्द से फूल उठे, (क्योंकि देवर से उसका गुप्त 'प्रेम' था) किन्तु सखियाँ भूल से (उस सूजन अथवा पुलक को) देह के दोदरे समझकर दवा करने लगीं। (यह देख भावज) हँस पड़ी (कि सखियाँ भी कैसी मूर्ख हैं जो मेरे प्रेम से फूले हुए अंग को फूल की चोट के ददोरे समझ रही हैं !)

चलत जु तिय हिय पिय दई नख रेखानु खरौंट।
सूकन देत न सरसई खोंटि खोंटि खत खौंट ॥६१०॥

अन्वय—चलत जु तियहिय पिय नख रेखानु खरौंट दई खत खौंट खोंटि खोंटि सरसई सूकन न देत।

नख रेखानु = नहँ की छिछोर से बनी रेखाएँ। खरौंट = खरोंच, छिछोर, चमड़ा छिल जाने से बना हुआ घाव। सरसई = ताजगी, गीलापन। खत = घाव। खौंट = खोंटी, घाव के ऊपर का सूखा हुआ भाग।

चलते समय में जो प्रिया की छाती में प्रीतम ने नखक्षत की रेखा दे दी—चलते समय प्रीतम द्वारा मर्दित किये जाने पर प्रिया के कुचों में जो नहँ की छिछोर लग गई—सो उस घाव की खोंटी को (वह नायिका) खोंट-खोंटकर उसकी सरसता सूखने नहीं देती—घाव को सदा ताजा (हरा) बनाये रखती है (ताकि इससे भी प्रीतम सदा याद रहें।)

पाखौ सोरु सुहाग कौ इनु बिनु हीं पिय-नेह।
उनदौहीं अँखियाँ ककै कै अलसौंहीं देह ॥६११॥

अन्वय—उनदौंहीं अँखियाँ कै अलसौंहीं देह ककै इनु बिनु ही पिय नेह सुहाग कौ सोरु पाख्यौ।

सोरु पाख्यौ = शोर या शुहरत मचा दी है, ख्याति फैला दी है। सुहाग = सौभाग्य। बिनु ही पिय नेह = पति-प्रेम के विना ही। उनदौंहीं = उनींदी, ऊँघती हुई। ककै = करके। कै = या। अलसौंहीं = अलसाई हुई।

ऊँघी हुई आँखें या अलसाई हुई देह बना-बनाकर इस स्त्री ने विना प्रियतम के प्रेम के ही अपने सुहाग की ख्याति फैला दी है।

नोट—सखी नायिका से कह रही है कि यद्यपि तुम्हारा प्रीतम तुम्हारी सौत पर अनुरक्त नहीं, तो भी वह उनींदी आँखें, अलसाई देह आदि चेष्टाएँ दिखाकर जनाती है कि सदा नायक के साथ रति-क्रीड़ा में जगी रहती है।

बहु धन लै अहसानु कै पारो देत सराहि।
बैद-बधू हँसि भेद सौं रही नाह-मुँह चाहि ॥६१२॥

अन्वय—बहु धन लै अहसानु कै पारो सराहि देत बैद-बधू भेद सौं हँसि नाह मुँह चाहि रही।

अहसानु कै = अपनी मिहरबानी या उपकार जताकर। पारो = पारे की भस्म, कामोद्दीपक रसायन। भेद सौं = मर्म के साथ, रहस्यपूर्ण। नाह = पति। चाहि = देखना।

बहुत धन लेकर, बड़े अहसान के साथ, खूब सराहकर पारा देता है (कि इसके खाते ही तुम्हारा नपुंसकत्व दूर हो जायगा।) यह देख वैद्यजी की स्त्री रहस्य भरी हँसी हँसकर अपने (नपुंसक) पति (वैद्यजी) का मुख देखने लगी (कि आप तो स्वयं नपुंसक

हैं, फिर यही दवा खाकर आप क्यों नहीं पुंसत्व प्राप्त करते ? लोगों को व्यर्थ क्यों ठग रहे हैं !) ।

ऊँचै चितै सराहियतु गिरह कबूतरु लेतु ।
झलकित दृग मुलकित बदनु तनु पुलकित किहिं हेतु ॥६१३॥

अन्वय—ऊँचै चितै गिरह लेतु कबूतरु सराहियतु, किहिं हेतु दृग झलकित बदन मुलकित तन पुलकित ।

ऊँचे = ऊपर की ओर । चितै = देखकर । मुलकित = हँसती है । पुलकित = रोमांचित होती है ।

ऊपर की ओर देखकर गिरह मारते हुए कबूतर को सराह रही हो । किन्तु किसलिये तुम्हारी आँखें चमक रही हैं, मुख हँस रहा है और शरीर रोमांचित हो रहा है । (निस्संदेह तुम उस कबूतर के मालिक छैल-छबीले विलासी पर आसक्त हो, तभी तो उसके गिरहबाज कबूतर को देखते ही उसकी याद में तुम ऐसी चेष्टाएँ दिखा रही हो !)

कारे बरन डरावने कत आवत इहिं गेह ।
कै वा लखी सखी लखैं लगै थरहरी देह ॥६१४॥

अन्वय—कारे बरन डरावने इहिं गेह कत आवत कै वा लखी सखी लखैं देह थरहरी लगै ।

बरन=रंग । कत = क्यों । गेह = घर । कै = कई बार । लखी = देखा । थरहरी लगै=थरथरी या कँपकँपी होती है ।

(यह) काले रंग का डरावना मनुष्य (श्रीकृष्ण) इस घर में क्यों आता है ? मैं इसे कई बार देख चुकी हूँ, और हे सखी, इसे देखते ही मेरी देह में थरथरी लग जाती है—मैं डर से थरथर काँपने लगती हूँ !

और सबै हरषी हँसति गावति भरी उछाह।
तुहीं बहू बिलखी फिरै क्यौं देवर कैं ब्याह ॥६१५॥

अन्वय—और सबै हरषी हँसति उछाह-भरी गावति देवर कैं ब्याह बहू तुहीं क्यौं बिलखी फिरै।

उछाह = उत्साह। बिलखी = व्याकुल।

और सब स्त्रियाँ तो प्रसन्न हुई हँसती हैं और उत्साह में भरी गीत गा रही हैं। किन्तु देवर के ब्याह में, हे बहू! तुहीं क्यों व्याकुल हुई फिरती हो?

नोट—देवर पर भौजाई अनुरक्त है। अब यह सोचकर, कि देवरानी के आते ही मुझपर देवर का ध्यान न रहेगा, वह व्याकुल है।

रबि बंदौं कर जोरि ए सुनत स्याम के बैन।
भए हँसौंहैं सबनु के अति अनखौंहैं नैन ॥६१६॥

अन्वय—कर जोरि रबि बंदौं ए स्याम के बैन सुनत सबनु के अति अनखौंहैं नैन हँसौंहैं भए।

बंदौं = प्रणाम करो। हँसौंहैं = हास्यपूर्ण। अनखौंहैं = क्रुद्ध।

हाथ जोड़कर सूर्य को प्रणाम करो—यह श्रीकृष्ण का वचन सुनकर (चीर-हरण होने के कारण नग्न बनी हुई) सभी गोपियों की अत्यन्त क्रोधित आँखें भी हँसीली बन गईं (कि इनकी चतुराई तो देखो, इन हाथों से ढकी हुई रही-सही लज्जा भी ये लूटना चाहते हैं!)

तंत्री-नाद कबित्त-रस सरस राग रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े तरे जे बूड़े सब अंग ॥६१७॥

अन्वय—तन्त्री-नाद कबित्त-रस सरस राग रतिरंग अनबूड़े बूड़े जे सब अंग बूड़े तरे।

तंत्री-नाद = वीणा की झंकार । रति-रंग = प्रेम का रंग । अनबूड़े= जो नहीं डूबे । तरे = तर गये, पार हो गये ।

वीणा की झंकार, कविता का रस, सरस गाना और प्रेम (अथवा रति-क्रीड़ा) के रंग में जो नहीं डूबा—तल्लीन नहीं हुआ (समझो कि) वही डूब गया—अपना जीवन नष्ट किया; और जो उसमें सर्वांग डूब गया—एकदम गर्क हो गया, (समझो कि) वही तर गया—पार हो गया—इस जीवन का यथार्थ फल पा गया।

गिरि तैं ऊंचे रसिक-मन बूड़े जहाँ हजारु।
वहै सदा पसु नरनु कौं प्रेम-पयोधि पगारु ॥६१८॥

अन्वय—गिरि तैं ऊँचे रसिक मन जहाँ हजारु बूड़े, वहै प्रेम-पयोधि नरन-पसु कौ सदा पगारु।

पयोधि = समुद्र । पगारु = एकदम छिछला, पायान ।

पर्वत से भी ऊँचे रसिकों के मन जहाँ हजारों डूब गये, वही प्रेम का समुद्र नर-पशुओं के लिये सदा छिछला ही रहता है—(इतना छिछला रहता है कि उसमें उनके पैर भी नहीं डूबते !)

चटक न छाँड़तु घटत हूँ सज्जन नेहु गँभीरु।
फीकौ परै न बरु फटै रँग्यौ चोल-रँग चीरु ॥६१९॥

अन्वय—सज्जन गँभीर नेहु घटतहूँ चटक न छाँड़तु चोल-रँग-रँग्यौ चीरु फटै बरु फीकौ न परै।

चटक = चटकीलापन । सज्जन = सदाचारी, सहृदय । बरु=भले ही । चोल = मजीठ । चीर = वस्त्र ।

सज्जनों का गम्भीर प्रेम घटने पर भी अपनी चटक नहीं छोड़ता—कम हो जाने पर भी उसकी मधुरिमा नष्ट नहीं होती।

जिस प्रकार मँजीठ के रंग में रँगा हुआ वस्त्र फट भले ही जाय, किन्तु फीका नहीं पड़ता।

सम्पति केस सुदेस नर नवत दुहुनि इक बानि।
बिभव सतर कुच नीच नर नरम बिभव की हानि ६२०॥

अन्वय—सम्पति केस सुदेस नर नवत दुहुनि इक बानि, कुच नीच नर बिभव सतर बिभव की हानि नरम।

सम्पति = धन, वृद्धि, ऐश्वर्य। सुदेस नर = सज्जन पुरुष, भलामानस। बानि = आदत। बिभव = विभव = धन, यौवन। सतर = ऐंठ।

ऐश्वर्य पाकर—बढ़ने पर—केश और सज्जन पुरुष नरम पड़ जाते हैं, इन दोनों की एक आदत है। कुच और नीच आदमी विभव पाकर ऐंठने लगते हैं, और विभव की हानि होते ही नरम हो जाते हैं।

न ए बिससियहि लखि नए दुर्जन दुसह सुभाइ।
आँटैं परि प्राननु हरैं काँटैं लौं लगि पाइ॥६२१॥

अन्वय—ए दुसह सुभाइ दुर्जन नए लखि बिससियहि न, आँटैं परि काँटे लौं पाइ लगि प्राननु हरैं।

बिससियहि = विश्वास कीजिये। नए = नम्र बने हुए। आँटैं परि = दाँव लगने पर, घात पाने पर। पाइ = पैर।

इन दुःसह स्वभाव वाले दुर्जनों को नम्र होते देखकर विश्वास न कीजिये। घात लगने पर ये काँटे के समान पैर में लगकर प्राण ही ले लेते हैं।

नोट—नवनि नीच कै अति दुखदाई।
जिमि अंकुस, धनु, उरग, बिलाई॥—तुलसीदास

जेती सम्पति कृपन कैं तेती सूमति जोर।
बढ़त जात ज्यौं-ज्यौं उरज त्यौं-त्यौं होत कठोर ॥६२२॥

अन्वय—कृपन कैं सम्पति जेती तेती सूमति जोर, उरज ज्यौं-ज्यौं बढ़त जात त्यौं-त्यौं कठोर होत।

कृपन = सूम, शठ। सूमति = सूमड़ापन, शठता। उरज = कुच।

सूमड़े आदमी का धन जितना ही बढ़ता है, उतनी ही उसकी शठता भी जोर पकड़ती जाती है। (जिस प्रकार नवयौवना के) कुच ज्यों-ज्यों बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों कठोर होते जाते हैं।

नीच हियैं हुलसे रहैं गहे गेंद के पोत।
ज्यौं-ज्यौं माथै मारियत त्यौं-त्यौं ऊँचे होत ॥६२३॥

अन्वय—गेंद के पोत गहे नीच हियैं हुलसे रहैं, ज्यौं-ज्यौं माथै मारियत त्यौं-त्यौं ऊँचे होत।

हियैं = हृदय। हुलसे रहैं = हुलास से भरा रहता है, उत्साह से भरा हुआ। पोत = ढंग, स्वभाव।

गेंद का ढंग पकड़े हुए नीच आदमी का हृदय (अपमानित किये जाने पर भी) सदा हुलास से भरा ही रहता है। (जिस प्रकार गेंद को) ज्यों-ज्यों माथे में मारिये, त्यों-त्यों वह ऊँची ही होती है।

नोट—कमीना सीनः डट फुटबाल के फैशन पे चलता है।
जो सिर पर लात मारे और ऊपर को उछलता है॥—प्रीतम

कैसैं छोट नरनु तैं सरत बड़नु के काम।
मढ़्यौ दमामौ जातु क्यौं कहि चूहे कैं चाम ॥६२४॥

अन्वय—छोटे नरनु तैं बड़नु के काम कैसैं सरत। कहि चूहे कैं चाम दमामौ क्यौं मढ़्यौ जातु?

छोटे नरनु = क्षुद्र मनुष्यों से। सरत = सिद्ध या पूरा होता है। दमामौ = नगाड़ा। चाम = चमड़ा।

ओछे आदमियों से—छुटहों से—बड़े आदमी का काम कैसे सध सकता है—कभी पूरा नहीं होता। कहो, चूहे के चाम से नगाड़ा कैसे मढ़ा (छवाया) जा सकता है ? कभी नहीं !

कोरि जतन कोऊ करौ परै न प्रकृतिहिं बीचु।
नल बल जलु ऊँचैं चढ़ै अंत नीच कौ नीचु ॥६२५॥

अन्वय—कोरि जतन कोऊ करौ प्रकृतिहिं बीच न परै, नल-बल जलु ऊँचैं चढ़ै अंत नीच नीच कौ।

करोड़ों यत्न कोई क्यों न करे, किन्तु स्वभाव में फर्क नहीं पड़ता—स्वभाव नहीं बदलता। नल के जोर से पानी ऊपर चढ़ता है, पर अंत में वह नीच नीचे ही को बढ़ता है। (पानी का स्वाभाविक प्रवाह जब होगा, तब नीचे ही की ओर)।

लटुवा लौं प्रभु कर गहैं निगुनी गुन लपटाइ।
वहै गुनी कर तैं छुटै निगुनीयै ह्वै जाइ ॥६२६॥

अन्वय—प्रभु कर गहैं लटुवा लौं निगुनी गुन लपटाइ, वहै गुनी कर तैं छुटै निगुनीयै ह्वै जाइ।

लटुवा = लट्टू। लौं = समान। गुन = (१) गुण (२) रस्सी, डोरा। गुनी = (१) गुणयुक्त (२) डोरा-युक्त। निगुनी = (१) गुण-रहित (२) डोरा-रहित। यै = ही।

प्रभु के हाथ पकड़ते ही—अपनाते ही—लट्टू के समान गुणहीन में भी 'गुण' ('लट्टू' के अर्थ में 'डोरा') लिपट जाता है, किन्तु वही गुणी उनके हाथ से छूटते ही—ईश्वर से विमुख

होते ही—पुनः गुण-हीन का गुण-हीन ही ('लट्टू' के अर्थ में 'डोरा' रहित) रह जाता है।

चलत पाइ निगुनी गुनी धनु मनि मुत्तिय माल।
भेंट होत जयसाहि सौं भागु चाहियतु भाल ॥६२७॥

अन्वय—निगुनी गुनी धन मनि मुत्तिय-माल पाइ चलत जयसाहि-सौं भेंट होत भागु भाल चाहियतु।

पाइ = पाकर। मुत्तिय = मुक्ता, मोती। जयसाहि = बिहारीलाल के आश्रयदाता जयपुर-नरेश महाराज जयसिंह। भाल = अच्छा, कपाल।

निगुणी और गुणी—सभी—वहाँ से धन, मणि और मुक्ता की माला पाकर चलते हैं। हाँ, जयसिंह से भेंट होने के लिये भाग्य अच्छा होना चाहिये। (उनसे भेंट ही होना कठिन है, यदि भेंट हो गई, तो फिर धन का क्या पूछना।)

यौं दल काढ़े बलख तैं तैं जयसाहि भुवाल।
उदर अघासुर कैं परैं ज्यौं हरि गाइ गुवाल ॥६२८॥

अन्वय—जयसाहि भुवाल, बलख तैं दल तैं यौं काढ़े ज्यौं अघासुर कैं उदर परैं गाइ गुवाल हरि।

दल = सेना। बलख = अफगानिस्तान का एक प्रान्त। भुवाल = भूपाल = राजा। उदर = पेट। अघासुर = कंस का साथी एक राक्षस, जो सर्प के रूप में आकर व्रज के बहुत-से ग्वालों और गौओं को निगल गया था।

हे जयसिंह महाराज, बलख-देश से (शत्रुओं के बीच में फँसी हुई) अपनी सेना को आपने यों निकाल लिया, जिस प्रकार अघासुर के पेट में पड़ी हुई गौओं और ग्वालों को श्रीकृष्ण ने (निकाल लिया था)।

अनी बड़ी उमड़ी लखैं असिबाहक भट भूप।
मंगलु करि मान्यौ हियैं भो मुँहु मंगलु रूप ॥६२९॥

अन्वय—बड़ी उमड़ी अनी असिबाहक लखैं भट भूप हियैं मंगलु करि मान्यौ मुँहु मंगलु-रूप भो।

अनी=सेना। असिबाहक=तलवार चलानेवाला, तलवारधारी। भट=शूर-वीर। मंगलु=कुशल, आनन्द। मंगलु=मंगलग्रह, जिसका रंग लाल माना गया है। रूप=सदृश।

(शत्रुओं की) बड़ी उमड़ी हुई सेना को देखकर तलवार-धारी शूर-वीर राजा ने उसे हृदय में मंगल के समान जाना—आनन्ददायक समझा—और उनका मुँह (आनन्द और क्रोध से) मंगल (ग्रह) के समान (लाल) हो गया।

रहति न रन जयसाहि-मुख लखि लाखनु की फौज।
जाँचि निराखरऊँ चलैं लै लाखनु की मौज ॥६३०॥

अन्वय—जयसाहि-मुख लखि लाखनु की फौज रन न रहति जाँचि निराखरऊँ लाखनु की मौज लै चलैं।

रन=युद्ध-भूमि। लखि=देखकर। लाखन=लाखों। निराखर=निरक्षर, वज्र-मूर्ख। मौज=बकसीस।

जयसिंह का मुख देखकर (शत्रुओं की) लाखों की फौज भी युद्ध-भूमि में नहीं ठहर सकती। (यों ही) उनसे याचना करके—दान माँगकर—निरक्षर (वज्र-मूर्ख) भी लाखों की बक-सीस ले जाता है।

प्रतिबिम्बित जयसाहि-दुति दीपति दरपन-धाम।
सबु-जगु जीतन कौं कस्यौ काय-व्यूह मनु काम ॥६३१॥

अन्वय—दरपन-धाम जयसाहि-दुति प्रतिबिम्बित दीपति मनु काम सबु जगु जीतन कौ काय-व्यूह कर्‌यौ।

दुति = द्युति = चमक। दीपति = जगमगाती है। दरपन-धाम = आईने का बना हुआ घर, शीश-महल। काय-व्यूह = शरीर की सैन्य-रचना।

शीश-महल में राजा जयसिंह की द्युति प्रतिबिम्बित होकर जगमगा रही है—जिधर देखो उधर उन्हींका रूप दीख पड़ता है। मानो कामदेव ने समूचे संसार को जीतने के लिये काय-व्यूह बनाया हो—अनेक रूप धारण किये हों।

नोट—जयपुर में महाराज जयसिंह का वह शीश-महल अब तक वर्त्तमान है। उसकी दीवारें, छत, फर्श सब कुछ शीशे का बना है। उसमें खड़े हुए एक मनुष्य के अनेक प्रतिबिम्ब चारो ओर देख पड़ते हैं।

दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यौं न बढ़ै दुखु दंदु।
अधिक अँधेरौ जग करत मिलि मावस रवि-चंदु ॥६३२॥

अन्वय—दुसहु दुराज प्रजानु कौं दुखु दंदु क्यों न बढ़ै, मावस रविचंद मिलि जग अधिक अँधेरौ करत।

दुसह = असहनीय, (यहाँ) अत्यन्त क्षमताशील। दुराज = दो राजा। दन्दु = द्वन्द्व = दुःख। मावस = अमावस।

अत्यन्त क्षमताशील दो राजाओं के होने से प्रजा के दुःख क्यों न अत्यन्त बढ़ जाँय? अमावस के दिन सूर्य और चन्द्रमा (एक ही राशि पर) मिलकर संसार में अधिक अँधेरा कर देते हैं।

नोट—ज्योतिष के अनुसार अमावस के दिन सूर्य और चन्द्रमा एक ही राशि पर होते हैं। आधुनिक विज्ञान भी इसका समर्थन करता है।

बसै बुराई जासु तन ताही कौ सनमानु।
भलौ भलौ कहि छोड़ियै खोटैं ग्रह जपु दानु ॥६३३॥

अन्वय—जासु तन बुराई बसै ताही कौ सनमानु, भलौ भलौ कहि छोड़ियै खोटैं ग्रह जपु दानु।

बुराई = अपकार। सनमानु = आदर। खोटैं = बुरे।

जिसके शरीर में बुराई बसती है—जो बुराई करता है, उसी का सम्मान होता है। (देखिये) भले ग्रहों (चन्द्र, बुध आदि) को तो भला कहकर छोड़ देते हैं—और बुरे ग्रहों (शनि, मंगल आदि) के लिये जप और दान किया जाता है।

कहै यहै स्रुति सुम्रत्यौ यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसक हीं पातक राजा रोग ॥६३४॥

अन्वय—स्रुति सुम्रत्यौ यहै कहै सयाने लोग यहै, पातक राजा रोग तीन निसक हीं दबावत।

स्रुति = श्रुति, वेद। सुम्रत्यौ = स्मृति। सयाने = चतुर। दबावत = सताते हैं। निसक = निःशक्त, निर्बल, कमजोर। पातक = पाप।

(सभी) श्रुतियाँ और स्मृतियाँ यही कहती हैं, और चतुर लोग भी यही (कहते हैं) कि पाप, राजा और रोग—ये तीन—कमजोर ही को दबाते हैं—दुःख देते हैं।

बड़े न हूजै गुननु बिनु बिरद बड़ाई पाइ।
कहत धतूरे सौं कनकु गहनौ गढ़्यौ न जाइ ॥६३५॥

अन्वय—बड़ाई बिरद पाइ गुननु बिनु बड़े न हूजै, धतूरे सौं कनकु कहत गहनौ न गढ़्यौ जाइ।

हूजै = हो सकते। बिरद = बाना। कनकु = (१) सोना (२) धतूरा।

बड़ाई का बाना पा लेने से—ऊँचा नाम रख लेने से—गुण के बिना बड़े हो नहीं सकते। 'कनक' कहे जाने पर भी—'सोने' का अर्थ-वाची (कनक) नाम होने पर भी धतूरे से (सोने के समान) गहने नहीं गढ़े जाते।

गुनी गुनी सब कैं कहैं निगुनी गुनी न होतु।
सुन्यौ कहूँ तरु अरक तैं अरक समान उदोतु ॥६३६॥

अन्वय—सब कैं गुनी गुनी कहैं निगुनी गुनी न होतु अरक तरु तैं कहूँ अरक समान उदोतु सुन्यौ ?

अरक = (१) अकवन = (२) सूर्य। उदोतु = ज्योति, प्रकाश।

सब किसी के 'गुणी-गुणी' कहने से—'गुणी-गुणी' कहकर पुकारने से—गुणहीन (कभी) गुणी नहीं हो सकता। (सब लोग 'अकवन' को 'अर्क' कहते हैं, और 'अर्क' 'सूर्य' को भी कहते हैं सो एक नाम—परस्पर पर्यायवाचक—होने पर भी) 'अकवन' के पेड़ से क्या कभी 'सूर्य' के समान ज्योति निकलते सुना है ?

नाह गरजि नाहर-गरज बोलु सुनायौ टेरि।
फँसी फौज मैं बन्दि बिच हँसी सबनु तनु हेरि ॥६३७॥

अन्वय—नाहर गरज नाह-गरजि टेरि बोलु सुनायौ, फौज में बन्दि बिच फँसी सबनु तनु हेरि हँसी।

नाह = पति। गरजि = गरजकर। नाहर-गरज = सिंह का गर्जन। टेरि बोलु सुनायौ = जोर से बोल सुनाया। बन्दि = घेरा। हेरि = देखकर।

सिंह के गर्जन के समान गरजकर पति (श्रीकृष्ण) ने जोर से (अपना) बोल सुना दिया। (उसे सुनते ही) फौज के घेरे में फँसी हुई (रुक्मिणी) सब लोगों के शरीर की ओर देखकर हँस पड़ी (कि अब तुम मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते !)

संगति सुमति न पावहीं परे कुमति कैं धंध।
राखौ मेलि कपूर मैं हींग न होइ सुगंध ॥६३८॥

अन्वय—कुमति कैं धंध परे संगति सुमति न पावहीं। कपूर मैं मेलि राखौ हींग सुगंध न होइ।

सुमति = सुन्दर मति, सुबुद्धि। कुमति = दुष्ट बुद्धि। धंध = जंजाल, फेर। मेलि = मिलाकर।

जो कुमति के धंधे में पड़ा रहता है—जिसे खराब काम करने की आदत-सी लग जाती है, वह सत्संगति से भी सुमति नहीं पाता—नहीं सुधरता। कपूर में मिलाकर भले ही रक्खो, किन्तु हींग सुगंधित नहीं हो सकती।

पर-तिय-दोषु पुरान सुनि लखी मुलकि सुखदानि।
कसु करि राखी मित्र हूँ मुँह आई मुसकानि ॥६३९॥

अन्वय—पर-तिय-दोषु पुरान सुनि सुखदानि मुलकि लखी, मित्र हूँ मुँह आई मुसकानि कस करि राखी।

पर-तिय-दोषु = पर-स्त्री-गमन का दोष। मुलकि = हँसकर, मुस्कुराकर। मित्र = कथा बाँचनेवाले पौराणिक या व्यास।

पर-स्त्री-प्रसंग का दोष पुराण में सुनकर उस सुखदायिनी स्त्री ने (जो पौराणिकजी की परकीया थी, और कथा सुनने भी आई थी) हँसकर (पौराणिकजी की ओर) देखा (कि दूसरों को तो उपदेश देते हो, और स्वयं मुझसे फँसे हो!) और, पौराणिक मिश्रजी ने भी (अपनी प्रेमिका की हँसी देखकर) अपने मुँह तक आई मुस्कुराहट को बलपूर्वक रोक रक्खा (कि कहीं लोग ताड़ न जायँ!)

सबै हँसत करतारि दै नागरता कैं नाँव।
गयौ गरबु गुन कौ सरबु गएँ गँवारैं गाँव ॥६४०॥

अन्वय—नागरता कै नाँव सबै करतारि दै हँसत, गँवारैं गाँव गएँ गुन को सरबु गरबु गयौ।

(जहाँ) नागरिकता के नाम पर—नागरिक प्रवीणता के नाम पर—सब लोग ताली बजा-बजाकर हँसते हैं, (उस) गँवारों के गाँव में बसने से गुण का सारा गर्व जाता रहा!

फिरि-फिरि बिलखी ह्वै लखति फिरि-फिरि लेति उसाँसु।
साँई सिर कच सेत लौं बीत्यौ चुनति कपासु ॥६४१॥

अन्वय—फिरि फिरि बिलखी ह्वै लखति फिरि-फिरि उसाँसु लेति, बीत्यौ कपासु साँई सिर सेत कच लौं चुनति।

बिलखी = व्याकुल। साँई = पति। कच = केश, बाल। चुनति = चुनती या बीनती है। बीत्यौ = बीती हुई, उजड़ी हुई।

बार-बार व्याकुल होकर देखती है, और बार-बार लम्बी साँसें लेती है—गरम आह भरती है! यों उजड़ी हुई कपास को पति के सिर के उजले केश के समान चुनती है। (कपास के उजड़े हुए खेत की कपास चुनने में उसे उतना ही कष्ट होता है, जितना वृद्ध पति के सिर के उजले केश चुनने में नवयुवती पत्नी को होता है)

नोट—कपास का खेत नायिका के गुप्त-मिलन का स्थान था। उसके उजड़ जाने पर उसे दुःख है। उजले केश के विषय में 'केशव' का कहना है—"केसव केसनि अस करी, जस अरिहू न कराहि; चन्द्रबदनि मृग-लोचनी, बाबा कहि-कहि जाहिं"।

नर की अरु नल-नीर की गति एकै करि जोइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै तेतौ ऊँचौ होइ ॥६४२॥

अन्वय—नर की अरु नल-नीर की एकै करि गति जोइ। जेतौ नीचौ ह्वै चले तेतौ ऊँचौ होइ।

नलनीर = नल का पानी। एकै करि = एक ही समान। गति = चाल। जोइ = देखी जाती है।

आदमी की और नल के पानी की एकही गति दीख पड़ती है। वे जितने ही नीचे होकर चलते हैं उतने ही ऊँचे होते हैं (आदमी जितना ही नम्र होकर चलेगा, वह उतना ही अधिक उन्नति करेगा, और नल का पानी जितने नीचे से आयगा, उतना ही ऊपर चढ़ेगा)।

बढ़त-बढ़त सम्पति सलिलु मन-सरोज बढ़ि जाइ।
घटत-घटत सु न फिरि घटै बरु समूल कुम्हिलाइ ॥६४३॥

अन्वय—सम्पति सलिलु बढ़त-बढ़त मन-सरोज बढ़ि जाइ। घटत-घटत सु फिरि न घटै बरु समूल कुम्हिलाइ।

सलिलु = पानी। सरोज = कमल। बरु = भले ही।

धन-रूपी जल के बढ़ते जाने से मन-रूपी कमल भी बढ़ता जाता है। किन्तु (जल के) घटते जाने पर वह (कमल) पुनः नहीं घटता, भले ही जड़ से कुम्हला जाय। (धनी का मन गरीब होने पर भी वैसा ही उदार रह जाता है)।

जो चाहौ चटक न घटै मैलो होइ न मित्त।
रज राजस न छुवाइयै नेहु चीकनैं चित्त ॥६४४॥

अन्वय—मित्त जो चाहौ चटक न घटै मैलो न होइ, नेहु चीकनैं चित्त राजस रज न छुवाइयै।

चटक = चटकीलापन। मैलो = मलिन। रज = धूल। राजस = धन-वित्त। नेहु = (१) प्रेम (२) घी, तेल।

हे मित्र, जो चाहते हो कि (प्रेम या मन का) चटकीलापन न घटे, और वह मलिन न हो, तो प्रेम (रूपी तेल) से चिकने बने हुए चित्त में रुपये-पैसे के व्यवहार-रूपी धूल को न छुलाओ।

अति अगाधु अति औथरौ नदी कूप सरु बाइ।
सो ताकौ सागरु जहाँ जाकी प्यास बुझाइ ॥६४५॥

अन्वय—अति अगाधु अति औथरौ नदी कूप सरु बाइ, जाकी जहाँ प्यास बुझाइ ताकौ सो सागरु।

अगाधु = अथाह। औथरौ = उछले, छिछले। कूप = कुआँ। सरु = तालाब। बाइ = बावड़ी, वापी, सरसी। सागरु = समुद्र।

अत्यन्त अथाह और अत्यन्त उथले (कितनी ही) नदियाँ, कुँए तालाब और बावड़ियाँ हैं। किन्तु जहाँ जिसकी प्यास बुझती है, उसके लिये वही समुद्र है।

मीत न नीति गलीतु ह्वै जौ धरियैं धनु जोरि।
खाएँ खरचैं जौ जुरै तौ जोरियै करोरि ॥६४६॥

अन्वय—मीत नीति न जौं गलीतु ह्वै धनु जोरि धरियैं, खाएँ खरचैं जौ जुरै तौ करोरि जोरियै।

नीति न = नीति नहीं, उचित नहीं। गलीतु ह्वै = गल-पचकर, अत्यन्त दुःख सहकर। जोरि = जोड़कर, इकट्ठा कर।

हे मित्र, यह उचित नहीं है कि गल-पचकर—अत्यन्त दुःख सहकर—धन इकट्ठा कर रखिये। (हाँ, अच्छी तरह) खाने और खरचने पर जो इकट्ठा हो सके, तो करोड़ों रुपये जोड़िये—इकट्ठा कीजिये।

टटकी धोई धोवती चटकीली मुख जोति।
लसति रसोई कैं बगर जगरमगर दुति होति ॥६४७॥

अन्वय—टटकी धोई धोवती मुख चटकीली जोति, रसोई कैं बगर लसति जगरमगर दुति होति।

टटकी धोई = तुरत की धुली हुई। धोवती = धोती, साड़ी। बगर = घर। जगरमगर = जगमग। दुति = ज्योति।

तुरत की धोई हुई साड़ी और मुख की चटकीली चमक वाली नायिका रसोई के घर में शोभा पा रही है, जिससे जगमग ज्योति फैल रही है।

सोहतु संगु समान सौं यहै कहै सबु लोगु।
पान-पीक ओठनु बनै काजर नैननु जोगु ॥६४८॥

अन्वय—समान सौं संग सोहतु सब लोगु यहै कहै, ओठनु पान-पीक बनै नैननु जोगु काजर।

समान = बराबरी का। बनै = बन आती है, शोभती है।

'बराबरी का संग (सम्बन्ध) ही शोभता है,' सब लोग यही कहते हैं। जैसे, (लाल) ओठों में पान की (लाल) पीक बन आती है, और (काली) आँखों के योग्य (काला) काजर समझा जाता है।

चित पित मारक जोगु गनि भयौ भयैं सुत सोगु।
फिरि हुलस्यौ जिय जोइसी समुझैं जारज जोगु ॥६४९॥

अन्वय—चित पितमारक जोगु गनि सुत भयैं सोगु भयौ फिरि जारज-जोगु समुझैं जोइसी जिय हुलस्यौ।

पित-मारक = पितृहन्ता, पिताघातक। सोगु = शोक। जोइसी = ज्योतिषी। जारज = दोगला, जो अपने बाप से न जन्मे।

चित्त में पितृघातक योग विचारकर—यह जानकर कि इस नक्षत्र में पुत्र उत्पन्न होने से पिता की मृत्यु होती है—अपना पुत्र होने पर भी (ज्योतिषीजी को) शोक हुआ। किन्तु पुनः जारज-योग समझकर—यह समझकर कि इस नक्षत्र में उत्पन्न होने वाला लड़का दोगला होता है—ज्योतिषीजी हृदय से प्रसन्न हुए (कि यह मेरा पुत्र तो है नहीं, फिर मैं कैसे मरूँगा? मरेंगे तो वे ससुरे, जिनसे मेरी स्त्री का गुप्त सम्बन्ध था!)

अरे परेखौ को करै तुँहीं बिलोकि बिचारि।
किहिं नर किहिं सर राखियै खरैं बढ़ैं परि पारि ॥६५०॥

अन्वय—अरे को परेखौ करै तुँहीं बिचारि बिलोकि, किहिं नर किहिं सर खरैं बढ़ै परि पारि राखियै।

परेखौ = परीक्षा। सर = तालाब। पारि = (१) बाँध, (२) मर्यादा।

अजी, कौन परीक्षा करे? तुम्हीं विचार कर देखो, किस पुरुष ने और किस तालाब ने अत्यन्त बढ़ने पर अपनी मर्यादा—बाँध—की रक्षा की है? (तालाब में अत्यन्त जल होगा, वह उबल पड़ेगा, और आदमी को भी अधिक धन होगा, तो वह इतराता चलेगा।)

कनकु कनक तैं सौगुनौ मादकता अधिकाइ।
उहि खाएँ बौराइ इहिं पाएँहीं बौराइ ॥६५१॥

अन्वय—कनकु कनक तैं सौगुनौ अधिकाइ मादकता, उहिं खाएँ बौराइ इहिं पाएँहीं बौराइ।

कनक = (१) धतूरा = (२) सोना। मादकता = नशा। बौरार = बौराता है, बावला या पगला हो जाता है।

सोने में धतूरे से सौगुना अधिक नशा है! क्योंकि उसे

(धतूरे को) खाने से (मनुष्य बौराता है) और इसे (सोने को केवल) पाने (मात्र) से ही बौराता है।

नोट—किन्तु मेरा कहना है कि "कनक-कनक ते सौगुनौ कनक-बरनि तन ताय। वा खाये वा पाय ते या देखे बौराइ ॥"

ओठु उचै हाँसी भरी दृग भौंहनु की चाल।
मो मनु कहा न पी लियौ पियत तमाकू लाल ॥६५२॥

अन्वय—ओठु उचै दृग भौंहनु की चाल हाँसी भरी, पियत तमाकू लाल कहा मो मनु न पी लियौ।

उचै = ऊँचे करके। दृग = आँख। मो = मेरा।

ओठों को ऊँचा कर और आँखों तथा भौंहों की चाल को हँसी-युक्त बनाकर तमाखू पीते हुए प्रीतम क्या मेरे मन को नहीं पी गये ? (जरूर पी गये ! तभी तो 'बे-मन' हुई घूमती हो !!)

बुरो बुराई जौ तजै तौ चितु खरौ सकातु।
ज्यौं निकलंकु मयंकु लखि गनै लोग उतपातु ॥६५३॥

अन्वय—बुरो जौ बुराई तजै तौ चितु खरौ सकातु, ज्यौं निकलंकु मयंकु लखि लोग उतपातु गनैं।

सकातु = डरता है। मयंकु = चन्द्रमा। उतपातु = उपद्रव।

बुरे आदमी अगर अपनी बुराई तज देते हैं, तो मन बहुत डरता है--चित्त में भय उत्पन्न होता है। जिस प्रकार निष्कलंक चन्द्रमा को देखकर लोग उत्पात की आशंका करते हैं।

नोट—ज्योतिष में लिखा है कि यदि चंद्रमा का काला धब्बा नष्ट हो जाय, तो संसार में हिम-वर्षा होगी।

भाँवरि अनभाँवरि भरे करौ कोरि बकवादु।
अपनी अपनी भाँति कौ छुटै न सहजु सवादु ॥६५४॥

अन्वय—भाँवरि अनभाँवरि भरै कोरि बकवादु करौ, अपनी अपनी भाँति कौ सहजु सवादु न छुटै।

भाँवरि भरै = चक्कर लगाओ। भाँति = ढंग। सहजु = स्वाभाविक। सवादु = रुचि, प्रवृत्ति।

(निगरानी करने की गरज से चाहे) उनके चारो ओर चक्कर लगाओ या न लगाओ, या उनसे करोड़ों प्रकार के बकवाद करो; किन्तु अपने-अपने ढंग की स्वाभाविक प्रवृत्ति छूट नहीं सकती—(वे उस ओर जायँगे ही)।

नोट—नायक किसी दूसरी स्त्री पर आसक्त है। नायिका उसकी खूब निगरानी करती है। उससे लड़ती-झगड़ती है। इसपर सखी का कथन।

जिन दिन देखे वे कुसुम गई सु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब मैं अपत कँटीली डार ॥६५५॥

अन्वय—जिन दिन वे कुसुम देखे सु बहार बीति गई, अलि अब गुलाब मैं अपत कँटीली डार रही।

कुसुम = फूल। सु = वह। बहार = (१) छटा, (२) वसन्त। अलि = भौंरा। अपत = पत्र रहित। कँटीली डार = काँटों से भरी डाल।

जिन दिनों तुमने वे (गुलाब के) फूल देखे थे, वह बहार तो बीत गई—वह वसन्त तो चला गया। अरे भौंरे! अब तो गुलाब में पत्र रहित कँटीली डालियाँ ही रह गई हैं।

इहीं आस अटक्यौ रहतु अलि गुलाब कैं मूल।
ह्वै हैं फेरि बसन्त रितु इन डारनु वे फूल ॥६५६॥

अन्वय—इहीं आस अलि गुलाब कैं मूल अटक्यौ रहतु, फेरि बसंत रितु इन डारनु वे फूल ह्वै हैं।

अटक्यौ रहै = टिका या अड़ा हुआ है। मूल = जड़। ह्वै हैं = होंगे।

इसी आशा से भौंरा गुलाब की जड़ में अटका हुआ है—उसकी 'अपत कँटीली डार' को से रहा है—कि पुनः वसन्त-ऋतु में इन डालियों में वे ही (सुन्दर सुगन्धित) फूल होंगे।

नोट—यह दोहा पिछले दोहे के जवाब में लिखा हुआ मालूम पड़ता है। कैसा लसानी सवाल-जवाब है!

सरस कुसुम मँड़रातु अलि न झुकि झपटि लपटातु।
दरसत अति सुकुमारु तनु परसत मन न पत्यातु ॥६५७॥

अन्वय—सरस कुसुम अलि मँड़रातु झुकि झपटि न लपटातु अति सुकुमारु तनु दरसत परसत मन न पत्यातु।

मँड़रातु = मँड़राता है, ऊपर चक्कर काटता है। दरसत = देखकर। मन न पत्यातु = मन नहीं पतियाता, तबीयत नहीं कबूल करती।

रसीले फूल पर भौंरा चक्कर काट रहा है, किन्तु झुककर और झपटकर वह नहीं लिपटता—झटपट उस फूल का आलिंगन नहीं करता, क्योंकि उस फूल का अत्यन्त सुकुमार गात देखकर स्पर्श करने को उसका मन नहीं पतियाता—उसकी तबीयत नहीं कबूल करती—(डर है कि कहीं स्पर्श करने से उसका सौकुमार्यपूर्ण सौंदर्य नष्ट न हो जाय।

नोट—इस दोहे के पहले चरण को प्रश्न और दूसरे चरण को उसका उत्तर मानकर पढ़ने से और भी आनन्द आयेगा। फूलों पर भौंरे को मँड़राते देखकर कोई पूछता है—"रसमय पुष्प से भ्रमर क्यों नहीं लिपटता?" कोई रसिक उत्तर देता है—"पुष्प का सुकुमार गात देख चिपटने से हिचकता है।"

बहकि बड़ाई आपनी कत राँचति मति भूल।
बिनु मधु मधुकर कैं हियैं गड़ै न गुड़हर फूल ॥६५८॥

अन्वय—गुड़हर फूल अपनी बड़ाई बहकि कत राँचति, भूल मति, बिनु मधु मधुकर कैं हियैं न गड़ै !

राँचति = प्रसन्न होती है। मधु = रस। गुड़हर = ओड़हुल।

हे गुड़हर के फूल ! अपनी बड़ाई में बहककर कितना प्रसन्न हो रहे हो ? भूलो मत। बिना मधु के होने से (अत्यन्त सुन्दर होने पर भी) भौंरे के हृदय में नहीं गड़ते—उसे पसन्द नहीं पड़ते।

नोट—रूपगर्विता नायिका से सखी कहती है कि केवल सुन्दर रूप से कुछ न होगा, गुण (प्रेम की सुगन्ध) ग्रहण कर, तभी नायक वश में होगा।

जदपि पुराने बक तऊ सरवर निपट कुचाल।
नए भए तु कहा भयौ ए मनहरन मराल ॥६५९॥

अन्वय—सरवर निपट कुचाल जदपि पुराने तऊ बक, नए भए तु कहा भयौ ए मनहरन मराल।

बक = बगला। तऊ = तो भी। सरवर = सरोवर। निपट=एकदम। कुचाल = खराब चाल।

ऐ सरोवर ! यह एकदम खराब चाल है (इसे छोड़ दो)। यद्यपि वे (बगले) पुराने साथी हैं, तो भी आखिर हैं तो वे बगले ही। और (इन हंसों के) नये होने ही से क्या हुआ ? ये हैं मन को मोहित करनेवाले हंस। (अतः बगले को छोड़ हंस की संगति करो—परिचित अपरिचित का खयाल छोड़ दो।)

अरे हंस या नगर मैं जैयौ आपु बिचारि।
कागनि सौं जिन प्रीति करि कोकिल दई बिड़ारि ॥६६०॥

अन्वय—अरे हंस या नगर मैं आपु बिचारि जैयौ, जिन कागनि सौं प्रीति करि कोकिल बिड़ारि दई।

बिड़ारि = खदेड़ देना, भगा देना।

अरे हंस ! इस नगर में तू सोच-विचार कर जाना, (क्योंकि इस गाँव में वे ही लोग रहते हैं) जिन्होंने कागों से प्रीति करके कोयल को खदेड़ दिया था।

को कहि सकै बड़ेनु सौं लखैं बड़ी त्यौं भूल।
दीने दई गुलाब की इन डारनु वे फूल ॥६६१॥

अन्वय—बड़ी भूल लखैं त्यौं बड़ेनु सौं को कहि सकै, दई गुलाब की इन डारनु वे फूल दीने।

भूल=गलती। दीने=दिया है। दई=दैव, विधाता।

(बड़ों की) बड़ी भी भूल देखकर बड़ों से कौन कह सकता है ? विधाता ने गुलाब की इन (कँटीली) डालियों में वे (सुन्दर) फूल दिये हैं (फिर भी उनसे कौन कहने जाता है कि यह आपकी भूल है !)

वे न इहाँ नागर बढ़ी जिन आदर तो आब।
फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ गँवई गाँव गुलाब ॥६६२॥

अन्वय—वे इहाँ नागर न जिन तो आब आदर बढ़ी, गुलाब गँवई गाँव फूल्यौ अनफूल्यौ भयौ।

नागर=नगर के रहनेवाले, चतुर, रसिक। आब=शोभा, रौनक। गँवई गाँव=ठेठ देहात।

यहाँ (देहात में) वे रसिक ही नहीं हैं, जो तेरी शोभा और आदर को बढ़ाते। ऐ गुलाब, इस ठेठ देहात में फूलकर भी तुम बिना फूले हुए हो गये—तुम्हारा फूलना न फूलना बराबर हो गया।

कर लैं सूँघि सराहि हूँ रहे सबै गहि मौनु।
गंधी अंध गुलाब कौ गँवई गाहकु कौनु ॥६६३॥

अन्वय—कर लैं सूँघि सराहि हूँ सबै मौनु गहि रहैं, अंध गंधी गुलाब को गँवई कौनु गाहकु ?

कर = हाथ। गंधी = इत्र बेचनेवाला। गँवई = देहात।

हाथ में लेकर सूँघकर और प्रशंसा करके भी सब चुप रह जाते हैं। अरे अंधा इत्रफरोश, इस गुलाब के इत्र का इस गँवई में कौन गाहक होगा ?

को छूट्यौ इहिं जाल परि कत कुरंग अकुलात।
ज्यौं-ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत त्यौं-त्यौं उरझत जात ॥६६४॥

अन्वय—इहिं जाल परि को छूट्यौ, कुरंग कत अकुलात, ज्यौं-ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत त्यौं-त्यौं उरझत जात।

कत = क्यों। कुरंग = हिरन। भज्यौ = भागना।

इस जाल में पड़कर कौन छूटा ? फिर, अरे हिरन ! तू क्यों अकुलाता है ? देख, ज्यों-ज्यों तू सुलझकर भागना चाहता है, त्यों-त्यों (इस उछल-कूद से) उलझता जाता है।

पटु पाँखै भखु काँकरै सपर परेई संग।
सुखी परेवा पहुमि मैं एकै तुँहीं बिहंग ॥६६५॥

अन्वय—पाँखै पटु काँकरै भखु सपर परेई संग, परेवा पहुमि मैं तुँहीं एकै सुखी बिहंग।

पटु = वस्त्र। भखु = भक्ष, भोजन। परेई = 'परेवा' का स्त्रीलिंग 'परेई'। बिहंग = पक्षी। सपर = पंखयुक्त, परिवार के साथ।

पंख ही तुम्हारा वस्त्र है, (सर्वत्र-सुलभ) कंकड़ ही तुम्हारा भोजन है, और पंख वा परिवार (बाल-बच्चों) के साथ (अपनी प्राणेश्वरी) परेई का संग है—कभी वियोग नहीं होता। सो, हे परेवा, संसार में तुम्हीं एक सुखी पक्षी हो—तुम्हें यथार्थ में सुखी कह सकते हैं।

नोट—इस दोहे में बिहारी ने सुखी जीवन का एक चित्र-सा खींच दिया है। भोजन-वस्त्र की सुलभता और बालबच्चों के साथ प्राणप्यारी का सहवास—इसके आगे सुखी बनने के लिये और चाहिये ही क्या ? किन्तु आजकल के नवयुवक कहेंगे –'स्वाधीनता'। सो 'बिहंग' शब्द से 'स्वाधीनता' का भाव स्पष्ट व्यक्त होता है। 'बिहंग' का अर्थ है 'आकाश में (स्वच्छन्द) विचरण करनेवाला'—अतएव—'स्वतन्त्र'।

स्वारथु सुकृत न स्रमु वृथा देखि बिहंग बिचारि।
बाज पराऐं पानि परि तूँ पच्छीनु न मारि ॥६६६॥

अन्वय—स्वारथु सुकृत न स्रमु वृथा बिहंग बिचारि देखि, बाज पराऐं पानि परि तूँ पच्छीनु न मारि।

सुकृत = पुण्यकार्य। स्रमु = श्रम = मिहनत। बिहंग = आकाश में उड़नेवाला, पक्षी। पानि = हाथ।

न तो इसमें तेरा कोई स्वार्थ है (क्योंकि मांस खुद बहेलिया ले लेगा), और न कोई पुण्य कार्य है (क्योंकि यह हत्यारापन है), इस प्रकार यह परिश्रम व्यर्थ है, ऐ (उन्मुक्त आकाश में स्वच्छन्द विचरण करनेवाला) पक्षी! विचार कर देख। अरे बाज, दूसरे के हाथ पर बैठकर (दूसरे के बहकावे में आकर) पक्षियों को (स्वजातीयों को) मत मार।

दिन दस आदरु पाइकै करि लै आपु बखानु।
जौलौं काग सराध-पखु तौलौं तौ सनमानु ॥६६७॥

अन्वय—दस दिन आदरु पाइकै आपु बखान करि लै, काग जौ लौं सराध-पखु तौ ला तौ सनमानु।

बखानु = बड़ाई। लौं = तक। सराध-पखु = श्राद्ध-पक्ष या श्राद्ध का पखवारा। सनमानु = सम्मान = आदर।

दो-चार-दस दिन (कुछ दिन) आदर पाकर अपनी बड़ाई कर ले। अरे काग! जब तक श्राद्ध का पखवारा है, तभी तक तेरा आदर भी है।

नोट—श्राद्ध में काग को बलि का भाग दिया जाता है।

मरत प्यास पिंजरा पर्‌यौ सुआ समै कैं फेर।
आदरु दै दै बोलियतु बाइसु बलि की बेर ॥६६८॥

अन्वय—समै कैं फेर सुआ पिंजरा पर्‌यौ प्यास मरत, बलि की बेर बाइसु आदर दै दै बोलियतु।

सुआ = सुग्गा, तोता। बाइसु = कौवा। बलि = श्राद्ध के अन्त में से निकाला हुआ कौवे का भाग। बेर = समय।

समय के फेर से (भाग्य-चक्र के प्रभाव से) सुग्गा पिंजड़े में पड़ा प्यासा मर रहा है, और (श्राद्ध-पक्ष होने के कारण) बलि-देने के समय काग को आदर के साथ बुला रहे हैं—(कैदबन्द सुग्गे का प्यासों मरना और स्वच्छन्द कौवे का सादर भोजनार्थ बुलाया जाना—सचमुच किस्मत का खेल है!)

जाकैं एकाएकहूँ जग ब्यौसाइ न कोइ।
सो निदाघ फूलै फरै आकु डहडहौ होइ ॥६६९॥

अन्वय—जाकैं जग कोइ एकाएकहूँ ब्यौसाइ न, सो आकु निदाघ डहडहौ होइ फूलै फरै।

एकाएक हूँ = अकेला भी, एकाकी भी। ब्यौसाइ = उपाय, यत्न। निदाघ = ग्रीष्म-ऋतु। आकु = अर्क = अकवन। डहडहौ = लहलहा, हरा-भरा।

जिसके लिये संसार में कोई अकेला मनुष्य भी उपाय करने-वाला नहीं है—जिसे सींचने का कोई उद्योग नहीं किया जाता—

वही 'अकवन' ग्रीष्म ऋतु में भी हरा-भरा रहता और फूलता-फलता है।

नोट—तुलसी बिरवा बाग को सींचत हू कुम्हिलाय।
राम-भरोसे जो रहै परबत पर हरिआय॥—तुलसीदास

नहिं पावसु ऋतुराजु यह तजि तरबर चित भूल।
अपतु भएँ बिनु पाइहै क्यौं नव दल फल फूल॥६७०॥

अन्वय—पावसु नहिं यह ऋतुराजु तरबर चित भूल तजि, बिनु अपतु भएँ क्यौं नव दल फल फूल पाइहै।

पावसु=वर्षा-ऋतु। ऋतुराजु=वसन्त-ऋतु।

यह पावस नहीं (जिसमें सब वृक्ष स्वभावतः हरे-भरे बने रहते हैं), वसन्त है। हे वृक्ष, मन की इस भूल को छोड़ दो। इस ऋतु में बिना पत्र-रहित हुए तुम कैसे नये पत्ते और फल-फूल प्राप्त करोगे? (वसन्त में हरा-भरा होने से पहले—पतझड़ के कारण—पत्ररहित होना ही पड़ेगा)।

सीतलता रु सुबास की घटै न महिमा मूरु।
पीनसवारैं ज्यौं तज्यौ सोरा जानि कपूरु॥६७१॥

अन्वय—पीनसवारैं ज्यौं कपूरु सोरा जानि तज्यौ, सीतलता रु सुबास की महिमा मूरु न घटै।

रु=अरु=और। मूरु=मूल्य, मोल। पीनसवारैं=पीनस-रोगी (नकड़ा) का रोगी, जिसकी घ्राणशक्ति नष्ट हो जाती है, और जिसे सुगंध-दुर्गंध कुछ नहीं जान पड़ती। सोरा=नमक की तरह का एक खारा पदार्थ।

पीनस-रोग वाले ने जैसे कपूर को सोरा जानकर छोड़ दिया, उससे उसकी शीतलता और सुगंध की महिमा और न उसका मोल ही घटा। (कोई मूर्ख यदि गुणी का निरादर करे, तो उससे

गुणी का गुण नहीं घट जाता और न उसका सम्मान ही कम होता है।)

गहै न नेकौ गुन गरबु हँसौ सकल संसारु।
कुच-उचपद लालच रहै गरैं परैहूँ हारु ॥६७२॥

अन्वय—गुन गरबु न नेकौ गहै सकल संसार हँसौ, कुच-उच-पद-लालच हार गरैं परैहूँ रहै।

गुन-गरबु = गुण का घमण्ड। गरैं परैहूँ = गले पड़ने पर भी (इस मुहाविरे का अर्थ है—'विना इच्छा के ही किसीके पीछे पड़े रहना')। हार = (१) माला (२) पराजय।

अपने गुण का उसे जरा भी घमंड नहीं, सारा संसार उसे ('हार'-'हार' कहकर) हँसता है, तो भी वह 'हार' कुच-रूपी ऊँचे पद के लोभ में पड़कर (उस नवयौवना के) गले में पड़ा ही रहता है। (उपहास सहकर भी लोग ऊँचे ओहदे को नहीं छोड़ते)।

मूड़ चढ़ाएँऊ पस्यौ रहै पीठि कच-भारु।
रहै गरैं परि राखिबौ तऊ हियैं पर हारु ॥६७३॥

अन्वय—मूड़ चढ़ाएँऊ कच-भारु पीठि पस्यौ रहै जरैं परि रहै तऊ हारु हियैं पर राखिबौ।

मूड़ चढ़ाना = सिर चढ़ाना, अधिक मान करना। कच-भार = केश-गुच्छ, केश-जाल, बालों का समूह। गले पड़ना = देखो ६७२ वाँ दोहा। हारु = माला।

सिर पर चढ़ाये रहने पर भी केश-गुच्छ पीठ पर ही पड़े रहते हैं—(आदर दिखलाने पर भी नीच का निरादर ही होता है), और यद्यपि गले पड़कर रहती है, तो भी माला हृदय ही पर

रक्खी जाती है—(निरादृत होने पर भी सज्जन का सम्मान ही होता है)।

नोट—इस दोहे में बिहारीलाल ने मुहाविरे का अच्छा प्रयोग दिखलाया है। कविवर 'रसलीन' भी मुहाविरों के प्रयोग में बड़े कुशल हैं। 'वेणी' पर कैसो मुहावरेदार भाषा में मजमून बाँधा है—

भनत न कैसे हू बनै, या वेनी के दाय।
तुव पीछे जे जगत के पीछे परे बनाय॥

जो सिर धरि महिमा मही लहियति राजा-राइ।
प्रगटत जड़ता अपनियै मुकुट पहिरियतु पाइ॥६७४॥

अन्वय—जो सिर धरि राजा-राइ मही महिमा लहियति, मुकुट पाइ पहिरियतु अपनियै जड़ता प्रगटत।

महिमा=बड़ाई। मही=भूमंडल, (संसार) में। जड़ता=मूर्खता।

जिसे सिर पर रखकर बड़े-बड़े राजे-महराजे संसार में बड़ाई पाते हैं, उसी मुकुट को पाँव में पहनकर (मूर्ख मनुष्य) अपनी जड़ता ही प्रकट करता है। (आदरणीय का तिरस्कार करना मूर्खता है)।

चले जाइ ह्याँ को करै हाथिनु कौ व्यापार।
नहि जानतु इहिं पुर बसैं धोबी ओड़ कुम्हार॥६७५॥

अन्वय—चले जाइ ह्याँ हाथिनु कौ व्यापार को करै नहि जानतु इहिं पुर धोबी ओड़ कुम्हार बसैं।

ह्याँ=यहाँ। पुर=गाँव। ओड़=बेलदार।

चले जाओ, यहाँ हाथी का व्यापार कौन करता है? नहीं जानते कि इस गाँव में केवल धोबी, बेलदार और कुम्हार बसते हैं (जो गदहे पालते हैं)?

नोट—पश्चिम में कुम्हार और बेलदार भी गदहे पालते हैं।

करि फुलेल कौ आचमन मीठौ कहत सराहि।
रे गंधी मति-अंध तूँ अतर दिखावत काहि ॥६७६॥

अन्वय—फुलेल कौ आचमन करि सराहि मीठौ कहत, रे मति अंध गंधी तू काहि अतर दिखावत ?

फुलेल = फूलों के रस से बसा हुआ तेल। आचमन करि = पीकर। गंधी = इत्र बेचनेवाला, अत्तार। मतिअंध = बेवकूफ। अतर = इत्र।

(यहाँ तो) फुलेल का आचमन कर उसे सराहता और मीठा कहता है! रे बेवकूफ इत्रफरोश, तू यहाँ किसको इत्र दिखा रहा है ? (वह तो यह भी नहीं जानता कि फुलेल लगाने की चीज है या पीने की, फिर वह इत्र की कद्र क्या जानेगा ?)

विषम वृषादित की तृषा जिये मतीरनु सोधि।
अमित अपार अगाध-जलु मारौ मूढ़ पयोधि ॥६७७॥

अन्वय—विषम वृषादित की तृषा मतीरनु सोधि जिये, मारौ अमित अपार अगाध-जल पयोधि मूढ़।

विषम = प्रचंड। वृषादित=(वृष + आदित्य) वृष-राशि का सूर्य, जो अतिशय प्रचंड होता है; जेठ की तीखी धूप। तृषा = प्यास। मतीरनु= तरबूजों। सोधि = खोजकर। अगाध = अथाह। मारौ = मारवाड़ (राजपुताने की मरुभूमि)। मूढ़=मूर्ख (यहाँ 'बेकार')। पयोधि=-समुद्र।

जेठ की कड़ी धूप की प्यास से (व्याकुल होने पर) तरबूजों को खोजकर प्राण बचाया। इस मारवाड़ की मरुभूमि में अत्यन्त विस्तृत और अगाध जल वाला समुद्र किस काम का ?—बेकार है।

जम-करि-मुँह-तरहरि पर्‌यौ इहिं धरहरि चित लाउ।
विषय-तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ ॥६७८॥

अन्वय—जम-करि-मुँह-तरहरि परयौ हहि धर हरि चित लाउ विषय-तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ।

करि = हाथी। तरहरि = तलहटी, नीचे। हरि=(१) ईश्वर (२) सिंह। तृषा = तृष्णा, प्यास, वासना। परिहरि = छोड़कर। अजौं = अब भी। नरहरि = नृसिंह भगवान। धरहरि = निश्चय।

यम-रूपी हाथी के मुख के नीचे पड़े हो, यह समझकर निश्चय (सिंह-रूपी) हरि में चित्त लगाओ—और, विषय की तृष्णा छोड़कर अब भी (उस नृसिंह के गुण गाओ।

जगतु जनायौ जिहिं सकलु सो हरि जान्यौ नाहिं।
ज्यौं आँखिनु सबु देखियै आँखि न देखी जाहिं ॥६७९॥

अन्वय—जिहिं सकलु जगतु जनायौ सो हरि नाहिं जान्यौ, ज्यौं आँखिनु सब देखियै आँखि न देखी जाहिं।

जिहिं = जिसने। ज्यौं=जैसे। न देखी जाहिं = नहीं देख पड़तीं।

जिसने सारे संसार को जनाया—जिसने तुम्हें सारे संसार का ज्ञान दिया, उसी ईश्वर को तुमने नहीं जाना—नहीं पहचाना, (ठीक उसी प्रकार) जिस प्रकार अपनी आँखों से और सब वस्तुएँ तो देखी जाती हैं, पर स्वयं (अपनी ही) आँखें नहीं देख पड़तीं।

जप माला छापैं तिलक सरै न एको कामु।
मन काँचै नाचै बृथा साँचै राँचै रामु ॥६८०॥

अन्वय—जप माला छापैं तिलक एको कामु न सरै, मन काँचै नाचै बृथा रामु साँचै राँचै।

छापैं = राम-नाम की छाप, जिसे साधु-सन्त अपने शरीर और वस्त्र में

लगाते हैं। सरै = सधता है। कामु = कार्य, मनस्कामना। साँचे=सचाई (सच्ची लगन) से ही। राँचै = रीझते हैं।

जप (मंत्र-पाठ), माला (सुमिरन), छापे या तिलक से एक भी काम नहीं सध सकता—कोई भी मनोरथ सिद्ध नहीं हो सकता। जब मन सच्चा है—मन वश में नहीं है, तो यह सारा नाच (आडम्बर) वृथा है, (क्योंकि) राम तब सत्य से ही प्रसन्न होते हैं (आडंबरों से नहीं)।

नोट—"माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि।
मनुआँ तो दस दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाँहि॥—कबीरदास

यह जग काँचो काँच-से मैं समझ्यौ निरधार।
प्रतिबिम्बित लखियै जहाँ एकै रूप अपार॥६८१॥

अन्वय—मैं निरधार समझ्यौ यह काँचो जग काँच-से जहाँ एकै अपार रूप प्रतिबिम्बित लखियै।

काँचो = कच्चा, क्षणभंगुर। निरधार = निश्चित रूप से।

यह मैंने निश्चित रूप से जान लिया कि यह क्षणभंगुर संसार काँच के समान है, जहाँ एक वही (ईश्वर का) अपार रूप (सभी वस्तुओं में) प्रतिम्बिबित हो रहा है—झलक रहा है।

बुधि अनुमान प्रमान स्रुति किएँ नीठि ठहराइ।
सूछम कटि पर ब्रह्म की अलख लखी नहिं जाइ॥६८२॥

अन्वय—कटि ब्रह्म की पर सूछम अलख, लखी नहि जाइ, बुधि अनुमान, स्रुति प्रमान किएँ नीठि ठहराइ।

स्रुति = श्रुति = वेद, कान। नीठि = मुश्किल से। ठहराइ = निश्चित होती है। सूछम=सूक्ष्म, बारीक। अलख = जो देखा न जा सके। पर= भाँति, समान।

नायिका की कटि ब्रह्म की भाँति अत्यन्त सूक्ष्म है, अलख है, वह

देखी नहीं जा सकती—समझ में नहीं आ सकती। बुद्धि द्वारा अनुमान करने और वेदों के प्रमाण मानने (कानों से सुनने) पर भी वह मुश्किल से समझ पड़ती है।

तौ लगु या मन-सदन मैं हरि आवैं किहिं बाट।
बिकट जटे जौ लगु निपट खुलैं न कपट-कपाट ॥६८३॥

अन्वय—तौ लगु या मन-सदन मैं हरि किहिं बाट आवैं, जौ लगु निपट बिकट जटे कपट कपाट न खुलै।

सदन = घर। बाट = राह। निपट बिकट जटे = अत्यन्त दृढ़ता से जड़े हुए। कपट = छल, प्रपंच, दम्भ। कपाट = किवाड़।

तब तक इस मन-रूपी घर में ईश्वर किस राह से आवें, जब तक कि (इसमें) अत्यन्त दृढ़ता से जड़े हुए कपट-रूपी किवाड़ न खुल जायँ—मन निष्कपट न हो जाय।

या भव-पारावार कौं उलंघि पार को जाइ।
तिय-छबि-छाया-ग्राहिनी ग्रहै बीच ही आइ ॥६८४॥

अन्वय—या भव-पारावार कौं उलँघि को पार जाइ, तिय-छबि-छायाग्राहिनी बीच ही आइ ग्रहै।

भव संसार। पारावार = समुद्र। उलँघि = लाँघकर। तिय-छवि = स्त्री की शोभा। छायाग्राहिनी = लंका-द्वीप के पास समुद्र में रहनेवाली रामायण-प्रसिद्ध 'सिंहिका' नामक राक्षसी, जो आकाश में उड़नेवाले जीवों की छाया पकड़कर उन्हें खींच लेती थी—"(निसिचरि एक सिंधु महँ रहई, करि माया नभ के खग गहई—तुलसीदास)"। ग्रहै = पकड़ लेती है। बीच ही = जीवनकाल के मध्य (युवावस्था) में ही।

इस संसार-रूपी समुद्र को लाँघकर कौन पार जा सकता है? (क्योंकि) स्त्री की शोभा-रूपी छायाग्राहिणी बीच ही में आकर

पकड़ लेती है—(स्त्री का सौन्दर्य्य युवावस्था में ही ग्रस लेता है)।

भजन कह्यौ तातैं भज्यौ भज्यौ न एकौ बार।
दूरि भजन जातैं कह्यौ सो तैं भज्यौ गँवार ॥६८५॥

अन्वय—भजन कह्यौ तासैं भज्यौं एकौ बार न भज्यौ, जातैं दूर भजन कह्यौ, सो गँवार तैं भज्यौ।

भजन = (१) सुमिरन (२) भागना। भज्यौ = (१) भाग गये, (२) भजन किया। तातैं = उससे। जातैं = जिससे।

जिसका भजन करने को कहा (जिसका भजन करने के लिये मातृगर्भ में वचन दिया), उस (ईश्वर) से तू दूर भागा, एक बार भी उसे नहीं भजा—नहीं सुमिरा। और, जिससे दूर भागने को कहा, (जिससे बचे रहने का वादा किया) ऐ गँवार, उसी (माया-मोह) को तूने भजा—उसीमें तू अनुरक्त हुआ।

पतवारी माला पकरि और न कछु उपाउ।
तरि संसार-पयोधि कौं हरि नावैं करि नाउ ॥६८६॥

अन्वय—और कछु उपाइ न, माला पतवारी पकरि हरि नावैं नाउ करि संसार-पयोधि को तरि।

पतवारी = पतवार। नावैं = नाम को ही। पयोधि=समुद्र।

दूसरा कोई उपाय नहीं। माला-रूपी पतवार को पकड़कर और ईश्वर के नाम की ही नौका बनाकर इस संसार-रूपी समुद्र को पार कर जाओ।

यह बिरिया नहिं और की तूँ करिया वह सोधि।
पाहन-नाव चढ़ाइ जिहिं कीने पार पयोधि ॥६८७॥

अन्वय—यह और की बिरिया नहिं, तूँ वह करिया सोधि, जिहिं पाहन-नाव चढ़ाइ पयोधि पार कीने।

बिरिया = वेला, समय। करिया = कर्णधार, मल्लाह। सोधि = खोज कर। पाहन = पत्थर। पयोधि=समुद्र।

यह दूसरे की बेर नहीं है—(इस अन्तिम अवस्था में कोई दूसरा मदद नहीं कर सकता), तू उसी मल्लाह को खोज, जिसने पत्थर की नाव पर चढ़ाकर समुद्र को पार कराया था।

नोट—श्रीरामचन्द्रजी पत्थर का पुल बनाकर अपनी मर्कट-सेना को लंका ले गये थे। उन्हीं का नाम भव-सागर-सेतु है।

दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन-बिस्तारन-काल।
प्रगटत निर्गुन निकट ह्वै चंग-रंग गोपाल ॥६८८॥

अन्वय—गोपाल चंग-रंग गुन-बिस्तारन-काल प्रभु पीठि दै दूरि भजत, निर्गुन निकट ह्वै प्रगटत।

भजत = भागना। पीठि दै = विमुख होकर। गुण = (१) गुण (२) तागा। निर्गुण = (१) गुण-रहित (२) विना तागे का। चंग = पतंग, गुड्डी। रंग = समान।

गोपाल (की लीला) गुड्डी के समान है। गुण विस्तार करने के समय—अपने को गुणवान् समझने के समय—वह प्रभु पीठ देकर दूर भागता है, (ठीक उसी तरह, जिस तरह 'गुण'-तागा-बढ़ाने पर गुड्डी दूर भागती है), और निर्गुण होते ही—अपने को तुच्छातितुच्छ समझते ही—वह (ईश्वर) निकट ही प्रकट हो जाता है (जिस तरह गुण-हीन—तागा विना—हो जाने पर गुड्डी निकट आ जाती है)।

जात-जात बितु होतु है ज्यौं जिय मैं सन्तोष।
होत-होत जौं होइ तौ होइ घरी मैं मोष ॥६८९॥

अन्वय—बितु जात-जात ज्यौं जिय मैं संतोष होतु है, होत-होत जौं होइ तौ घरी मैं मोष होइ।

जात-जात=जाते-जाते, जाते समय। बित=धन। मोष=मोक्ष।

धन के जाते समय जिस प्रकार मन में सन्तोष होता है, अगर (धन) के आते समय भी उसी प्रकार (सन्तोष) हो, तो एक घड़ी में ही (अथवा, घर ही में) मोक्ष मिल जाय!

ब्रजवासिनु को उचितु धनु जो धन रुचत न कोइ।
सुचित न आयौ सुचितई कहौ कहाँ तैं होइ ॥६९०॥

अन्वय—जो कोइ धन न रुचत ब्रजवासिनु को उचित धनु, सु चितु न आयौ कहौ कहाँ तैं सुचितई होइ?

सुचितई=निश्चिन्तता, शान्ति।

जो और कोई धन तुम्हें नहीं रुचता है (वहाँ तक तो ठीक है मगर) व्रज-वासियों का उपयुक्त धन (श्रीकृष्ण) अगर हृदय में नहीं आया, तो कहो, शान्ति किस प्रकार हो सकती है!

नीकी दई अनाकनी फीकी परी गुहारि।
तज्यौ मनौ तारन-बिरदु बारक बारनु तारि ॥६९१॥

अन्वय—नीकी अनाकनी दई, गुहारि फीकी परी, मनौ बारक बारनु तारि तारन-बिरदु तज्यौ।

अनाकनी दई=आनाकानी कर दी, सुनी अनसुनी कर दी, कान बन्द कर लिये। गुहारि=पुकार कातर प्रार्थना। तारन-बिरदु=भवसागर से उबारने का यश, तारने की बड़ाई। बारक=एक बार। बारनु=हाथी।

(हे प्रभो, तुमने तो) अच्छी आनाकानी की (कि मेरी)

पुकार ही फीकी पड़ गई! (मालूम होता है) मानों (तुमने) एक बार हाथी को तारकर अब तारने का यश ही छोड़ दिया! शायद दीनों की कातर प्रार्थना अब तुम्हें फीकी मालूम होती है।

दीरघ साँस न लेहि दुख सुख साईं नहीं भूलि।
दई दई क्यौं करतु है दई दई सु कबूलि ॥६९२॥

अन्वय—दुख दीरघ साँस न लेहि, सुख साईं नहि भूलि, दई-दई क्यों करतु है? दई दई सु कबूलि।

दीरघ = लम्बी। साईं = स्वामी, ईश्वर। दई = दैव। दई = दिया है।

दुःख में लम्बी साँस न लो, और सुख में ईश्वर को मत भूलो। दैव-दैव क्यों पुकारते हो? दैव (ईश्वर) ने जो दिया है, उसे कबूल (मंजूर) करो।

कौन भाँति रहिहै बिरदु अब देखिबी मुरारि।
बीधे मोसौं आइकै गीधे गीधहि तारि ॥६९३॥

अन्वय मुरारि अब देखिबी बिरदु कौन भाँति रहिहै, गीधहि तारि गीधे मोसौं आइ कै बीधे।

बिरद=ख्याति, कीर्ति। मुरारि = श्रीकृष्ण। बीधे=बिंधना, उलझना। गीधे = परक गये थे, चस्का लग गया था।

हे श्रीकृष्ण, अब देखूँगा कि तुम्हारा यश किस तरह (अक्षुण्ण) रहता है! (तुम) गीध (जटायु) को तारकर परक गये थे, किन्तु अब मुझसे आनकर उलझे हो—(मुझ-जैसे अधम को तारो, तो जानूं!)

बंधु भए का दीन के को तारौ रघुराइ।
तूठे-तूठे फिरत हौ झूठे बिरदु कहाइ ॥६९४॥

अन्वय—रघुराइ का दीन के बन्धु भए, को तार्‌यौ ? झूठे बिरदु कहाइ तूठे-तूठे फिरत हौ।

का = किस। तूठे-तूठे = संतुष्ट होकर। बिरद = बड़ाई, कीर्ति।

हे रघुनाथ, तुम किस दीन के बंधु बने—किसके सहायक हुए, और किसको तारा ? झूठमूठ का बिरद बुलाकर—अपनी कीर्ति लोगों से कहला-कहलाकर—तुम (नाहक) संतुष्ट बने फिरते हो!

थोरैंही गुन रीझते बिसराई वह बानि।
तुमहूँ कान्ह मनौ भए आज-काल्हि के दानि ॥६९५॥

अन्वय—थोरैंही गुन रीझते वह बानि बिसराई, मनो कान्ह तुमहूँ आजकाल्हि के दानि भये।

थोरेई = थोड़े ही। रीझते = प्रसन्न होते। बानि = आदत।

ऐ कन्हैया, (तुम जो) थोड़े ही गुण से प्रसन्न हो जाते थे वह आदत (तुमने) भुला दी। मानों तुम भी आजकल कलियुग के दानी हो गये हो—(जो हजार सर पटकने पर भी धेला नहीं देते)।

कब कौ टेरतु दीन ह्वै होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगतगुरु जगनाइक जग-बाइ ॥६९६॥

अन्वय—कब कौ दीन ह्वै टेरतु, स्याम सहाइ न होत जगतगुरु जगनाइक तुमहूँ जग-बाइ लागी।

टेरत = पुकारता है। जग-बाइ = संसार की हवा।

कब से दीन होकर पुकार रहा हूँ—कातर प्रार्थना कर रहा हूँ, किन्तु हे श्याम, तुम सहाय (प्रसन्न) नहीं होते। हे संसार के गुरु और प्रभु, (मालूम होता है), तुम्हें भी इस संसार की हवा लग गई है—संसारी मनुष्यों की भाँति तुम भी निठुर बन गये हो !

प्रगट भए द्विजराज-कुल सुबस बसै ब्रज आइ।
मेरे हरौ कलेस सब केसव केसवराइ ॥६६७॥

अन्वय—द्विजराजकुल प्रगट भए सुबस ब्रज आइ बसे केसव केसवराइ मेरे सब कलेस हरौ।

द्विजराज=(१) उत्तम ब्राह्मण (२) चंद्रमा। केसव=केशव, श्रीकृष्ण। केसवराइ=विहारीलाल के पिता।

श्रेष्ठ ब्राह्मण वंश में ('कृष्ण' अर्थ में 'चन्द्रवंश' में) प्रकट हुए, और अपनी इच्छा से ब्रज में आ बसे। वह कृष्ण-रूपी (मेरे पिता) केशवराय मेरे सब क्लेशों को दूर करें।

घर-घर डोलत दीन ह्वै जन-जन जाँचतु जाइ।
दियैं लोभ-चसमा चखनु लघुहू बड़ौ लखाइ ॥६६८॥

अन्वय—दीन ह्वै घर-घर डोलत, जन-जन जाँचतु जाइ, चखनु लोभ-चसमा दियैं लघुहू बड़ौ लखाइ।

डोलत=घूमता-फिरता है। चखनु=आँखों पर। चसमा=ऐनक।

(यह लालची मन) दीन बनकर घर-घर घूमता (मारा फिरता) है, और प्रत्येक मनुष्य से याचना करता जाता है—कुछ-न-कुछ माँगता ही जाता है; क्योंकि आँखों पर लोभ का चश्मा देने से छोटी (मामूली) चीज भी बड़ी (बेशकीमत) दीख पड़ती है।

कीजै चित सोई तरे जिहिं पतितनु के साथ।
मेरे गुन-औगुन-गननु गनौ न गोपीनाथ ॥६६९॥

अन्वय—गोपीनाथ, सोई चित कीजै जिहिं पतितनु के साथ तरे, मेरे गुन-औगुन-गननु न गनौ।

जिहिं=जिससे। गननु=गणों, समूहों। गनौ न=खयाल न करो।

हे गोपीनाथ ! वैसा ही (कृपालु) मन रखिये—इरादा कीजिये, जिससे मैं भी (अन्य) पतितों के साथ तर जाऊँ; मेरे गुण और अवगुण के समूहों को न गिनिये, (क्योंकि पार न पाइयेगा, अतः दया कर तार ही दीजिये)।

ज्यौं अनेक अधमनु दियौ मोहूँ दीजै मोषु।
तौ बाँधौ अपनैं गुननु जौ बाँधैहीं तोषु ॥७००॥

अन्वय—ज्यौं अनेक अधमनु दियौ, मोहूँ मोषु दीजै, जौ बाँधैं ही तोषु, तौ अपने गुननु बाँधौ।

मोषु = मोक्ष। गुननु = (१) गुणों (२) रस्सियों। तोषु = संतोष।

जिस प्रकार आपने अनेक पतितों को मोक्ष दिया है, उसी प्रकार मुझे भी दीजिये—आवागमन से छुड़ाइये—(अथवा) यदि बाँधने ही से (सांसारिक माया-मोह के बंधनों में फँसाये रखने से ही) संतोष हो, तो अपने गुणों (की रस्सियों) से ही बाँधिये। (बंधन या मोक्ष, दो में से कोई एक, तो देना ही पड़ेगा !)

परिशिष्ट

ये पचीस दोहे भी बिहारीलाल के ही हैं।

कोऊ कोरिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार।
मो सम्पति जदुपति सदा बिपति-बिदारन-हार ॥७०१॥

अन्वय—कोऊ हजार लाख कोऊ कोरिक संग्रहौ, मो सम्पति सदा बिपत्ति-बिदारनहार जदुपति।

कोई हजारों, लाखों या करोड़ों की सम्पत्ति संग्रह करे, किन्तु मेरी सम्पत्ति तो वही सदा 'विपत्ति के नाश करनेवाले' यदुनाथ (श्रीकृष्ण) हैं।

ज्यौं ह्वै हौं त्यौं होउँगौ हौं हरि अपनी चाल।
हठु न करौ अति कठिनु है मो तारिबो गुपाल ॥७०२॥

अन्वय—हरि हौं अपनी चाल ज्यौं ह्वैहौं त्यौं होउँगौ, हठु न करो, गुपाल, मो तारिबो अति कठिन है।

हे कृष्ण, मैं अपनी चाल से जैसा होना होगा, वैसा होऊँगा। (मुझे तारने के लिये) तुम हठ न करो। हे गोपाल, मुझे तारना अत्यन्त कठिन है—(हँसी-खेल नहीं है, तारने का हठ छोड़ दो, मैं घोर नारकी हूँ।)

करौ कुबत जगु कुटिलता तजौं न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल चित बसत त्रिभंगीलाल ॥७०३॥

अन्वय—जगु कुबत करौ दीनदयाल कुटिलता न तजौं, त्रिभंगीलाल सरल चित बसत दुखी होहुगे।

कुबत = कुवार्त्ता, निन्दा। त्रिभंगीलाल = बाँकेविहारीलाल—मुरली बजाते समय पैर, कमर और गर्दन कुछ-कुछ टेढ़ी हो जाती है, जिससे शरीर में तीन जगह टेढ़ापन (बाँकपन) आ जाता है—वही त्रिभंगी बना है।

संसार भले ही निंदा करे, किन्तु हे दीनदयालु, मैं अपनी कुटिलता छोड़ नहीं सकता; क्योंकि हे त्रिभंगीलाल, मेरे सीधे चित्त में बसने से तुम्हें कष्ट होगा (सीधी जगह में टेढ़ी मूर्ति कैसे रह सकेगी? त्रिभंगी मूर्ति के लिये टेढ़ा हृदय भी तो चाहिये)।

मोहिं तुम्हैं बाढ़ी बहस को जीतै जदुराज।
अपनैं-अपनैं बिरद की दुहूँ निबाहन लाज ॥७०४॥

अन्वय—मोहिं तुम्हैं बहस बाढ़ी, जदुराज को जीतै, अपने-अपने बिरद की लाज दुहूँ निबाहन।

मुझमें और तुममें बहस छिड़ गई है, हे यदुराज! देखना है कि कौन जीतता है। अपने-अपने गुण की लाज दोनों ही को निबाहना है (तुम मुझे तारने पर तुले हो, तो मैं पाप करने पर तुला हूँ; देखा चाहिये किसकी जीत होती है!)।

निज करनी सकुचें हिं कत सकुचावत इहिं चाल।
मोहूँ-से अति बिमुख त्यौं सनमुख रहि गोपाल ॥७०५॥

अन्वय—गोपाल, निज हिं करनी सकुचें इहिं चाल कत सकुचावत, मोहूँ-से अति बिमुख त्यौं सनमुख रहि।

हे गोपाल, मैं तो अपनी ही करनी से लजा गया हूँ, फिर तुम अपनी इस चाल से मुझे क्यों लजवा रहे हो कि मुझ-जैसे अत्यन्त विमुख के तुम सम्मुख रहते हो—(मैं तुम्हें सदा भूला रहता हूँ, और तुम मुझे सदा स्मरण रखते हो!)।

तौ अनेक औगुन भरी चाहै याहि बलाइ।
जौ पति सम्पति हूँ बिना जदुपति राखे जाइ ॥७०६॥

अन्वय—जौ सम्पति हूँ बिना जदुपति पति राखे जाइ तौ अनेक औगुन भरी याहि बलाइ चाहै।

यदि विना सम्पत्ति के भी श्रीकृष्ण (मेरी) पत रखते जायँ—प्रतिष्ठा बचाये रक्खें, तो अनेक अवगुणों से भरी इस (सम्पत्ति) को मेरी बलैया चाहे।

हरि कीजति बिनती यहै तुम सौं बार हजार।
जिहिं तिहिं भाँति डस्यौ रह्यौ पस्यौ रहौ दरबार ॥७०७॥

अन्वय—हरि तुमसौं हजार बार यहै बिनती कीजति, जिहिं तिहिं भाँति डर्यौ रह्यौ दरबार पर्यौ रहौं।

हे कृष्ण, तुमसे मैं हजार बार यही बिनती करता हूँ कि (मैं) जिस-तिस प्रकार से डरता हुआ भी तुम्हारे दरबार में सदा पड़ा रहूँ! (ऐसा प्रबंध कर दो।)

तौ बलियै भलियै बनी नागर नन्दकिसोर।
जौ तुम नीकैं कै लख्यौ मो करनी की ओर॥७०८॥

अन्वय—नागर नन्दकिसोर बलियै जो तुम नीकैं कै मो करनी की ओर लख्यौ तौ भलियै बनी।

हे चतुर नन्दकिशोर, मैं बलैया लूँ, यदि तुम अच्छी तरह से मेरी करतूत की ओर देखोगे—मेरे अवगुणों पर विचारोगे, तब तो बस मेरी बिगड़ी खूब बनी! मेरा उद्धार हो चुका। (अर्थात् नहीं होगा।)

नोट—"व्याध हू ते बिहद असाधु हौं अजामिल तें ग्राह ते गुनाही कहो तिन में गिनाओगे? स्वौरी हौं न सूद्र हौं न केवट कहूँ को त्यौं न गौतम-तिया हौं जापै पग धरि आओगे। राम सों कहत 'पदमाकर' पुकारि तुम मेरे महापापन को पारहू न पाओगे। झूठो ही कलंक सुनि सीता ऐसी सती तजो हौं तो साँचो हूँ कलंकी कैसे अपनाओगे?"

समै पलटि पलटै प्रकृति को न तजै निज चाल।
भौ अकरुन करुना करो इहिं कुपूत कलिकाल॥७०९॥

अन्वय—समै पलटि प्रकृति पलटै निज चाल को न तजै, इहिं कुपूत कलिकाल करुना करो अकरुन भौ।

करुना करौ = करुना + आकरौ = करुणा के भण्डार भी। कुपूत = (कु + पूत) अपूत, अपवित्र, अपावन, पापी।

समय पलट जाने से--जमाना बदल जाने से—प्रकृति भी बदल जाती है। (फलतः प्रकृति के वशीभूत होकर) अपनी चाल कौन नहीं छोड़ देता ? इस पापी कलियुग में करुणा के भंडार (श्रीकृष्ण) भी करुणा-रहित (निष्ठुर) हो गये ! (तभी तो मेरी पुकार नहीं सुनते !)

अपनैं-अपनैं मत लगे बादि मचावत सोरु।
ज्यौं-त्यौं सबकौं सेइबौ एकै नन्द-किसोरु ॥७१०॥

अन्वय—अपनैं-अपनैं मत लगे बादि सोरु मचावत, ज्यौं-त्यौं सबकौं एकै नन्दकिसोरु सेइबौ।

अपने-अपने मत के लिये व्यर्थ ही लोग हल्ला मचा रहे हैं। जैसे-तैसे सभी को एक उसी श्रीकृष्ण की उपासना करनी है। (सर्वदेवो नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति)

नोट—"है अछूती जोत उसकी मन्दिरों में जग रही, मस्जिदों गिरजाघरों में भी दिखाता है वही, बौद्ध-मठ के बीच है दिखला रहा वह एक ही, जैन-मन्दिर भी छुटा उसकी छटा से है नहीं।—"हरिऔध"।

अरुन सरोरुह कर-चरन दृग खंजन मुख चंद।
समै आइ सुन्दरि सरद काहि न करत अनंद ॥७११॥

अन्वय—अरुन सरोरुह कर चरन, खंजन दृग, चंद मुख, सरद-सुन्दरि समै आइ काहि अनन्द न करति।

लाल कमल ही उसके हाथ-पाँव हैं, खंजन ही आँखें हैं, और चन्द्रमा ही मुखड़ा है। (इस रूप में) शरद-ऋतु-रूपी सुन्दरी स्त्री समय पर आकर किसे आनन्दित नहीं करती ?

नोट—शरद-ऋतु में कमल, खंजन और चन्द्रमा की शोभा का वर्णन

किया जाता है। यथा—"पाइ सरद रितु खंजन आये" और "सरद-सर्वरी नाथ मुख सरद-सरोरुह नैन"—तुलसीदास।

ओछे-बड़े न ह्वै सकैं लगौ सतर ह्वै गैन।
दीरघ होंहि न नैकहूँ फारि निहारैं नैन ॥७१२॥

अन्वय—सतर ह्वै गैन लगौ ओछे बड़े न ह्वै सकैं, नैन फारि निहारैं नैकहूँ दीरघ न होंहि।

सतर = बढ़ी-चढ़ी, क्रोधयुक्त। नैकहूँ = तनिक भी। गैन = गगन, आकाश।

घमंड से आस्मान पर चढ़ जाने से (बढ़-बढ़कर बातें करने से) भी ओछे आदमी बड़े नहीं हो सकते। आँखें फाड़-फाड़कर देखने से (आँखें) तनिक भी लम्बी नहीं होतीं।

औरै गति औरै बचन भयौ बदन रँगु औरु।
द्यौसक तैं पिय-चित चढ़ी कहैं चढ़ैं हूँ त्यौरु ॥७१३॥

अन्वय—औरै गति औरै बचन बदन-रँग औरु भयौ, द्यौसक तैं पिय-चित चढ़ी चढ़ैं हूँ त्यौरु कहैं।

बदन = मुख। द्यौसक = द्यौस+एक = दो एक दिन।

और ही तरह की चाल है, और ही वचन है, और मुख का रंग भी कुछ और ही है! दो एक दिन से तुम प्रीतम के चित्त पर चढ़ गई हो, यह बात तुम्हारी चढ़ी हुई त्यौरी ही कह रही है।

गाढ़ैं ठाढ़ैं कुचनु ठिलि पिय-हिय को ठहराइ।
उकसौंहैं हीं तौ हियैं दई सबै उकसाइ ॥७१४॥

अन्वय—गाढ़ैं ठाढ़ैं कुचनु ठिलि पिय हिय को ठहराइ, तौं हियैं उकसौंहैं हीं सबै उकसाइ दई।

गाढ़ैं = कठोर। ठाढ़ैं = खड़े (तने) हुए। उकसौंहैं = उभड़े हुए। हियैं = हृदय, छाती। दई उकसाइ = उकसा (उभाड़) दिया।

तुम्हारे स्तन प्रीतम के हृदय में बसे हैं, (सो) उन कठोर और तने हुए स्तनों को ठेलकर (धक्के से अलगकर) प्रीतम के हृदय में और कौन (स्त्री) ठहर सकती है ? (अरी) तुम्हारी उभड़ी हुई छाती ने ही तो सबको उभाड़ दिया ! (कामोदीप्त कर दिया)

गुरुजन दूजैं ब्याह कौं निसि दिन रहत रिसाइ ।
पति की पति राखति बधू आपुन बाँझ कहाइ ॥७१५॥

अन्वय—दूजैं ब्याह कौ गुरुजन निसि दिन रिसाइ रहत, बधू आपुन बाँझ कहाइ पति की पति राखति ।

पति = पत, लाज । बाँझ = निस्संतान, वंध्या ।

दूसरा ब्याह करने (को लालायित होने) के कारण (नायिका के) पति पर गुरुजन रात-दिन क्रोधित होते हैं (कि तुम क्यों शादी कर रहे हो ?) । (इधर, नायिका यद्यपि बाँझ नहीं है, तो भी) अपने आपको बाँझ कहकर पति की प्रतिष्ठा रखती है (ताकि लोग समझें कि पत्नी के बाँझ होने से ही बेचारा शादी करता है, भोगेच्छा से प्रेरित होकर नहीं) ।

नोट = इस दोहे में पति-प्रेम का भंडार भर दिया गया है ।

घर-घर तुरुकनि हिन्दुअनि देतिं असीस सराहि ।
पतिनु राखि चादर-चुरी तैं राखी जयसाहि ॥७१६॥

अन्वय—जयसाहि, घर-घर तुरुकनि हिन्दुअनि सराहि असीस देतिं तैं पतिनु राखि चादर-चुरी राखी ।

हे जयशाह घर-घर में तुर्क-स्त्रियाँ और हिन्दू-स्त्रियाँ सराह-सराह कर तुम्हें आशीर्वाद देती हैं ! क्योंकि तुमने उनके पतियों की रक्षा कर उनकी चादर और चूड़ी (तुर्किनों की चादर और

हिन्दुआनियों की चूड़ी) रख लो—उनका सधवापन (सोहाग) बचा लिया ।

जनमु जलधि पानिप बिमलु भौ जग आघु अपारु ।
रहै गुनी ह्वै गर पर्‌यौ भलैं न मुकुता-हारु ॥७१७॥

अन्वय—जलधि जनमु बिमलु पानिप जग आघु अपार भौ, गुनी ह्वै गर पर्‌यौ रहै मुकुता-हारु भलैं न ।

जलधि = समुद्र । पानिप=(१) चमक (२) शोभा । आघु = मूल्य । गुनी = (१) गुणयुक्त (२) सूत्र-युक्त, गुँथा हुआ । मुकुता=मोती ।

समुद्र से तुम्हारा जन्म हुआ है (कुलीन हो), स्वच्छ चमक है (सुन्दर हो), और संसार में तुम्हारा मूल्य भी अपार है (आदरणीय भी हो) । ऐसे 'गुणी' होकर भी—गुथे हुए होकर भी—किसी के गले पड़े रहना (खामखाह किसी की खिदमत में रहना), ऐ मुक्ता-हार ! तुम्हारे लिये अच्छा नहीं है !

(सो०) पावस कठिन जु पीर, अबला क्यौं करि सहि सकैं ।
तेऊ धरत न धीर, रक्त-बीज सम ऊपजै ॥७१८॥

अन्वय—पावस कठिन जु पीर अबला क्यौं करि सहि सकैं, रक्त-बीज सम ऊपजै तेऊ धीर न धरत ।

रक्त-बीज = रक्त और 'बीज' के समान भाग से अवतार (जन्म) लेने-वाला—अर्थात् 'नपुंसक' । ऊपजे=जन्म ग्रहण किया ।

वर्षा-ऋतु की जो कठिन पीड़ा है, इसे अबला स्त्रियाँ किस प्रकार सह सकती हैं ? जब कि जन्म ही के नपुंसक (पैदाइशी हिजड़े) भी इस ऋतु में धैर्य नहीं धरते ।

प्यासे दुपहर जेठ के फिरै सबै जलु सोधि ।
मरुधर पाइ मतीर हों मारू कहत पयोधि ॥७१९॥

अन्वय—जेठ के दुपहर प्यासे सबै जलु सोधि फिरै मारू मरुधर मतीर हीं पाइ पयोधि कहत।

सोधि = ढूँढ़कर। मरुधर = मरुभूमि, मारवाड़। मतीर = तरबूजा। मारू = मरुभूमि निवासी। पयोधि = समुद्र।

जेठ की दुपहरिया का प्यासा और सर्वत्र जल ढूँढ़-ढूँढ़कर थका हुआ मरुभूमि-निवासी, मरुभूमि में तरबूजे को पाकर, उसे समुद्र कहता है। (देखिये ६७७वाँ दोहा)

समै-समै सुन्दर सबै रूपु-कुरूपु न कोइ।
मन की रुचि जेती जितै तित तेती रुचि होइ ॥७२०॥

अन्वय—समै-समै सबै सुन्दर, कोइ रूपु-कुरूपु न, मन की रुचि जेती जितै तित तेती रुचि होइ।

रुचि = प्रवृत्ति, आसक्ति। जेती = जितनी। जितै = जिधर। तित तेती = उधर उतनी ही।

समय-समय पर सभी सुन्दर हैं, कोई सुन्दर और कोई कुरूप नहीं है। मन की प्रवृत्ति जिधर जितनी होगी, उधर उतनी ही आसक्ति होगी।

सामाँ सेन सयान की सबै साहि कैं साथ।
बाहु-बली जयसाहि जू फते तिहारैं हाथ ॥७२१॥

अन्वय—सेन सयान की सामाँ सबै साहि कैं साथ। बाहु-बली जयसाहि जू फते तिहारे हाथ।

सामाँ = समान। सेन = सेना। साह = बादशाह। बाहु-बली = पराक्रमी। फते = फतह = विजय।

सेना, और चतुराई के सामान तो सभी बादशाहों के साथ

रहते हैं, किन्तु पराक्रमी राजा जयसिंहजी, विजय तुम्हारे ही हाथ रहती है।

कालिह दसहरा बीतिहै धरि मूरख जिय लाज।
दुखौ फिरत कत द्रुमनु मैं नीलकंठ बिनु काज ॥७२२॥

अन्वय—कालिह दसहरा बीति है मूरख जिय लाज धरि, नीलकठ द्रुमनु मैं बिनु काज कत दुख्यौ फिरत।

दुख्यौ = लुकना, छिपना। द्रुमनु = वृक्षों।

कल दसहरा बित जायगा। अरे मूर्ख, कुछ तो हृदय में लाज कर। अरे नीकलकंठ, वृक्षों पर व्यर्थ क्यों लुका फिरता?

नोट—दसहरा के दिन नीलकंठ दर्शन शुभ है।

हुकुम पाइ जयसाहि कौ हरि-राधिका-प्रसाद।
करी बिहारी सतसई भरी अनेक सवाद ॥७२३॥

अन्वय—जयसाहि कौ हुकुम पाइ हरि-राधिका-प्रसाद-बिहारी सतसई करी अनेक सवाद भरी।

राजा जयसिंह की आज्ञा पाकर और राधाकृष्ण की कृपा से 'बिहारी' ने यह 'सतसई' बनाई, जो अनेक स्वादों से भरी हैं—अनेक रसों से अलंकृत है।

संबत ग्रह ससि जलधि छिति छठ-तिथि बासर चंद।
चैत मास पछ कृष्ण में पूरन आनँदकंद ॥७२४॥

अन्वय—संबत छिति जलधि ससि ग्रह चैतमास कृष्णपछ में छठ-तिथि बासर चंद आनंद-कंदपूरन।

ग्रह = नौ। ससि=चन्द्रमा, एक। जलधि = समुद्र, सात। छिति = पृथ्वी, एक। बासर=दिन। चंद=सोम। आनँद-कंद=आनन्द की जड़।

संवत् १७१६ के चैत्रमास के कृष्णपक्ष में छठी तिथि और सोमवार को, यह आनन्दकन्द 'सतसई' पूरी हुई।

नोट—पद्य में संवत् के अंक उलटे ही क्रम से लिखते हैं।

सतसैया कै दोहरे अरु नावकु कै तीरु।
देखत तौ छोटै लगैं घाव करैं गंभीरु ॥७२५॥

अन्वय—सतसैया कै दोहरे अरु नावकु कैं तीरु देखत तौ छोटैं लगैं घाव गंभीर करैं।

दोहरे = दोहे। नावकु के तीर = एक प्रकार का छोटा तीर, जो बाँस की नली होकर फेंका जाता है, और उसका निशाना अचूक समझा जाता है।

सतसई के दोहे, और नावक के तीर, देखने में तो छोटे लगते हैं, किन्तु चोट बड़ी गहरी करते हैं—घायल बनाने में कमाल करते हैं।

समाप्त

बिहारी के सोलह दुर्लभ दोहे

बकी-बिदारन बक-दवन वनमाली जितबान।
दामोदर देवकि-तनज दुर्जन दयानिधान ॥ १ ॥
सकट-सँघारन अघ-हरन करुना-घन घन-स्याम।
कुबिजा-कामुक दौ-दवन बहुमाइक बहुनाम ॥ २ ॥
विष्टि-निवारन विष्टिवर बमुह विभूषण बीर।
गीता-गाइक गरुड़धुज गोबिंद गुन-गम्भीर ॥ ३ ॥
मुष्टिक मारन मधु-मथन मथुरानाथ मुकुन्द।
तरतारक त्रैताप हरि हरि तारक मचकुन्द ॥ ४ ॥
कंस-निखूँदन कंसहर काली-मरदन काल।
गोपी-बल्लभ गिरि-धरन गज-गंजन गोपाल ॥ ५ ॥
दोवे चीरद चीर-हर चतुरभुज माखन-चोर।
रास-रसिक सत्या-सुखद सुंदर नन्दकिसोर ॥ ६ ॥
त्रय-भंजन भव-भार-हर भगतनि-प्रिय भगवान।
कमल-नयन कमला-रवन केसव कि हम कल्यान ॥ ७ ॥
नारायन नट-वेष-धर नागर-वर नरकारि।
ब्रज-भूषन राधा-रवन मुरली-धरन मुरारि ॥ ८ ॥
मनु मान्यो केते मुनिन मनु न मनायो आइ।
ता मोहन पै राधिका झगरि झँवावति पाँइ ॥ ९ ॥

डा. डिल्लीराम रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय

जागि न पायो ब्रह्महू जोग न पायो ईस।
ता मोहन पै राधिका सुमन गुहावति सीस॥१०॥
सिव सनकादिक ब्रह्महू भरि देखैं नहिं दीठि।
ता मोहन सों राधिका दै दै देवै पीठि॥११॥
बेद भेद जानो नहीं नेति नेति कहैं बैनि।
ता मोहन सों राधिका कहै महाउर दैनि॥१२॥
हरि को फिरयौ न पैंड़ द्व लोभ फिरयौ सब देस।
मन न भयौ कहुँ ऊजरो भये ऊजरे केस॥१३॥
याही मैं सबु बनि गयो ब्रजबासिन को सूतु।
गहकि गरैयाँ गाइए गोद गदाधर पूतु॥१४॥
कोटि अपछरा वारिये जो सुकिया सुखदेइ।
ढीली आँखिन ही चितै गाढ़े गहि मन लेइ॥१५॥
भौन भीर गुरुजन भरे सकै न कहि कै बैन।
दम्पति दंड कटाक्ष भरि चाँचरि खेलत नैन॥१६॥

—ooo—

নং ৭. ৪৩০০৫
বি ৪৮৮৫ বি